प्रकाशक
जीतमल लूणिया
हिन्दी साहित्य मन्दिर
अजमेर

अनुकरणीय लगेंगे। लेकिन यह सब होते हुए भी मुझे ऐसा लगा कि मैं अब इस घर में नहीं रह सकता। मेरे लिए इससे बड़े घर की आवश्यकता है।"

—विनोबा

मेट्रिक की परीक्षा पास करने के बाद से ही विनोबाजी के विचारों में क्रान्ति हो रही थी। जब सन् १९१४ में महायुद्ध प्रारंभ हुआ तो देश में स्वतन्त्रता-प्राप्ति की हलचल बढ़ गई। वह क्रान्तिकारियों का युग था। जगह जगह सशस्त्र विद्रोह की तैयारी होरही थी। महाराष्ट्र में भी शस्त्र जमा किये जारहे थे और युवकों के मन में अन्दर ही अन्दर आग सुलग रही थी। समर्थ विद्यालय का एक विद्यार्थी इन्हीं क्रान्तिकारी कार्रवाइयों के कारण पकड़ा गया और बाद में फाँसी पर चढ़ा दिया गया। बंगाल में भी यह हलचल चल रही थी। युवकों पर सरकार की कड़ी नजर थी। इन सब बातों ने विनोबाजी के मन को और भी अधिक अशान्त बना दिया। मेट्रिक पास करने के बाद से ही वे घर छोड़कर निकल जाने का विचार करने लगे थे और उन्होंने अपना यह विचार निकट के दो चार मित्रों पर प्रकट भी किया था। वैसे उन्हें घर में कोई तकलीफ़ नहीं थी बल्कि सब तरह से अनुकूलता ही थी। पिताजी शास्त्रीय बुद्धि के बड़े समझदार व्यक्ति थे और माँ की याद तो आज भी उन्हें नहीं भूलती है। ऐसी स्थिति में यदि विनोबा देश सेवा की ओर बढ़ना चाहते तो मार्ग में कोई कठिनाई नहीं होती लेकिन वे तो आध्यात्मिकता की ओर भी तेज़ी से बढ़ रहे थे। वे न किसी प्रकार का बन्धन पसन्द करते थे न आसक्ति। उनकी इच्छा केवल देश सेवा की ही नहीं थी, साधना के विचार भी बड़े ज़ोर से उनके मानस में तरंगित हो रहे थे। वे मित्रों के पीछे भी पड़ते कि घर छोड़ दो। गोपालराव काले व रघुनाथराव आदि उनके निकट मित्रों में से थे। गोपालरावजी ने कहा—"मुझे देशसेवा करने के लिए बी० ए० एल-एल०बी० करना चाहिए।" दूसरे मित्रों ने भी इसी तरह की दलीलें

निवेदन

भारत के स्वतन्त्र होने तथा गांधीजी के आकस्मिक निधन के बाद देश में बड़ी ही विषम परिस्थिति पैदा होगई थी। ऐसा जान पड़ता था मानों चारों ओर अंधेरा फैल गया है और उस अंधियारे में लोगों को कुछ सूझ नहीं रहा है। यह स्थिति शायद कुछ दिन तक रहती, लेकिन अचानक प्रकाश की एक किरण फूटी और उसने अंधेरे को चीर कर भटकते लोगों के लिए एक लोकहितकारी मार्ग बना दिया। आज उनका प्रकाश सारे देश में व्याप्त होगया है।

यह किरण थी विनोबा। आज उनके नाम से और काम से देश का बहुत बड़ा भाग परिचित होगया है और ज्यों ज्यों उनका काम फैल रहा है, लोग उनकी ओर अधिकाधिक आकर्षित हो रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में विनोबाजी का जीवन परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। विनोबाजी प्रारम्भ से ही अत्यन्त संकोचशील रहे हैं और प्रचार से कोसों दूर। इसलिए उनके प्रारम्भिक जीवन के विषय में बहुत कम सामग्री उपलब्ध है। फिर भी प्रयत्नपूर्वक इधर उधर से काफ़ी सामग्री इकट्ठी करके इस पुस्तक में दी गई है। बापू के साथ उनके सम्पर्क, उनकी साधना, उनके प्रयोग और उनके नये क्रांतिकारी कदम भूदानयज्ञ के बारे में तो पाठक बहुत ही विशद सामग्री इसमें पावेंगे।

विनोबाजी का जीवन शुरू से ही बड़ा उदात्त रहा है। अतः पाठकों को इस पुस्तक में बड़ी शिक्षाप्रद सामग्री प्राप्त होगी और उनसे अपने जीवन के नव-निर्माण की प्रेरणा मिलेगी।

विनोबाजी की अबतक कोई भी बड़ी जीवनी हिन्दी में प्रकाशित नहीं हुई है। यह पुस्तक उस अभाव की पूर्ति करेगी ऐसी आशा है। पाठकों से हमारा अनुरोध है कि वे इस सम्बन्ध में 'विनोबा विचारावली' (जिसका मूल्य ।।।)है और हिन्दी साहित्य मन्दिर अजमेर से ही प्रकाशित हुई है) को भी देख लेने की कृपा करें। वह एक प्रकार से इसकी पूरक है।

इस पुस्तक का मूल्य भी प्रचार की दृष्टि से कम रखा गया है आशा है पाठकों को यह पुस्तक रुचिकर तथा लाभदायक सिद्ध होगी और वे इसके व्यापक प्रचार और प्रसार में अपना योग देंगे।

जीतमल लूणिया

विषय-सूची

तपोधन विनोबा

:: १ ::

जीवन-प्रवाह

प्रत्येक युग में किसी न किसी ऐसे महापुरुष का जन्म होता आया है जो अपनी महानता से सृष्टि को जगमगा देता है। वह प्रचलित विचारों और विश्वासों में क्रान्ति करता है, असत् और अशिव से टक्कर लड़ाई लड़ता है और अन्त में या तो अपने जीवन-काल में ही उस पर विजय प्राप्त कर लेता है या अपने प्राणों की आहुति देकर प्रकाश की एक ऐसी ज्योति प्रज्वलित कर जाता है, जो दीपस्तम्भ का काम देती है। उसके प्रकाश में भूला भटका संसार अपनी राह पहिचानता है और प्रगति की दिशा में चल पड़ता है। किसी युग में वह महापुरुष—राम, किसी में कृष्ण, किसी में बुद्ध, किसी में ईसा और किसी में मुहम्मद के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हमारे युग ने भी इसी प्रकार के एक महापुरुष को जन्म दिया, जो हिंसा और विद्वेष से लड़ते-लड़ते अभी-अभी विश्व-बन्धुत्व और जन-कल्याण के यज्ञ में अपनी आहुति दे गया है। वह महापुरुष था, विश्ववन्द्य महात्मा गांधी।

गांधीजी की विशेषता यह थी कि वे न केवल राजनीतिज्ञ थे, न तत्त्व ज्ञानी, न केवल आदर्शवादी थे न यथार्थवादी, न केवल योद्धा थे न सन्त और न केवल तपस्वी थे न उपदेशक। वे तो एक जीवन-दृष्टा ऋषि थे। उन्होंने जीवन को सम्पूर्ण रूप में देखा था। उनके लिए न राजनीति बड़ी बात थी, न पाखाना सफ़ाई छोटी। उनके 'हरिजन' में एक ओर गूढ़ राजनैतिक मंत्रणाओं पर लेख रहते थे तो दूसरी ओर

मूंगफली और आम की गुठली के प्रयोगों पर। अपने दैनिक जीवन में जहां वे प्रार्थना, मुलाकातें तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्यों में व्यस्त रहते थे वहां किसी भी रोगी से पूछताछ करने और उसकी परिचर्या करने की बात भी नहीं भूलते थे। उन्होंने जीवन के सम्पूर्ण क्षेत्रों में प्रवेश किया था और सभी को अपने पावन स्पर्श से जगमगा दिया था।

गांधीजी अपने पीछे भक्तों और अनुयायियों का एक बहुत बड़ा समूह छोड़ गये हैं। इन अनुयायियों में किसी को विरासत में उनकी राजनीति मिली है, तो किसी को आध्यात्मिक चेतना। किसी को सुधारवादिता तो किसी को मूक सेवा। किसी को ब्रह्मचर्य तो किसी को त्याग-तपस्या। उनके अनुयायियों में से किसी ने चर्खा-सङ्घ को अपना जीवन दे दिया है, तो किसी ने ग्रामोद्योग सङ्घ को। किसी ने गो सेवा सङ्घ को, तो किसी ने तालीमी सङ्घ को। किसी ने किसान और मजदूरों की सेवा को तो किसी ने महिलाओं की सेवा को।

लेकिन जिस प्रकार धर्म के नाम पर अधर्म और न्याय के नाम पर अन्याय भी होता रहा है, उसी प्रकार गांधीजी के अनुयायियों में भी यत्रतत्र बुराइयां दिखाई देरही हैं। ये बुराइयां अभी पैदा हुई हैं ऐसी बात नहीं है। ये उनके जीवनकाल में भी थीं और अनेक बार उन्होंने उन्हें अपनी बुराई कहकर उनके लिए उपवास आदि के रूप में प्रायश्चित् भी किया था। संसार में सदैव लोगों ने अपने स्वार्थ के लिए अच्छी चीजों का दुरुपयोग किया है, अतः यदि गांधीजी के आदर्शों की आड़ में भी बुराइयां पैदा हों तो इसमें गांधीजी का कोई दोष नहीं है। दोष मनुष्य की कमजोरियों का है। गांधीजी छोटी से छोटी बुराई को भी सहन नहीं करते थे। कहने का मतलब यह है कि कमजोरियां होते हुए भी गांधीजी के अनुयायियों में बहुत से जागरूक साधक, तेजस्वी योद्धा, उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ और एकान्त तपस्वी विद्यमान हैं। यदि इस दृष्टि से देखें कि गांधीजी के त्याग और तपस्या की विरासत किस को सब से ज्यादा मिली है, उनके आदर्शों और सिद्धान्तों के निकट सब से

ज्यादा कौन है, किसमें गांधीजी जितनी अनासक्ति और लोककल्याण की भावना है, तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सभी विचारशील व्यक्तियों की दृष्टि आचार्य विनोबा पर ही पड़ेगी। यद्यपि विनोबाजी का अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है तथापि गांधीजी के गुणों, विचारों और विशेषताओं की विरासत उन्हें ही सब से ज्यादा मिली है। वे एक उच्चकोटि के साधक हैं, तपस्वी हैं, सन्त हैं, आचार्य हैं, योगी हैं, नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और हैं जीवनदृष्टा ऋषि। गांधीजी उनका बड़ा आदर करते थे, बड़ी बड़ी बातों में उनकी सलाह लेते थे और यह कहदिया जाय कि गांधीजी को उनके ऊपर सात्विक गर्व था तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

विनोबा इस युग के महापुरुष हैं, फिर भी हम उनके बारे में बहुत कम जानते हैं। वे एक मूक सेवक रहे हैं। उन्होंने न तो स्वयं आगे आकर दुनिया की नजरों में पद और यश प्राप्त करने का प्रयत्न किया न अपने भक्तों और शिष्यों को ही ऐसा करने दिया।

विनोबाजी जीवन को पानी की एक धारा मानते हैं जो समुद्र से (परमात्मा से) मिलने जारही है। उस परमात्मा से एकाकार हो जाना ही उसका अन्तिम लक्ष है। विनोबाजी के सामने जीवन का यही लक्ष रहा हैं। लेकिन यह लक्ष रखकर भी उन्होंने दुनिया की ओर से आँख नहीं मूंदी। जिस प्रकार नदी रास्ते के गड्ढों को भरती हुई आगे बढ़ती है, उसी प्रकार वे भी अपने आसपास की बुराइयों, विषमताओं और कमी को मिटाते हुए आगे बढ़ने का प्रयत्न करते रहे हैं। वे मानते हैं कि यदि इस प्रकार के गड्ढों को भरते हुए रास्ते में ही जीवन समाप्त होजाय तो कोई चिन्ता की बात नहीं। यही कारण है कि वे अपने आसपास के गड्ढों की उपेक्षा नहीं कर सके हैं। वे कहते हैं—"यदि इस धारा से पूछा जाय कि तेरी क्या इच्छा थी, तो वह उत्तर देगी, मैं तो समुद्र की ओर जा रही थी। रास्ते में यह गड्ढा आगया मैंने इसे भरने की कोशिश की। यदि इसमें मेरा जीवन समाप्त होजाय तो कोई बात नहीं। मैं अपने को इसी में कृतकृत्य मानती हूं।"

यही है विनोबा का जीवन प्रवाह । यही है उनकी जीवन कहानी ।

विनोबाजी ने अपने पास के काम की उपेक्षा करके कभी भी दूर जाने की इच्छा नहीं की । उनके मन में एक क्षण के लिये भी यह बात नहीं आई कि पाखाना सफ़ाई या कताई बुनाई से कांग्रेस के अध्यक्ष या राष्ट्रपति का पद अधिक महत्वपूर्ण है । वे अपने आसपास के छोटे-छोटे कहे जाने वाले कामों में ही इतनी तल्लीनता से लगे रहे जितनी तल्लीनता से कोई बड़ा से बड़ा काम भी प्रायः नहीं कर पाता है । यही कारण है कि उनके जीवन में न बड़ी कही जाने वाली घटनाएँ हैं, न उन भौतिक सफलताओं का समावेश है जो साधारण लोगों को चकाचौंध कर देती हैं । उनके जीवन की कहानी तो आत्मा को परमात्मा में लीन करदेने की, अहं को ब्रह्म के साथ एकाकार करदेने की, व्यक्ति को समष्टि के हितों के साथ मिला देने की साधना से जगमग है ।

:: २ ::

भावे-परिवार

"अच्छी अच्छी चीज़ें खिला पिलाकर जो लाड़ प्यार करना चाहिए वह मेरे दादा जी ने अवश्य किया होगा । लेकिन आधी रात के समय भगवान् के दर्शन करने के लिए जगाकर उन्होंने मेरे मन पर जो संस्कार डाला, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता ।" —विनोबा

विनोबा को जन्म देने का सौभाग्य महाराष्ट्र की वीरभूमि को प्राप्त हुआ है । उनके पूर्वज रत्नागिरी ज़िले में रहते थे। कुछ दिन बाद वे सतारा ज़िले के लिम्ब ग्राम में आये और फिर वांई में । वांई में इस परिवार ने कोटेश्वर का एक मन्दिर बनाया और उसमें महादेवजी की

प्रतिमा की प्रतिष्ठा की। उस समय सारस्वत ब्राह्मणों का यह परिवार काफ़ी अच्छी स्थिति का माना जाता था। कहा जाता है कि इसी परिवार के श्री नरसिंहराव भावे सन् १८०७ ई० में पेशवा की आज्ञानुसार अंग्रेजों की मदद के लिए गये थे। नरसिंहराव ने इस अवसर पर बड़ी वीरता दिखाई जिससे प्रसन्न होकर अंग्रेजों ने उन्हें कोलावा ज़िले का गागोदा नामक ग्राम, इनाम में दे दिया। गागोदा मिल जाने से इस परिवार के कुछ लोग यहाँ आकर रहने लगे।

विनोवा के दादा शंभूराव भावे इस वंश के प्रतिष्ठित व्यक्तियों में से थे। वे प्रायः वांई में ही रहते थे। ईश्वर-भजन तथा पूजापाठ में उनकी वड़ी निष्ठा थी। वे स्वभावतः विरक्त थे। कोटेश्वर के मन्दिर में श्रद्धा भक्ति पूर्वक भजन-पूजन करना तथा ब्राह्मण-भोजन, उत्सव आदि का आयोजन करते रहना ही उनके प्रिय कार्य थे। उत्सव के दिनों में एक दिन वे मन्दिर का द्वार सव लोगों के लिए खोल देते थे। वे उस दिन स्वयं हरिजनों को दर्शन के लिए वुलाते और उन्हें भोजन कराते थे। वे कहते—"भोजन की सच्ची आवश्यकता तो इन्हीं गरीवों को है। जिन लोगों को खानेपीने की कमी नहीं है उनको भोजन कराने से क्या लाभ ?" उस समय आज जैसी स्थिति कहाँ थी ? तव तो हरिजनों को मन्दिर में वुलाना और उनको भोजन कराना वड़े साहस का काम था। शंभूराव का व्यक्तित्व इतना रोवदार और प्रभावशाली था कि उनके विरुद्ध वहिष्कार की आवाज उठाने का साहस किसी को नहीं हुआ।

वे स्वभावतः क्रांतिकारी थे। जिसे उचित समझते उसे करके ही मानते थे। एक वार एक मुसलमान संगीतज्ञ गांव में आया। शंभूराव संगीत के वड़े शौकीन थे। उनके लिए संगीत दैवी कला थी। संगीत में वे तन्मय होजाते थे। मुसलमान संगीतज्ञ का संगीत उन्हें वड़ा पसन्द आया और उन्होंने भगवान् के सामने भजन गाने के लिये उसे रख लिया। यह खवर चारों ओर फैली। कट्टरपंथियों को वुरा लगा। उन्होंने शंभूरावजी से पूछा—भगवान् के मन्दिर में मुसलमान को गीत

बिठाना कहाँतक अच्छा है ? शंभूराव ने उत्तर दिया—"भगवान् की दृष्टि में न हिन्दू-मुसलमान का भेद है, न ऊँचनीच का। सब उसके बच्चे हैं, उसके लिए सब समान हैं, एक हैं। अतः मैं इसे अधर्म नहीं मानता।" बेचारे निरुत्तर होकर लौट गये।

यदि कोई दूसरा व्यक्ति होता तो समाज में तूफ़ान उठ जाता लेकिन वह इसलिए नहीं उठा कि शंभूराव भगवान् के सच्चे भक्त थे। वे बड़ी भक्ति भावना और तन्मयता से पूजा करते थे। घर में जो ताजा घी होता उसे वे भगवान् की आरती तथा दीपक में जलाने के काम में लेते थे और बासी घी खाने के काम में।

शंभूराव व्रत और उपवास करने में बड़े कड़े थे। विनोबा पर इनका बड़ा असर पड़ा। उन्होंने एक बार कहा था—"उन दिनों दादा चन्द्रायण-व्रत कर रहे थे। वे शुक्ल प्रतिपदा को एक ग्रास भोजन करके उसे प्रारम्भ करते और पूर्णिमा तक एक एक ग्रास प्रतिदिन बढ़ाकर फिर कृष्ण प्रतिपदा से फिर प्रतिदिन एक एक ग्रास कम करके अमावस्या के दिन एक ग्रास पर आजाते थे। चन्द्रायण व्रत के दिनों वे चन्द्रोदय होने पर चन्द्रमा की पूजा करते, आरती करते और फिर उस दिन जितने ग्रास खाने होते, खाते थे। चन्द्रोदय प्रतिदिन एक समय पर तो होता नहीं, कभी वह सन्ध्या को होता है तो कभी मध्यरात्रि में और कभी प्रातःकाल। अतः जब चन्द्रपूजन का समय आता तो घर के सारे बच्चों को जगाया जाता। हम लोगों को ठंड लगती और हम आँखें मलते हुए उठते थे। हम आरती लेते और चन्द्रमा का दर्शन करते। यदि मेरे अन्दर कुछ थोड़ी बहुत पवित्रता है, तो वह अपने दादा के कारण ही। वह उनकी बहुत बड़ी देन है, उनका बहुत बड़ा उपकार है।" इस प्रसंग का वर्णन करते हुए आज भी उनकी आँख गीली होजाती हैं।

शंभूराव की पत्नी गंगाबाई बड़ी कर्मठ और स्वाभिमानी थी। गंगाबाई ने ५५ वर्ष की अवस्था में पढ़ना लिखना सीखा। एक बार

उन्होंने अपने पुत्र गोविन्द से कहा—"गोविन्द, मुझे किताब पढ़ना सिखादे।" गोविन्द ने रसोईघर में दीवार पर स्वर व्यञ्जन लिख दिये। भोजन बनाते बनाते गंगाबाई वे अक्षर पढ़तीं और उन्हें याद कर लेतीं। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में वे शिव-लीलामृत, पाण्डव-प्रताप और भक्ति-विजय जैसी पुस्तकें पढ़ने लग गईं।

गंगाबाई बड़ी विनोदी स्वभाव की थीं। बहू के साथ कुएं पर पानी लेने जाती। वांई के कुए बड़े गहरे होते हैं। पानी खींचते खींचते उन्हें विनोद सूझता और वे बहू से कहती—"अभी घड़ा रखदे, ले मैं तुझे एक नकल दिखाती हूँ।" और वे अभिनय कर के नकल करने लगतीं। फिर सास बहू दोनों इतनी हँसतीं कि पेट में बल पड़ने लगते। प्रायः स्त्रियां बातबात पर रो दिया करती हैं लेकिन गंगाबाई का हृदय कड़ा था। वे रोना कमजोरी का चिन्ह मानती थीं। कठिन प्रसंगों पर भी उनका स्वाभिमान अश्रुओं को रोक दिया करता था।

शंभूराव के तीन पुत्र थे—नरहरपंत, गोपालराव और गोविन्दराव। इनमें नरहरपंत सब से बड़े थे। वे बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी थे। वे मेट्रिक पास कर के इन्टर में पढ़ने लगे। लेकिन शंभूराव अंग्रेजी शिक्षा के विरुद्ध थे। अतः उन्हें कालेज छोड़ना पड़ा। कालेज छोड़ कर वे बड़ोदा में नौकर हो गये। सांगली के गोड़बोले परिवार की एक कन्या के साथ उनका विवाह हुआ। इस लड़की के पिता शंभूराव के स्नेही थे। वे बड़े संगीतज्ञ और वाद्यविशारद थे। यह लड़की उनकी एकमात्र कन्या थी। एक दिन वे शंभूराव से बोले—"मेरी कन्या के विवाह-सम्बन्ध की कोई व्यवस्था कीजिये।" बात साधारण थी लेकिन भाव यह था कि अपने तीन पुत्रों में से किसी के साथ उसका सम्बन्ध स्वीकार कर लीजिये। शंभूराव ने उनका भाव समझ लिया और नरहरपन्त के साथ विवाह कर दिया। सुसराल में आने पर नरहरपन्त की पत्नी का नाम रखुमाई रखा गया।

रखुमाई देखने में सुन्दर थीं। गौर वर्ण, बड़ी-बड़ी आंखें और सुडौल

शरीर। उनके स्वभाव में एकाङ्गिता नहीं थी। वे चाहती थीं कि घर में बहुत से व्यक्ति रहें। हमेशा दूसरे लोग आते जाते रहें और चहल पहल बनी रहे। उन्हें उत्सव बड़े पसन्द थे और वे अतिथि-सत्कार में बड़ी दिलचस्पी लेती थीं। विवाह हो जाने पर वे अपने पति के साथ बड़ोदा जाकर रहने लगीं। वे विवाह, उपनयन, तथा प्रसव के अवसरों पर गागोदा आती थीं और एक दो महीने वहां रहती थीं। इन्हीं रखुमाई के गर्भ से ११ सितम्बर १८९५ को गागोदा में विनोबा का जन्म हुआ। विनोबा के बाद तीन भाई और एक बहिन हुई—बालकृष्ण, शिवाजी, दत्तात्रेय तथा शान्ता।

विनोबा का बाल्यकाल गागोदा में ही व्यतीत हुआ। गागोदा उनको बहुत प्रिय है। यहां उनके पूर्वजों का ही बनाया हुआ एक बल्लालेश्वर नामक गणपती का मन्दिर है। गागोदे में मराठे आदि अन्य जाति के लोग ही ज्यादातर हैं। ब्राह्मण का घर तो केवल उनका ही था। गांव में एक तालाब है और गांव के पास ही एक घाटी है। पास के पहाड़ों के ऊपर सपाट मैदान है और गांव के आसपास जंगल ही जंगल है। प्राकृतिक दृष्टि से यह गांव बड़ा ही सुन्दर है। जब १९३५ विनोबा बीमार हुए थे तब इसी गांव में आकर रहे थे।

जबतक शंभूराव जीवित रहे विनोबा को उनका स्नेह मिलता रहा। बाल्यावस्था में उनकी धर्मनिष्ठा और विरक्त स्वभाव की बड़ी गहरी-छाप विनोबा पर पड़ी। उनकी मृत्यु के बाद गंगाबाई बनारस चली गईं और उन्होंने अपना शेष जीवन इस तीर्थ स्थान में ही व्यतीत किया। विनोबा के काका गोपालराव गागोदा में ही रहते और खेती-बाड़ी की व्यवस्था करते थे। प्रारंभ में बहुत दिनों तक उनके यहां कोई बच्चा नहीं हुआ था। अतः वे विनोबा को अपने पास रखते थे और उन्हें बहुत प्यार करते थे।

:: ३ ::

ममतामयी माँ

"माँ, तो मुझे ऐसी मिली कि आज भी उसकी याद आती है।"

—विनोबा।

सन् १९०१ में कुल की परम्परा के अनुसार विनोबा का यज्ञोपवीत संस्कार गागोदा में हुआ। अब उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में घर पर ही उन्हें कुछ धार्मिक शिक्षा दी गई। बाद में मराठी का साधारण वाचन लेखन सिखाया गया। उनके पिता श्री नरहरि भावे ने बड़ौदा के कलाभवन से रँगाई के काम का डिप्लोमा प्राप्त किया था। वे कलाभवन से रँगाई की शिक्षा लेने वाले विद्यार्थियों की पहिली टोली में से थे। कुछ दिनों तक उन्होंने बकिङ्घम मिल के रँगाई-विभाग में काम किया लेकिन बाद में बच्चों की शिक्षा की दृष्टि से मिल की नौकरी छोड़दी और बड़ौदा चलेगये। यहाँ वे सरकारी विभाग में टायपिस्ट का काम करने लगे। वे एक आधुनिक विचार के व्यक्ति थे। औद्योगिक शिक्षा में उनकी बड़ी रुचि थी। बड़ौदा आने पर विनोबा भी वहाँ चले गये और वहीं उनकी शिक्षा प्रारम्भ हुई।

लेकिन बच्चों का सबसे बड़ा गुरु तो उनकी माँ होती है। बाल्यावस्था में माता से जो संस्कार मिलते हैं, वही जीवनभर के लिए दृढ़ हो जाते हैं। विनोबा की माँ बड़े साधु स्वभाव की स्त्री थी। यद्यपि वे पढ़ीलिखी नहीं थी तथापि बड़ी बुद्धिमान और चतुर थीं। गहने तो वे प्रायः पहिनती ही नहीं थी। कपड़े भी कम ही पहिनती थी। आयु के साथ भक्ति और वैराग्य की भावना उनमें उत्तरोत्तर बढ़ती जारही थी। चाहे कितनी ही ठण्ड होती वे स्नान अवश्य करती थी। कितने ही मराठी सन्तों के भजन उन्हें कण्ठस्थ थे। भोजन बनाते समय वे उन्हें

गुनगुनाया करती थी। इन भजनों में वे अक्सर इतनी तल्लीन हो जाती थीं कि कभी दाल में नमक डालना भूल जाती थीं और कभी दुबारा नमक डाल देती थीं। माँ का यह सात्विक चिन्तन विनोबा में प्रारम्भ से ही था। जब विनोबा भोजन करने बैठते तो उनका ध्यान इस ओर जाता ही नहीं कि दाल में नमक ज्यादा है या कम। जब छोटे भाई बालकोबा दाल खारी होने की शिकायत करते तब उन्हें खयाल आता। वे प्रायः जो परोसा जाता उसी को खाकर उठ जाते थे।

एक बार जब वे बड़ौदा में पढ़ रहे थे तब माँ कोकण गईं। पढ़ाई में हर्ज न हो, इस दृष्टि से विनोबा को बड़ौदा ही छोड़ गईं। आम का मौसम आरहा था। अतः उन्होंने विनोबा को कुछ पैसे दिये और कहा—"इन पैसों से आम खा लेना।" बहुत दिनों बाद माँ जब वापिस लौटी तो उन्होंने विनोबा से पूछा—"तुमने आम खाये थे ?" विनोबा चौंके। याद आई कि माँ आम खाने के लिये पैसे देगई थी। बोले—"आम तो नहीं खाये।" और दौड़कर पैसे वापिस ले आये।

विनोबा की माँ बड़ी सेवाभावी थीं। अतिथि उनके लिये मानो भगवान् ही होते थे। उनके आतिथ्य में वे किसी प्रकार की कमी नहीं होने देती थी। उस घर में एक अन्वे सज्जन थे। विनोबा उन्हें 'अन्वे चाचा' कहा करते थे। वे बड़े परिश्रमी और साधु स्वभाव के व्यक्ति थे। क्षणभर भी खाली नहीं बैठते थे। कुएँ से पानी लाते, रस्सी बंटते, तथा अन्य कई काम करते रहते थे। माँ उनका बड़ा खयाल रखती थी और उनकी सेवा में भी कोई कमी नहीं होने देती थी। जब विनोबा बड़ौदा में पढ़रहे थे तब एक दिन तार आया कि अन्वे चाचा की मृत्यु होगई है। परिवार के किसी भी व्यक्ति की मृत्यु पर सूतक रखने की प्रथा थी। जब अन्वे चाचा की मृत्यु पर सूतक नहीं रखा गया तो विनोबा ने माँ से पूछा—"माँ, अन्वे चाचा का सूतक क्यों नहीं रखा जारहा है?" माँ ने कहा—"बेटा; वे अपने कोई रिश्तेदार नहीं थे। बाहर के एक सज्जन थे, उनके कोई आगे पीछे नहीं था। उनको अपने

घर में स्थान देदिया गया था।" विनोबा को इस समय मालूम हुआ कि वे अपने कुटुम्बी नहीं थे। घरवालों का और खासकर माँ का इन अन्धे चाचा के साथ इतना अच्छा व्यवहार था कि घर में वे पराये मालूम ही नहीं होते थे। इस घटना ने अज्ञात रूप से विनोबा में यह संस्कार डाल दिया कि हमें जिसकी सेवा करना हो, उसमें और अपने में कोई अन्तर नहीं समझना चाहिए। ऊंच नीच या छोटे बड़े का भेद करने वाला अच्छा सेवक नहीं हो सकता। माँ की इस सेवा-भावना का यह बीज विनोबा के जीवन में आज कितने विशाल रूप में पुष्पित और पल्लवित दिखाई देता है!

अतिथि-सेवा में तो माँ की इतनी दिलचस्पी थी ही, वे भिखारियों के साथ भी बड़ा अच्छा व्यवहार करती थीं। अपने द्वार पर आने वाले प्रत्येक भिखारी को वे कुछ-न-कुछ अवश्य देती थीं। भिखारी बिना कुछ लिये लौट जाय यह उन्हें बिलकुल सहन नहीं होता था। माँ की यह उदारता देखकर विनोबा ने एक बार पूछा—"माँ, यह भिखारी तो हट्टा-कट्टा था। इसे भिक्षा देने से क्या लाभ हुआ? भिक्षा देने से तो इसके व्यसन बढ़ेंगे ही।" इतना कहकर उन्होंने गीता का—'देशे काले च पात्रे च........' वाला श्लोक प्रमाण के रूप में सुना दिया। सब कुछ सुनकर माँ ने कहा—"बेटा, यह भिखारी नहीं, परमेश्वर था। क्या भगवान् को हम अपात्र कहेंगे? मैं पात्र अपात्र की बात सोचती ही नहीं, मैं तो उसे भगवान् मानकर जो कुछ होता है देदेती हूँ।" विनोबा पर माँ की इन बातों का बड़ा असर हुआ, वे कहते हैं—"माँ का वह उत्तर आज भी मेरे कानों में गूंजता है। इसका माकूल जवाब आज भी मेरे पास नहीं है।" कितनी जबरदस्त श्रद्धा थी माँ में!

माँ उनको प्रायः कहानियां सुनाया करती थीं। लेकिन वे कहानियां साधारण कहानियों से भिन्न होती थीं। उन कहानियों को सुनकर मनोरञ्जन के साथ-साथ भक्ति भावना से विनोबा का मन भर जाता था। माँ उनको रामनाम का महत्व बताती और कहती—"जो

रामनाम जपता है, ईश्वर पर विश्वास रखता है, वह निर्भय हो जाता है।" विनोबा को इन शब्दों से ऐसा लगता मानो शक्ति का खजाना खुलगया हो। इसी बल पर वे श्मशान जाकर वहाँ कील ठोक आने की शर्त लगाते। रात्रि के समय मार्ग में साँप बिच्छू भी हो सकते थे, लेकिन विनोबा को उनका भय ही नहीं लगता था। जिस भूत से दूसरे लड़के डरते रहते वह उन्हें कभी दिखाई नहीं दिया। उनका विश्वास दृढ़ हो गया कि रामनाम में बड़ी से बड़ी कठिनाई को भी हल करने की शक्ति है।

विनोबा के मन में माँ के लिये बड़ा आदर था। अपने नटखटपन से वे माँ को बिलकुल परेशान नहीं करते थे। जब अखबार पढ़ने लगते तो माँ को 'केसरी' पढ़कर सुनाते थे। 'केसरी' उस समय महाराष्ट्र में बड़ा लोकप्रिय पत्र था। कभी-कभी वे माँ को कुछ पढ़ना भी सिखाते थे। पवनार में एक प्रार्थना-प्रवचन में विनोबाजी ने कहा था—"मेरी माँ भक्तिमार्गप्रदीप पढ़ रही थी, उसे पढ़ना कम आता था। वह एक एक अक्षर टो टो कर पढ़ रही थी। एक दिन एक भजन के पढ़ने में उसने १५ मिनिट खर्च किये। मैं ऊपर बैठा था। नीचे आया और उसे वह भजन सिखा दिया। उसके बाद में रोज़ उसे कुछ देर तक बताता रहता और उसकी पुस्तक पूरी करादी।"

माँ के मन में गीता को समझने की भी बड़ी तीव्र इच्छा थी। लेकिन उस समय विनोबा को संस्कृत नहीं आती थी। वे माँ के लिए मराठी समश्लोकी गीता ले आये लेकिन इतने से उनका सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने माँ से कहा कि मैं ही किसी दिन सुबोध मराठी में गीता की रचना कर डालूंगा। माँ के जीवन-काल में तो यह आश्वासन पूरा नहीं हुआ लेकिन सन् १९३२ में उन्होंने उसे माँ की पवित्र स्मृति समझ कर पूरा किया और सरल मराठी भाषा में उसका अनुवाद कर दिया। उसका नाम रखा गया—'गीताई'। इस नाम में माँ की स्मृति स्पष्ट है। हम यह भी कह सकते हैं कि यह नाम रखते समय विनोबा के लिए मानो माँ और गीता एक ही होगई थीं। अपनी 'विचार पोथी' में

उन्होंने लिखा है—"जब मैं थोड़ा बहुत गीता का अर्थ समझने लगा तब माँ चल बसी। मुझे ऐसा लगा मानो वह मुझे गीता माँ की गोद में सौंप गई है। माँ गीता, मैं अब तक तेरे ही दूध से पला हूँ और आगे भी मुझे तेरा ही आधार है।"

उच्च संस्कारों का जीवन में बड़ा महत्व होता है। वे जितने ही ज़्यादा होते हैं, जीवन उतना ही सतेज बनता है। विनोबा तो जीवन की परिभाषा ही 'संस्कार संचय' कह कर करते हैं विनोबाजी के जीवन में अच्छे अच्छे संस्कार डालने का श्रेय उनकी माँ को ही है। वे उनको बढ़िया बढ़िया बातें बताया करती थीं। लेकिन केवल अच्छे अच्छे उपदेश भी उस समय तक प्रभाव नहीं डालते जबतक कि वे उपदेश देने वाले के जीवन में न उतरे हों। माँ के जीवन में बहुत से गुण साकार होगये थे अतः विनोबा पर उनका असर हुए बिना न रहा। जब बालक विनोबा किसी चीज़ के लिए हठ करते अथवा किसी चीज़ को और मांगते तो वे प्रेम से समझातीं—"बेटा, ज़्यादा चीज़ नहीं मांगना चाहिए। ज़्यादा मांगना लबाड़ीपन का चिन्ह है। मिठास तो थोड़ी ही चीज़ में होती है।"

सन्तोष और संयम के बारे में वे कहतीं "अधिक चीजों की इच्छा करने से सुख नहीं मिलता। सच्चा सुख तो संयम में है। हमको केवल पेट भर भोजन तथा आवश्यक वस्त्र के अलावा और अधिक चीजों की इच्छा नहीं करनी चाहिए।" जब विनोबा माँ को इधर-उधर की बातें सुनाते और कहते कि अमुक व्यक्ति ऐसा कहता था तो माँ उनमें बहुतसी ऊटपटांग बातें देखकर कहतीं—"ईश्वर-भक्त और साधु-सन्तों की बातें ही ठीक होती हैं। उनकी बातों पर विश्वास और अमल करना चाहिए। दूसरे लोगों की बातों में उलझने से कोई लाभ नहीं होता क्योंकि वे कुछ झूठ और कुछ सच रहती हैं।" वे देशभक्ति को बड़ा महत्व देती थीं। वे कहतीं थीं—"देशभक्ति ही ईश्वरभक्ति है फिर भी ईश्वरभजन उसके साथ होना चाहिए।"

विनोबाजी की माँ बड़ी सेवाभावी थीं। उन्होंने अपनी सेवा से पास पड़ोस के लोगों का बड़ा स्नेह सम्पादन कर लिया था। इस सम्बन्ध में एक बार विनोबाजी ने कहा था—"मुझे अपनी माँ की एक बात याद आती है। जब कोई पड़ोसिन बीमार होती तो वह उसके घर जाकर रसोई बना देती। हमारे घर का भोजन तो वह पहिले बना लेती और बाद में बीमार पड़ोसिन के घर जाती। अपनी माँ के साथ मेरा ऐसा सम्बन्ध था कि मैं उसे जो कुछ कहना चाहता था, बिना हिचकिचाहट के कह देता था। एक बार मैंने उससे कहा—"माँ, तुम कितनी स्वार्थी हो पहिले अपने घर का भोजन बनाती हो, बाद में दूसरे के घर का।" माँ बोली—"विन्या*, तू कितना मूर्ख है। यदि पहिले दूसरे के घर की रसोई बनाऊँ तो बहुत सवेरे उठकर करनी पड़ती हैं और उन लोगों को ठंडा भोजन मिलता है। लेकिन देर से जाने पर उन्हें गरम-गरम भोजन मिलता है।"

विनोबाजी की माँ में धर्म बुद्धि का इतना विकास होगया था कि उसके इस प्रकार के संस्मरण सुनाते हुए आज भी विनोबा बड़ा आनन्द अनुभव करते हैं और आज भी उससे बहुत कुछ सीखने को मिल जाता है।

माँ बड़ी उच्चाशयी और उदार-हृदय थी। उस पुराने जमाने में भी उनके मन में हरिजनों के प्रति प्रेम था। वह कहतीं—"अन्त्यज नीच नहीं हैं। यदि नीच होते तो विठोबा महार नहीं होते।" इस उदार दृष्टिकोण तथा भक्ति भावना के साथ माँ में दृढ़ता भी कम नहीं थी।

बचपन से ही विनोबाजी का स्वभाव वैराग्य की ओर रहा है। शंकराचार्य, ज्ञानदेव और रामदास स्वामी उनके प्रेरणा और श्रद्धा के केन्द्र रहे हैं। प्रायः माताएं यही चाहती हैं कि उनके बच्चे बड़े हों और उनके सामने ही उनका विवाह होजाय। उन्हें गृहस्थाश्रम में प्रवेश

---

* विनोबा का घरेलू नाम।

करते देखकर वे अपने जीवन की सार्थकता मान लेती हैं । लेकिन विनोबा की माँ ने अपने पुत्रों से कभी ऐसी अपेक्षा नहीं की । उन्होंने उनसे विवाह का आग्रह कभी नहीं किया । इतना ही नहीं, यदि वे विनोबा में कभी कोई कमी देखतीं तो कहतीं—"विन्या, गृहस्थाश्रम को ठीक तरह निभाने म केवल एक पीढ़ी का उद्धार होता है, लेकिन उत्तम ब्रह्मचर्य के पालन से सात पीढ़ियों का उद्धार होता है ।"

इन बातों ने विनोबा के मन में ब्रह्मचर्य का महत्व बैठा दिया । वे उस ओर उन्मुख हुए और कड़ा जीवन बिताने का प्रयत्न करने लगे । माँ बिस्तर करते हुए विनोबा के लिए भी गादी बिछाती लेकिन विनोबा सोते समय उसे हटा देते और कम्बल बिछाकर सोते । माँ पूछती—"गादी निकाल कर केवल कम्बल पर क्यों सोता है ?" विनोबा कहते —"यह नियम है कि ब्रह्मचारी को नरम गद्दों पर नहीं सोना चाहिए ।" विनोबा की यह प्रवृत्ति देखकर वे गद्‌गद् होजातीं । कहतीं—"विन्या, ईश्वर ने मुझे स्त्री बनाया है, अतः मैं विवश हूँ, लेकिन यदि ईश्वर ने मुझे पुरुष बनाया होता तो मैं तुझ से भी कुछ अधिक कड़ा जीवन बिताकर दिखा देती ।" अपना यह संस्मरण सुनाते हुए विनोबा ने कहा था—"माँ की वृत्ति देखकर मुझे शङ्का ही नहीं होती कि वह ऐसा नहीं कर पाती ।" ऐसी माँ की गोदी में पलना विनोबा का बहुत बड़ा सौभाग्य था ।

:: ४ ::

विद्यार्थी-जीवन

सन् १९०३ में विनोबा बड़ौदा आये । इस समय उनकी आयु ९ वर्ष की थी । वे तीसरी कक्षा में भर्ती किये गये । प्रारम्भ से ही वे बड़े कुशाग्रबुद्धि थे । अतः कक्षा के अच्छे विद्यार्थियों में उनकी गिनती होने

लगी। वे हमेशा अपनी कक्षा में प्रथम रहे। छटी कक्षा तक इसी पाठशाला में पढ़ने के बाद वे हाई स्कूल में भर्ती हुए। छटी कक्षा की परीक्षा में वे सर्व प्रथम आये। संस्कृत में उन्हें १०० में से ८५ नम्बर मिले।

बचपन से ही विनोबा के मन में प्रकृति के प्रति आकर्षण रहा है। वे बड़े घुमक्कड़ माने जाते थे। अपने साथियों के साथ या अकेले ही वे घूमने निकल जाते और आसपास के पहाड़ों के प्राकृतिक दृष्य देखते थे। पहाड़ों में घूमने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था। दुबले पतले दिखाई देने वाले विनोबा के पैरों में बड़ी जबरदस्त शक्ति थी। वे कहा करते कि १०–१५ मील खुली हवा में घूमलेने से बुद्धि, मन और शरीर ताजे हो जाते हैं।

विनोबाजी के बाल साथी श्री गोपालराव काले ने उनके घूमने के बारे में लिखा है—"विनोबाजी को घूमने का बड़ा शौक था। एक समय में ५–७ मील घूमलेना तो उनके लिए कुछ नहीं था। दिन में कम से कम १५ मील का चक्कर तो लग ही जाता था। कभी कभी तो दिन में १२ बजे ही उन्हें घूमने की लहर आजाती तब हम लोगों की बड़ी फजीहत हो जाती थी। लेकिन जब घूमने निकलते तो हमें समय का कोई भान ही नहीं रहता था।"

घूमने की तरह बोलने में भी वे बड़े तेज थे और जब बोलना प्रारम्भ करते तो उसका प्रवाह अखण्ड रूप से चलता रहता था। कभी कभी रास्ते में ही चर्चा शुरू हो जाती और चौराहे पर घण्टों खड़े-खड़े चर्चा होती रहती। समय का कोई खयाल नहीं रहता और रास्ते चलते हुए लोग उससे आकर्षित होकर जमा हो जाते। कभी कभी यह चर्चा इतनी लम्बी हो जाती कि रात के १०–११ बजने का समय हो जाता और वह चलती ही रहती। घरके लोग भोजन आदि से निवृत्त होकर सोने लगते। इस मित्र-मण्डल के माता पिता भी अपने बच्चों के इस स्वभाव के आदी होगये थे। अतः देर से घर पहुँचने पर डाट फटकार का मौका नहीं आने पाता था।

बचपन में विनोबा बड़े रूखे स्वभाव के माने जाते थे। साथी उनसे डरते रहते थे। वे वैसे कम बोलते थे लेकिन जब कोई छेड़ देता तो इतनी चुभती हुई भाषा का प्रयोग करते कि बेचारा निरुत्तर हो जाता और आगे बोलने का साहस ही नहीं करता। विनोबा के बाल साथी श्री गोपालराव काले ने उनके इन चुभते हुए उत्तरों के कुछ उदाहरण दिये हैं—"कोई अगर उनसे पूछता—नाखून और बाल इतने क्यों बढ़ाये हैं ? तो झट से उल्टा सवाल करते—'क्या आप नाई हैं ?' कन्धे पर कुर्ता डालकर बड़ौदा जैसे शहर में भी वे बेरोक टोक घूमा करते थे। हम भी उनके साथ इसके आदी होगये थे और उनके साथ वैसे घूमने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती थी। कोई अकड़कर अंग्रेजी बोलने लगता तो पूछते—क्या तेरी माँ मेम थी ? लेकिन इसका मतलब अंग्रेज़ी का विरोध नहीं था। मातृभाषा का ज्वलन्त अभिमान होते हुए भी अंग्रेज़ी की शुद्धता के बारे में और खास कर अंग्रेजी भाषा के उच्चारण के बारे में उनके जितना आग्रह रखनेवाला कोई दूसरा मेरे देखने में नहीं आया।"

बुरी आदतों से उनको स्वभावतः बड़ी नफ़रत थी। वे स्वयं तो उनसे दूर रहते ही थे, अपने मित्रों की भी बुरी आदतों को सहन नहीं करते थे। उनके एक मित्र को चाय पीने का बड़ा शौक था। विनोबा को यह पसन्द नहीं था। एक दिन जब वह पाखाने गया तो विनोबा भी उसके पीछे पीछे पहुँचे और बाहर से पाखाने का दरवाज़ा बन्द कर दिया। मित्र बेचारा बड़ा परेशान हुआ। कुछ देर बाद वह चिल्लाने लगा। बोला—"मेरा दम घुटरहा है, किसी तरह मुझे बचाओ।" विनोबा ने कहा—"चाय नरक है। तू उसे छोड़ने का वचन दे तो मैं दरवाज़ा खोल दूंगा, अन्यथा नहीं।" मित्र तङ्ग आचुका था। बोला—"मेरा उद्धार करो। मैं आज से चाय छोड़ रहा हूँ।" उससे वचन लेकर ही विनोबा ने सांकल खोली।

विनोबा के घर का वातावरण राष्ट्रीय था। जब बङ्ग-भङ्ग का

आन्दोलन जोर पर था और लोकमान्य तिलक महाराष्ट्र में स्वदेशी, स्वराज्य, राष्ट्रीय शिक्षा एवं वहिष्कार का सन्देश सुना रहे थे, तब गागोदा में 'केसरी', 'भाला', 'काल', 'राष्ट्र मत', 'हिन्दू पञ्च' और 'विहारी' जैसे समाचार-पत्र उनके घर पर आते थे। विनोबा बड़ी उत्सुकता से इनको पढ़ते और नये समाचारों पर होने वाली चर्चाओं को ध्यान से सुनते थे। उन दिनों आसपास के क्रान्तिकारी लोग गागोदा के पास के जङ्गल में कभी-कभी इकट्ठे हुआ करते थे और निशाना लगाने आदि का अभ्यास भी करते थे।

विनोबा के मन पर इन सब बातों का बड़ा असर होता था। वे राष्ट्रीयता से ओतप्रोत होते जारहे थे। अपने मित्रों में भी वे यही भावना भरते थे। जिस मित्र की चाय छुड़ाने का उल्लेख ऊपर किया गया है वह एक धनी ब्राह्मण का लड़का था। बड़ौदा में उसकी इनामी ज़मीन थी। वह गौर वर्ण का एक स्वस्थ युवक था। उसे घुड़सवारी का बड़ा शौक था। एक दिन वह घोड़े पर बैठकर अपनी इनामी ज़मीन की ओर जा रहा था। वहाँ उसने देखा कि एक अंग्रेज़ ने उस ज़मीन में अपना तम्बू लगा लिया है। युवक गुस्से से लाल होगया। वहाँ अंग्रेज़ साहब का नौकर था। युवक ने उससे कहा—"यह हमारी ज़मीन है। इसमें से अपना तम्बू निकाल लो।" नौकर बोला—"यह गोरे साहब का तम्बू है। यह नहीं निकाला जासकता, भागजा यहाँ से।" युवक ने कहा—"यह मेरी ज़मीन है। साहब से कहना कि तम्बू निकाल ले नहीं तो कल आकर मैं खुद इसे उखाड़ फेकूंगा।" और वह गुस्से में भरा हुआ वहाँ से चला आया। दूसरे दिन फिर घोड़े पर सवार होकर वह वहाँ पहुँचा। अब भी तम्बू लगा हुआ था। उसने अपने हाथ से तम्बू उखाड़कर फेंक दिया और वापिस आगया। वापिस आकर वह विनोबा से बोला—"विनू, मैंने उस साहब का तम्बू आज उखाड़ फेंका।" विनोबा ने कहा—"केवल तम्बू ही उखाड़ फेंका? उस साहब को क्यों नहीं उखाड़ फेंका?" साहब ने बड़े अधिकारियों से शिकायत की।

बड़ौदा शहर में यह वात चर्चा का विषय वनगई। लेकिन युवक का वाल भी वांका न हुआ। विनोवा का यह मित्र वड़ा होकर वरमा गया और वहाँ एक वड़ा ठेकेदार वनगया। एक वार जव विनोवा नासिक आये तो वहाँ इससे भेंट होगई। वह वोला—"क्या मुझे भूलगये ?" विनोवा ने कहा—"अरे, मैं तुझे कैसे भूल सकता हूँ ? क्या मैं अपना वाल्यकाल ही भूल जाऊँगा ?"

छटी कक्षा पास करके विनोवा हाई स्कूल में भर्ती हुए। यहाँ भी वे अपनी कक्षा में प्रथम रहने लगे। परीक्षाओं में अच्छे नम्वर से पास होने के कारण अव उनको छात्रवृत्ति मिलने लगी। पिताजी को उनकी कुशाग्र वुद्धि से वड़ी वड़ी आशा थी। वे चाहते थे कि उनको यूरोप भेजा जाय और वहां औद्योगिक शिक्षा दिलवाई जाय। विनोवा ने संस्कृत ले रखी थी अतः उन्होंने आग्रह करके संस्कृत छुड़वाई और फ्रेन्च भाषा लेने के लिए कहा। उन्होंने फ़्रेन्च पढ़ना शुरू किया लेकिन संस्कृत प्रिय होने के कारण वे उसे अलग से सीखते रहे।

इन्हीं दिनों एक वार शिवाजी-जयन्ती का दिन आया। विनोवा ने मित्रों से कहा कि हमको शिवाजी-जयन्ती मनानी चाहिए। मित्रों ने कहा—"अवश्य मनानी चाहिए। लेकिन कहाँ और कैसे मनाएं ?" विनोवा वोले—"हम पहाड़ पर चलें। वहाँ मुक्त आकाश के नीचे जंगल के स्वतन्त्र वातावरण में शिवाजी-जयन्ती मनाएं। स्वतन्त्रता के प्रेमी शिवाजी की जयन्ती किसी दीवानखाने में नहीं मनाई जासकती।" जंगल में जयन्ती मनाना निश्चित होगया। लेकिन उस दिन स्कूल की छुट्टी नहीं थी अतः तय हुआ कि इतिहास के घण्टे को छोड़ दिया जाय। इतिहास का घण्टा आया और सव लोग उसे छोड़कर जंगल पहुँचे। वहाँ सवने वड़ी श्रद्धा के साथ शिवाजी-जयन्ती मनाई। जव वापिस लौटने लगे तो चर्चा चली कि इतिहास का घण्टा छोड़ देने पर कल सजा मिलेगी। उसके लिए क्या किया जाय ? विनोवा ने कहा—"इसके लिए चार-चार आने जुर्माना अपने साथ लेजायं और जव मास्टर

साहब बिगड़ें तो सब जुर्माना देदें। यह सुझाव सबको अच्छा लगा। दूसरे दिन सब लोग चार चार आने लेकर स्कूल पहुँचे। इतिहास का घण्टा आया। मास्टर साहब ने पूछा—"कल तुम लोग कहाँ थे ?"

"शिवाजी-जयन्ती मनाने जंगल में गये थे।" "क्या शिवाजी-जयन्ती स्कूल में नहीं मनाई जासकती थी ?" "क्या गुलामखाने में भी शिवाजी-जयन्ती मनाई जासकती है ?" विनोबा ने कहा।

"तुम सब बदमाश हो। मैं तुम्हारे ऊपर जुर्माना करूंगा।"

"यह लीजिये जुर्माना। हम सब घर से लेकर ही आये हैं।" यह कहकर सबने एक साथ चार चार आने दे दिये। मास्टर साहब स्तंभित रह गये।

अपने विद्यार्थी-जीवन में विनोबा ने बड़ा कठोर जीवन व्यतीत किया। वे चटाई पर सोते थे और तकिया नहीं लगाते थे। पैरों में तो वे कुछ पहिनते ही नहीं थे। मीठी चीजें न खाने का व्रत उन्होंने ले रखा था। जब उनकी छोटी बहिन का विवाह हुआ तब भी उन्होंने मीठा नहीं खाया। विवाह में वे सब लोगों से अलग बैठते और प्रतिदिन जैसा भोजन करके उठ जाते। उनका ब्रह्मचर्य-व्रत उनकी स्वयं प्रेरणा का ही फल था। घर के धार्मिक वातावरण में उन्होंने स्वामी रामदास का 'दासबोध' पढ़ा। स्वामीजी के जीवन का उन पर बड़ा असर पड़ा। अपने एक चचेरे भाई महादेव के साथ बारह वर्ष की आयु में ही उन्होंने आजन्म ब्रह्मचारी रहने का व्रत ले लिया। महादेव तो इस व्रत को निभा न सका लेकिन विनोबा हमेशा अडिग रहे। अपने ब्रह्मचर्य-व्रत को सफल बनाने के लिए उन्होंने यह कठोर और विरागी जीवन व्यतीत करना प्रारंभ किया था। वे विद्यार्थी-जीवन समाप्त होजाने पर भी कई दिनों तक नंगे पैर रहे। साबरमती में गर्मी के दिनों में रेत में भी वे नंगे पैर चलते रहे। वर्षा आने पर उन्होंने आश्रम की बनी हुई चप्पलें पहिनीं। इसी प्रकार जमीन पर भी वे कई दिनों तक सोते रहे। वर्धा में सन् १९३६ में उन्होंने अपने सोने के लिए एक बाँस का तख्ता

वनाया। यही हाल ठंडे पानी से नहाने के सम्वन्व में था। जव वीमार होजाते और मां गरम पानी से नहाने का वहुत आग्रह करती तो ही वे मजवूरी से गरम पानी से नहाते थे।

अपने आग्रही स्वभाव के कारण उन्हें कभी कभी अपने पिता का कोपभाजन भी वनना पड़ता था। वे उन्हें डांट फटकार वताते और कभी-कभी पीट भी देते थे लेकिन जव पिटाई का अवसर आता तो विनोवा निर्भयता से उनदिनों लोकमान्य द्वारा न्यायालय में कहे हुए शव्द ही दुहरा देते थे—"आप मुझे भले ही दोषी ठहरायें लेकिन मैं तो निर्दोष हूं। मेरे सामने इस न्यायालय से भी वड़ा ऊपर ईश्वर का न्यायालय है। शायद ईश्वर की यही इच्छा है कि मेरे कष्ट-सहन से ही मेरा काम अधिक उन्नति करे।"

विनोवा का विद्यार्थी जीवन वड़ा तेजस्वी था। दासवोध, मोरोपन्त का आर्यभारत और केकावली उस समय विनोवा के प्रिय ग्रन्थ थे। आर्यभारत का कुछ हिस्सा तो उन्हें कण्ठस्थ था। केकावली वे इतनी ऊंची आवाज़ से पढ़ते थे कि सारी गली गूंज उठती थी। इनके अलावा ज़व्त की गई पुस्तकों में मेजिनी के चरित्र की सावरकर द्वारा लिखी हुई प्रस्तावना आदि वे मित्रों को ज़ोर से पढ़कर सुनाते थे। सन् १९०८ में 'काल' 'केसरी' आदि अखवार तथा वड़ौदा स्टेट लायव्रेरी के सारे मराठी ग्रन्थ पढ़कर विनोवा ने अपनी आखें इतनी खराव कर लीं कि आज के जैसा योगयुक्त रहन-सहन रखकर भी आंखें सुधर नहीं सकीं।

विनोवा का मराठी ज्ञान अद्वितीय है, यह कहने की आवश्यकता नहीं। कई वार शिक्षक उन्हें ९९ नंवर इसलिये देते थे कि पूरे सौ के सौ कैसे दिये जायं ?

सन् १९१३ में उन्होंने हाई स्कूल की परीक्षा दी। अपने साथियों के साथ वे परीक्षा देने अहमदावाद गये। अन्य विषयों में तो वे अच्छे थे ही पर फ्रेन्च अभी तक नहीं पढ़ पाये थे लेकिन थोड़े ही दिनों में उन्होंने उसकी भी इतनी तैयारी करली कि वे उसमें भी पास हो गये।

:: ५ ::

कालेज जीवन और वैचारिक क्रान्ति

"विनोबा गणितज्ञ हैं। हिसाब लगाये बिना न कुछ पढ़ते हैं, न सोचते हैं, न कोई काम हाथ में लेते हैं।" —काका कालेलकर

हाईस्कूल परीक्षा पास करके वे कालेज में भर्ती हुए। अब उनके विचारों में गहराई आगई थी लेकिन स्वभाव में वही अग्नि जैसी प्रखरता थी। गणित उनका प्रिय विषय था। अपने गणित प्रेम के कारण वे विद्यार्थियों और शिक्षकों में काफ़ी प्रसिद्ध होगये थे। पाँचवीं छटी कक्षा से ही ऊँची कक्षा के विद्यार्थी उनके पास गणित के प्रश्न लेकर आते और वे उन्हें हल कर देते थे। लेकिन उनका तरीक़ा बड़ा विचित्र था। उनके कड़े स्वभाव के कारण विद्यार्थी किसी कागज़ पर अपना प्रश्न और नाम लिखकर उन्हें देजाते थे और वे कागज़ की दूसरी तरफ़ प्रश्न को हल करके उसे लौटा देते थे। प्रायः उनकी दोनों जेब इन पर्चों से भरी रहती थी। एक में विद्यार्थियों द्वारा दिये हुए पर्चे और दूसरे में हल किये हुए पर्चे। जब कक्षा में फ़ुरसत होती अथवा ऐसा विषय चल रहा होता जिसे सुनने की आवश्यकता अनुभव नहीं करते तो वे जेब से पर्चे निकालते और प्रश्न हल करने लगते।

एक बार कक्षा में अध्यापक नोट लिखा रहे थे और विनोबा गणित के प्रश्न हल कर रहे थे। विनोबा को पाठ याद था अतः उन्होंने उसके नोट लिखने की आवश्यकता अनुभव नहीं की। अध्यापक यह सब देख रहे थे। जब वे नोट लिखा चुके तो विनोबा को लज्जित करने के लिए बोले—"भावे, ज़रा अपने नोट तो पढ़कर सुनाओ" विनोबा खड़े हुए और कापी उठाकर उसमें से इस तरह धड़ाधड़ पढ़ने लगे मानो उन्होंने सचमुच नोट लिखे हों। अध्यापक चकित रह गये। उन्हें विश्वास नहीं

हुआ कि विना लिखे इस प्रकार नोट सुनाये जासकते हैं। अतः उन्होंने कहा—"ज़रा मुझे अपनी कापी तो देना।" विनोवा ने कहा—"आप इसे पढ़ नहीं सकेंगे।" अध्यापक ने कापी देखी। उसमें कुछ नहीं लिखा था।

अध्ययन में विनोवा किसी से पीछे नहीं रहते थे। उनका अध्ययन नियमित रूप से चलता रहता था। अतः उन्हें कभी यह अनुभव नहीं होता था कि उनका अमुक विषय कमज़ोर है और उसके लिए कठिन परिश्रम करना चाहिये। एक वार अध्यापक गणित का एक कठिन प्रश्न विद्यार्थियों को समझा रहे थे। जव हल कर चुके तो पुस्तक में उत्तर देखा। उत्तर नहीं मिला। अतः उसे फिर किया लेकिन फिर वही उत्तर। समझ में नहीं आया कि कहाँ भूल रह गई है। विनोवा के गणित ज्ञान की धाक शिक्षक पर भी थी अतः उन्होंने विनोवा से कहा—"भावे, तुम इस प्रश्न को हल करो।" विनोवा उठे और वोले—"आपका तरीका और उत्तर दोनों ही ठीक है। पुस्तक में उत्तर ग़लत छपा है।" लेकिन अध्यापक को सन्तोष नहीं हुआ। अतः विनोवा फिर उठे और उन्होंने वताया कि भूल कहाँ रह जाती है। अव अध्यापक को सन्तोष हुआ।

अपने गणित के ज्ञान पर विनोवा को आत्म-विश्वास था। वे किसी भी प्रश्न को हल किये विना नहीं छोड़ते थे। अपने इस आग्रही स्वभाव के कारण एक वार तो वे फेल होते होते वचे। फ़र्स्ट ईयर (एफ०ए०) की परीक्षा में गणित का पहिला प्रश्न वड़ा कठिन आया। विनोवा उसमें उलझ गये। वे उसे हल किये विना आगे वढ़ना नहीं चाहते थे। जव करीव-करीव पूरा समय होने आया तव वे चौंके और उस प्रश्न को छोड़ा। जल्दी जल्दी दो तीन दूसरे प्रश्न हल किये जिससे ३० अङ्क मिल गये और वे फेल होने से वच गये।

विनोवा का यह गणित-ज्ञान उन्हें सव कुछ नापतोल कर करने की प्रेरणा दे रहा था। वे जीवन के वारे में सोचने लगे और उसे सही दिशा में वढ़ाने के लिये प्रयत्न करने लगे। उन्होंने वहुत सी इधर-उधर

की पुस्तकें पढ़ना छोड़ दिया और दर्शन, गणित आदि अपने प्रिय विषयों का ही गंभीर अध्ययन प्रारंभ किया। स्थायी महत्व के ग्रन्थ अब उन्हें अधिक पसन्द आने लगे।

अब उनमें बड़ी तेज़ी से राष्ट्रीय एवं आध्यात्मिक चेतना पैदा हो रही थी। राष्ट्रीय चेतना का तो उस समय केवल इतना ही मतलब होता था कि देश को स्वतन्त्र किया जाय। अतः विद्यार्थियों में चेतना पैदा करने की दृष्टि से उन्होंने अपने मित्रों के साथ सन् १९१४ में 'विद्यार्थी मण्डल' नामक एक संस्था की स्थापना की। 'विद्यार्थी मण्डल' की ओर से प्रति सप्ताह किसी विद्यार्थी का भाषण होता। भाषण के बाद उसी विषय पर खुलकर चर्चा होती। कार्यक्रम बड़ा मनोरंजक और बोधप्रद होता था। उसके सारे सदस्य क्रान्तिकारी विचारों के थे। सब के मन में देशभक्ति पल्लवित हो रही थी। यदि वह कुछ ज्यादा दिन इसी तरह चलता रहता तो बहुत संभव था कि आतंकवादियों का केन्द्र बन जाता। इस मण्डल के सदस्य दूसरे मण्डलों की काफ़ी खबर लेते थे। और उनकी कड़ी से कड़ी आलोचना करने में नहीं हिचकते थे। लोक-मान्य तिलक ने महाराष्ट्र में जिन उत्सवों के द्वारा चेतना का मंत्र फूँका था वे ही इस मण्डल के प्रधान उत्सव थे। मण्डल के सदस्य बड़े उत्साह से शिवाजी-जयन्ती, गणेश जयन्ती और दास नवमी मनाते थे। इस विद्यार्थी-मण्डल का अपना एक पुस्तकालय था जो उसके सदस्यों ने भिक्षा मांग कर बनाया था। पुस्तकों का चुनाव बड़ा सुन्दर था। उसमें १६०० पुस्तकें आगई थीं लेकिन वे सभी पुस्तकें ऐसी थीं जिनको उन विषयों की उच्च कोटि की पुस्तकों में से कहा जा सकता था। विनोबाजी के सभी साथी पुस्तकों के प्रेमी थे अतः उन्होंने चुन चुनकर ही पुस्तकें खरीदीं और इकट्ठी की थीं। दुर्भाग्य से यह मण्डल अधिक दिन नहीं चला। साथी लोग इधर उधर चले गये और उसका काम बंद हो गया। अन्त में मण्डल की सारी पुस्तकें साबरमती आश्रम को देदी गईं।

'विद्यार्थी मण्डल' में श्री विनोबा द्वारा दिये हुए भाषणों के सम्बन्ध में श्री गोपालरावजी काले ने लिखा है—"विद्यार्थी मण्डल में विनोबाजी के भाषण यद्यपि बहुत थोड़े लोगों के सामने होते थे लेकिन वैसे व्याख्यान उनके मुँह से बाद में मैंने आज तक नहीं सुने। मेजिनी पर दिया हुआ उनका भाषण इतना अद्भुत था कि आज सालों के बाद भी ऐसा लगता है मानो हम अभी उसे सुन रहे हैं। उस समय की उनकी भाषा का आवेश और वक्तृत्व कला कुछ और ही थी। बाद के दिनों में उनकी वक्तृत्व कला शान्त होती गई, और आज तो वह बिलकुल ही धीर गम्भीर होगई है। पहिले के उनके वक्तृत्व की आज कल्पना भी नहीं की जासकती।"

इस तरह एक ओर तो उनके राष्ट्रीय विचार उन्हें देशभक्ति की ओर अग्रसर कर रहे थे और दूसरी ओर उनका दर्शन-ग्रन्थों का गहन अध्ययन उन्हें वैराग्य की ओर आकर्षित कर रहा था। पुस्तकों का उन्हें ज़बरदस्त शौक था। पिताजी की आर्थिक स्थिति तो इतनी अच्छी नहीं थी कि वे बहुतसी पुस्तकें खरीद पाते तथापि जब उन्हें परीक्षा में अच्छे नम्बर से पास होने के कारण इनाम मिलता था तब वे पुस्तकें खरीदने में ही उसका उपयोग करते थे और स्वामी रामदास का दासबोध, तुकारामजी की गाथा, सन्त ज्ञानेश्वर की ज्ञानेश्वरी आदि पुस्तकें खरीद ली थीं। ये उनकी प्रिय पुस्तकें थीं। पुस्तकों के अध्ययन का लाभ उन्हें बड़ौदा की सेन्ट्रल लाइब्रेरी से भी बहुत मिला। कालेज से घर आते जाते बीच में यह सरकारी पुस्तकालय पड़ता था। वे प्रतिदिन एक पुस्तक इस वाचनालय से लेकर पढ़ते थे। पढ़ने की उनकी गति बड़ी तीव्र थी। कालेज में मामूली सी हाज़िरी देकर अक्सर पुस्तकालय आजाते और वहाँ के वाचनालय में बहुतसा समय बिताते। उनकी तीव्र गति को देखकर पुस्तकालयाध्यक्ष ने एक दिन कहा—"अभी वाचनालय के नियम के अनुसार एक ही पुस्तक प्रतिदिन मिलती है, लेकिन यदि तीन पुस्तकें प्रतिदिन मिलती तो सम्भव था कि आप तीनों पुस्तकें

एक दिन में समाप्त करदेते ।" विनोवा ने पुस्तकालय की प्रायः सारी पुस्तकें पढ़ डालीं । इसे देख कर एक दिन पुस्तकालयाध्यक्ष ने फिर कहा—"यहाँ जितनी पुस्तकें हैं क्या उनमें एक भी पुस्तक ऐसी मिलेगी जिसे आपने नहीं पढ़ा है ?" विनोवा मुस्करा दिये। इतने ज़्यादा अध्ययन का ही यह परिणाम हुआ कि उनको जल्दी ऐनक लगाना पड़ा। उनकी आँखें खराव होगईं ।

एक ओर देशभक्ति की भावना ने तथा दूसरी ओर ज्ञान वैराग्य की ओर उनके जवरदस्त झुकाव ने उनके विचारों को परिपक्व वना दिया । अव वे अपने जीवन की दिशा ढूँढ़ने लगे थे और उस सम्वन्ध में सोचने विचारने लगे थे । परिणाम यह हुआ कि कुशाग्र वुद्धि होने पर भी, कॉलेज की शिक्षा पद्धति से उनको अरुचि-सी होने लगी। एक वार शिक्षा शास्त्र के सम्वन्ध में एक प्रोफ़ेसर साहव से चर्चा प्रारम्भ होगई । विनोवा के विचार उनसे मिल नहीं रहे थे । प्रोफेसर साहव जव अपनी वात समझा न सके तो वोले—"भाई मैं १८ वर्ष से शिक्षा का काम कर रहा हूँ ।" विनोवा तुरन्त वोल उठे—"यदि अठारह साल तक वैल यन्त्र के साथ खिचता रहे तो क्या वह यन्त्र-शास्त्र का ज्ञाता वन जायगा ?" उत्तर कड़ा अवश्य था लेकिन एक ओर जहाँ वह विनोवा के विचारों की परिपक्वता का परिचायक था, वहाँ वह उनके विचारों की दृढ़ता के साथ कहने की वृत्ति को भी वता रहा था ।

गीता में दी हुई स्थितप्रज्ञ की परिभाषा के अनुसार वे सुखों से अपनी इन्द्रियों को उसी प्रकार हटाने लग गये थे जैसा खतरे के समय कछुवा अपने अङ्गों को समेट लेता है । अठारह उन्नीस वर्ष की उनकी यह उम्र ऐसी थी जिसमें युवक प्रायः साँसारिक सुखों की ओर तेज़ी से वढ़ता है, लेकिन विनोवा तो दूसरी दिशा में वढ़रहे थे । अतः उन्होंने अपने मन में इनके लिए जैसे अरुचि पैदा करली थी । एक दिन मित्रों ने आग्रह किया कि नाटक देखने चलें । विनोवा ने वहुतेरा मना किया लेकिन वे नहीं माने । विनोवा देखने गये परन्तु अपने साथ एक दरी

लेगये। खेल प्रारम्भ हुआ। लेकिन विनोबा के लिए उसमें आनन्द कहाँ था? उनका मन ऊबने लगा और वे दरी बिछाकर लेट गये। मित्रों से बोले—"जब खेल समाप्त होजाय तब मुझे उठा लेना।" और प्रगाढ़ निद्रा में मग्न होगये। खेल समाप्त होने पर मित्रों ने जगाया और वे उनके साथ घर आगये।

उनका सोचने का तरीक़ा एकदम तेज़ी के साथ बदलने लगा था। अपनी एक पुस्तक पर अपना नाम लिखा हुआ देखकर उनके मन में विचार आया कि नाम लिखने से तो पुस्तकों के प्रति आसक्ति बढ़ती है। अनासक्ति की ओर बढ़ने की इच्छा रखने वाले के मनमें पुस्तक के प्रति भी आसक्ति की भावना क्यों होनी चाहिए? अतः उन्होंने निश्चय किया कि वे आज से पुस्तकों पर अपना नाम नहीं लिखेंगे। इस प्रकार उनकी यह वैचारिक क्रान्ति जीवन की दिशा की ओर संकेत करने लगी थी और वे उस दिशा को ठीक तरह पहिचानने और उस ओर तेज़ी से चलपड़ने के लिए व्याकुल दिखाई देते थे। इस क्रान्ति के मूल में उनका गणित-प्रेम ही काम कर रहा था जो उनको अपने जीवन का हिसाब लगाने के लिए बेचैन बना रहा था।

:: ६ ::

बड़े घर की खोज में

"यों तो घर की स्थिति कुछ ऐसी नहीं थी कि मेरा वहाँ रहना असंभव होजाय। माँ तो मुझे ऐसी मिली थी कि जिसकी याद आज भी मुझे नित्य आती है। पिताजी अभी जीवित हैं।† उनकी उद्योग-शीलता, अभ्यास-वृत्ति, साफ़ सुथरापन, सज्जनता आदि गुण सभी को

† ३० अक्टूबर १९४७ को विनोबाजी के पिताजी का देहान्त होगया।

दीं। इस विचार ही विचार में दो वर्ष बीत गये। इसी बीच गोपाल रावजी का विवाह भी होगया। गोपालरावजी नहीं चाहते थे कि विवाह हो लेकिन अपने पिताजी का आग्रह टाल न सके। विनोबा को यह अच्छा नहीं लगा। गोपालरावजी ने लिखा है:—"विनोबा बड़े नाराज़ हुए और बोले—'तेथे पाहिजे जातिचे ए राग वालाचे काम नाहे' फिर भी उन्होंने मुझे छोड़ा नहीं। मेरे घर पर पहिले जैसा आनाजाना जारी रखा।"

विनोबा का मन जल्दी ही किसी निश्चय पर पहुँचने के लिए व्याकुल हो रहा था। वे जिस स्थिति में थे उसी में और अधिक रहना अब असंभव होता जारहा था। अतः मन ही मन उन्होंने निश्चय किया कि न तो नौकरी करेंगे न किसी व्यापार-व्यवसाय में पड़ेंगे। आध्यात्मिक साधना उनका प्रमुख लक्ष होगा। जब वे इन्हीं विचारों में थे, तब मराठों के इतिहास की एक घटना उनके मन में गूंज उठी। शिवाजी के मराठे वीर गोह के कमन्द की मदद से सिंहगढ़ पर चढ़ गये और क़िले पर लड़ाई शुरू होगई। लड़ाई में शिवाजी के विश्वस्त साथी और प्रसिद्ध वीर तानाजी काम आये। उनके मरते ही मराठे हतोत्साह होने लगे। सैनिकों में भगदड़ प्रारंभ होने लगी। सैनिक उसी ओर जाने लगे जहाँ से रस्से पर चढ़कर वे ऊपर आये थे। तानाजी के भाई सूर्याजी इस कमज़ोरी को पहिचान गये। उन्होंने दौड़कर रस्से को काट डाला और चिल्लाकर कहा—"भागते कहाँ हो वह रस्सा जिससे ऊपर चढ़े थे मैंने काट डाला है।" इन शब्दों ने मराठों में ज़बरदस्त आत्मत्याग भर दिया। वे मर-मिटने को तैयार होगये और इस तरह दुश्मन पर टूटे कि उसके छक्के छूट गये। भयंकर मारकाट के बाद मराठे विजयी हुए। 'रस्सा काट देने की' यह नीति विनोबा के दिमाग़ में बैठ गई। वे सोचने लगे कि जो रास्ते निश्चित रूप से बुरे लगने लगें उन्हें खुले ही क्यों रहने दिये जांय। वहाँ तो 'मूले कुठाराघात' करके उन्हें तोड़ ही देना चाहिए। उस समय 'धीरे-धीरे' 'क्रमशः' आदि शब्दों का प्रयोग

किसी भी स्थिति में उपयोगी नहीं होता। अतः विनोवा ने तो अपने जीवन की दिशा निश्चित करली ।

इन्टर की परीक्षा के दिन पास आरहे थे। विनोवा की तैयारी अच्छी होचुकी थी। फैल होने की कोई संभावना ही नहीं थी। लेकिन 'मूले कुठाराघातः' की नीति के अनुसार उन्हें परीक्षा का मोह ठीक नहीं लग रहा था। सोचने लगे जव न नौकरी करना है न व्यापार-व्यवसाय तव इस झंझट में क्यों पड़ा रहूँ। यदि मैं परीक्षा पास करता गया और सर्टीफिकेट जमा कर करके रखता गया तो किसी न किसी दिन अवश्य अपने आदर्श से गिर सकता हूँ। ये सर्टीफिकेट मुझे वन्धन में डाल सकते हैं। अतः क्यों न इनका वन्धन भी तोड़ डालूं? क्यों न नौकरी या व्यापार-व्यवसाय में पड़ने का रास्ता ही वन्द कर डालूं? इस विचार के आते ही वे अपने सारे सर्टीफिकेट ले आये और चूल्हे के पास वैठ गये। माँ भोजन वना रही थी। वे तापते तापते एक के वाद एक सर्टीफिकेट जलाने लगे। माँ ने पूछा—"यह क्या कर रहा है?" विनोबा वोले—"सर्टीफिकेट जला रहा हूँ।" माँ ने आश्चर्य से पूछा—"क्यों?" विनोवा ने कहा—"मुझे अव इनकी ज़रूरत नहीं है।" माँ ने कहा—"अरे ज़रूरत न हो तो भी पड़े रहे तो क्या हर्ज है? ज़लाता क्यों है?" 'पड़े रहे तो हर्ज क्या है' इसका आशय यही था कि आगे कभी इनका उपयोग करने की आवश्यकता पड़े तो....? लेकिन विनोवा तो हमेशा के ही लिए रस्सा काट देना चाहते थे। उन्होंने सारे सर्टीफिकेट जलाकर आगे के लिए पूरी तरह रास्ता वन्द कर दिया।

परीक्षा के दिन आ गये। इंटर की परीक्षा देने वड़ौदा से वंवई रवाना हुए। पर उनका विचार-मंथन चल ही रहा था। रास्ते में सूरत स्टेशन पर ही उतर पड़े। साथियों ने समझाया कि इतनी जल्दी न करो। दो साल और लगाकर वी. ए. कर लो। वाद में अपनी रूचि और इच्छा के अनुसार जो चाहो करना। पर विनोवा ने कहा कि मेरा विचार और काम करने का तरीका दूसरा ही है। मैंने तो

रस्सा काटकर दिशा बदल दी है।

वे सूरत से भुसावल होते हुए बनारस चले गये। रास्ते से पिताजी को पत्र लिख दिया—

"मैं परीक्षा देने बम्बई न जाकर कहीं और जारहा हूँ। आपको यह तो विश्वास है ही कि मैं चाहे कहीं जाऊँ, मेरे हाथ से कोई अनैतिक बात नहीं होगी।" यह सन् १९१६ की बात है।

इस समाचार से मातापिता को बड़ा दुःख हुआ। लेकिन पिताजी ने सोचा, विनायक इधर उधर भटक कर कुछ दिनों में आजायगा। वे अपनी पत्नी से बोले—"विनायक चार दिन इधर उधर भटकेगा और दुनिया की ठोकरें खाकर अपने-आप लौट आयगा।" इस पर विनोबा की माँ ने कहा—"विन्या को मैं अच्छी तरह जानती हूँ। वह अब घर नहीं लौटेगा।" और सचमुच वैसा ही हुआ।

विनोबा के जाने से दुःख तो माँ को अवश्य हुआ लेकिन उन्हें विनोबा के ऊपर सदैव गर्व रहा। पड़ोस की एक स्त्री से उन्होंने कहा था—"मेरा लड़का किसी खेलतमाशे के लिए तो गया नहीं है। वह तो देश और ईश्वर की सेवा करने के उद्देश्य से गया है। अतः मुझे उसके इस काम पर गर्व ही होता है।"

इधर विनोबा काशी पहुँचे। कुछ और मित्र भी साथ थे। उनकी इच्छा यह थी कि पहिले संस्कृत का अच्छा अध्ययन किया जाय और फिर तपस्या करने हिमालय जाया जाय। अतः काशी में ज्ञानोपासना प्रारंभ हुई। प्रारंभ में कुछ दिन अन्नक्षेत्र में भोजन करते रहे बाद में एक स्कूल में दो घंटे पढ़ाने का काम मिल गया। दो रुपये मासिक मिल जाते थे जो उनके निर्वाह के लिये पर्याप्त थे। वे दिन में एक बार भोजन करते और वह भी प्रायः दही और शकरकन्द का।

काशी की मूर सेन्ट्रल लायब्रेरी में बहुत से अच्छे-अच्छे ग्रंथ थे। उनका अध्ययन प्रारंभ हुआ। थोड़े ही दिनों में इन्होंने अपने काम की बहुतसी पुस्तकें पढ़ डालीं। अध्ययन के साथ आसन और प्राणायाम

भी प्रारंभ हुए। प्रत्येक आसन का अभ्यास १० मिनट तक करते थे। प्रतिदिन गंगा किनारे जाने का उनका नियम था। रात्रि के एकान्त समय में वे घंटों गंगा के किनारे वैठे रहते। गंगा उनके लिए वड़ी भव्य और आकर्षक थी। उसका शंकर की जटा-जूट से निकलना, सगर के साठ हज़ार पुत्रों का उद्धार करना, और कितने ही वर्षों से भारतवासियों को मुक्त करना उन्हें रोमाञ्चित कर देता था। वह ऐसी लगती मानों परमेश्वर की करुणा ही वह रही हो। घंटों उसके किनारे वैठकर वे चिन्तन करते रहते, गीत लिखते रहते और विचारों में खोजाते थे।

काशी का जीवन विनोवा की साधना का श्रीगणेश था। वे अपने विचारों के अनुकूल स्वयं को वनाने का प्रयत्न कर रहे थे। उन्होंने दाढ़ी वढ़ाली और वस्त्र भी कम से कम रखे। इस समय तक वे काफ़ी लिख चुके थे। अपने लेखों का एक अच्छा संग्रह उनके पास था। वड़ोदा ही में उन्होंने मोरोपन्त पर एक वड़ा निवन्ध लिखा था। अन्य सन्तों पर भी कुछ लिखा था। अपने गीतों और पत्रों का संग्रह भी उनके पास था। इस आसक्ति से भी मुक्त होने के लिए एक दिन उन्होंने सारा वण्डल उठाया और गंगा माँ के अर्पण कर दिया।

इन्हीं दिनों वे हिमालय-दर्शन के लिए भी गये। उस पुरातन ऋषि का दर्शन करके वे गद्‌गद् होगये। एक स्थान पर उनकी शेर से भेंट होगई। आगे वढ़कर शेर का स्वागत करने के वजाय वे छिप गये। जव वह चला गया तो वाहर निकले। वे अव भी कहा करते हैं— "अव भी मेरी हिमालय जाने की इच्छा होती है, हिमालय देखने के लिए नहीं, शेर से भेंट करने के लिए। अव मैं उसके सामने खड़ा रहूँगा और कहूँगा अगर भाई मुझे खाना चाहे तो खाले। पहले तेरे सामने से भागकर मैंने ग़लती की थी।"

:: ७ ::

गांधीजी के प्रभाव में

"इस छोटीसी ही उम्र में विनोबा ने जो तेजस्विता और वैराग्य प्राप्त कर लिया है उसे प्राप्त करने में मुझे कितने ही वर्ष लग गये थे।"

—गांधीजी (विनोबाजी के पिता को लिखे हुए पत्र से)।

जिन दिनों विनोबाजी काशी में थे उन्ही दिनों वहाँ हिन्दू विश्व-विद्यालय का उद्घाटन समारोह हुआ। मालवीयजी ने इस अवसर पर देश के सभी बड़े-बड़े नेताओं, विद्वानों और राजा-महाराजाओं को निमन्त्रण दिया और उसी के अनुरूप सभी आगत विद्वानों के भाषण का आयोजन किया। वाइसराय लार्ड हार्डिङ्ग भी वहाँ आये तथा अन्य बहुत से लोग भी उपस्थित हुए। निमन्त्रण पाकर गांधीजी भी वहाँ गये उस समय वे 'कर्मवीर' गांधी के नाम से प्रसिद्ध थे। दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह में सफलता प्राप्त करके वे अभी कुछ दिनों पूर्व ही भारत लौटे थे और अपने राजनैतिक गुरु माननीय गोखले के आदेशा-नुसार एक वर्ष का समय सारे भारत का भ्रमण करके स्थिति का अध्ययन करने में व्यतीत कर रहे थे।

कुछ लोगों के भाषण के बाद ४ फ़रवरी को इस समारम्भ में गांधीजी का भी भाषण प्रारम्भ हुआ। उनके भाषण का महत्वपूर्ण अंश इस प्रकार था—

"कांग्रेस ने स्वराज्य का प्रस्ताव पास किया है। मुझे इसमें कोई शक नहीं है कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग जनता के सामने शीघ्र ही कोई कार्य-क्रम रखेगी, किन्तु अपने बारे में तो मैं साफ़ शब्दों में कह सकता हूँ कि मेरा ध्यान इन नेताओं के कार्य की तरफ़ उतना नहीं है जितना इस ओर कि विद्यार्थी और भारत की सामान्य जनता क्या

करेगी ?..........कल जो महाराजा अध्यक्ष थे, उन्होंने भारत की ग़रीबी के बारे में कहा था। अन्य वक्ताओं ने भी इसी बात पर काफ़ी जोर दिया था। लेकिन जिस भव्य मण्डप में वाइसराय ने उद्घाटन किया था उसमें आपको कौनसा दृष्य दिखाई दिया ? उसमें कितनी शान थी ! कितनी तड़क भड़क थी !! पेरिस के किसी जोंहरी की आंखों को लुभाने वाला वह जड़ जवाहारात का प्रदर्शन था। कीमती रत्नाभूषणों से सजे इन सरदारों और देश के करोड़ों ग़रीबों की स्थिति की मैंने तुलना की। मुझे यह अनुभव होने लगा है कि इन सरदारों से कहना पड़ेगा कि जबतक आप इन जवाहारातों को त्याग करके अपनी धन दौलत को राष्ट्र की थाती समझ कर न रखेंगे तब तक हिन्दुस्तान को मुक्ति नहीं मिलेगी। हमारे देश में ७० फ़ीसदी किसान हैं और जैसा कि मिस्टर हिगिन् वोथम ने कल कहा था कि खेत में अन्न की एक बाल की जगह दो बोरी बालें पैदा करने की शक्ति इन्हीं किसानों में है। लेकिन उनके परिश्रम का सारा फल यदि हम उनसे छीनलें या दूसरे को छीन लेने दें तो फिर यह नहीं कहा जा सकेगा कि हम में काफ़ी स्वराज्य-भावना जाग्रत है। हमारी मुक्ति इन किसानों के ही द्वारा होगी। डाक्टरों व वकीलों या अमीर उमरावों द्वारा नहीं।"

"इन दो तीन दिनों में जिस कारण से मेरे हृदय में उथलपुथल मचगई है उसका अन्त में उल्लेख करना मेरा कर्तव्य हो जाता है।........ जब वाइसराय बनारस की सड़कों पर से गुज़र रहे थे तब हम सब के दिलों में चिन्ता की लहरें दौड़ती रहती थीं। जगह-जगह खुफ़िया पुलिस तैनात थी। यह देखकर मुझे चोट पहुँची। मन में कहा—यह अविश्वास क्यों ? इस तरह जीवित मृत्यु के सन्निकट ज़िन्दा रहने की अपेक्षा लार्ड हार्डिङ्ग यदि मरगये तो क्या अधिक सुखी न रहेंगे ? लेकिन शक्तिशाली सम्राट् के प्रतिनिधि को शायद यह महसूस न हो। उन्हें जीवित मृत्यु के सन्निकट जीना भी शायद आवश्यक मालूम हो। लेकिन यह खुफ़िया पुलिस हम पर लादने की जरूरत क्यों पड़ी ? इनके कारण हमें गुस्सा

आएगा, मनमें झुंझलाहट होगी। इनके प्रति तिरस्कार भी पैदा होगा। लेकिन हमें यह न भूल जाना चाहिए कि आज हिन्दुस्तान अधीर व आतुर होगया है, अतः भारत में अराजकों की एक सेना तैयार होगई है। मैं भी एक अराजक हूँ लेकिन दूसरी तरह का। अगर मैं इन अराजकों से मिलसका तो उनसे ज़रूर कहूँगा कि तुम्हारे अराजकवाद के लिए भारत में गुंजाइश नहीं है। हिन्दुस्तान को अगर अपने विजेता पर विजय पानी है तो उनका तरीका भय का एक चिह्न है। हमारा यदि परमेश्वर पर पूर्ण विश्वास है तो हम किसी से नहीं डरेंगे। राजा महाराजाओं से नहीं, वाइसराय से नहीं, खुफ़िया पुलिस से नहीं और खुद पञ्चम जार्ज से भी नहीं। अराजकवादियों के देश-प्रेम के कारण मैं उनका सम्मान करता हूँ। लेकिन मैं उनसे पूछता हूँ कि हत्या करने में कौनसी बहादुरी है? हत्यारे की खञ्जर क्या सम्मान योग्य मृत्यु का सुयोग्य चिह्न है? मैं इससे इन्कार करता हूँ। ऐसे मार्ग के लिए किसी भी धर्म का आधार नहीं है। हिन्दुस्तान की पुलिस के लिए यदि मुझे यह ज़रूरी लगा कि अंग्रेज़ों को यहाँ से चले जाना चाहिए तो मैं वैसा साफ़-साफ़ कहूँगा, और मुझे आशा है कि अपने इस विश्वास के लिए मैं अपने प्राण देने को भी तैयार हो जाऊँगा। मेरी राय से ऐसी मृत्यु सम्मान योग्य है। बम फेंकने वाले गुप्त षड्यन्त्र रचते हैं। प्रकट होने में डरते हैं और पकड़े जाने पर अपने गलत रास्ते जाने वाले उत्साह की सजा भुगतते हैं। कुछ लोग मुझ से कहते हैं कि हमने ऐसा न किया होता, कुछ लोगों पर बम न फेंके होते तो बङ्गभङ्ग की हलचल के कारण हमें जो मिला वह न मिला होता।" इसी समय उन्हें बीच में रोक कर सभा की अध्यक्षा डाक्टर एनी बेसेन्ट ने कहा—"कृपा कर यह विषय समाप्त कर दीजिये।" लेकिन लोगों को भाषण पसन्द आ रहा था।

सभा में से एकसाथ आवाज़ें आई—"कहे जाइए, कहे जाइए।" गांधीजी ने अपना भाषण चालू रखा। लेकिन राजा महाराजाओं और

डाक्टर बीसेन्ट के लिए और बैठे रहना भारी पड़ने लगा। अतः कुछ समय बाद वे मञ्च से उठकर चले गये और सभा समाप्त होगई।

समाचार पत्रों में उनके इस भाषण को लेकर बड़ा वाद-विवाद शुरू हो गया। सब लोगों का ध्यान इस भाषण की ओर खिंच गया। विनोबा ने भी इस दिन के भाषण की बात सुना। उन्होंने समाचार पत्रों में उसे पढ़ा। उनके ऊपर गाँधीजी के इन विचारों का बड़ा प्रभाव पड़ा। उन्होंने सोचा कि राजनीति और अध्यात्म का वैसा ही सुन्दर समन्वय इस व्यक्ति में है जैसा मैं चाहता हूँ। उसी समय उन्होंने गाँधीजी को एक पत्र लिखा और अपनी कुछ शंकाओं का स्पष्टीकरण करने के लिए प्रार्थना की। थोड़े ही दिन के बाद गाँधीजी का उत्तर आया। उत्तर रेपर (अखबार लपेटने का कागज) पर लिखा हुआ था वह बड़ा ही संक्षिप्त था। उन्होंने इसे दो तीन बार पढ़ा लेकिन पूरी तरह संतोष नहीं हुआ। फिर पत्र लिखा। गांधीजी ने उत्तर में लिखा—"इस समय मैं बहुत व्यस्त हूँ। पत्र लिखने के लिए भी बहुत कम समय मिलता है। अतः अच्छा हो यदि तुम स्वयं ही यहां चले आओ, १०-१५ दिन आश्रम में रह कर यहां की सब बातें देखना उससे तुम्हारा समाधान हो जायगा। यहां बीच बीच में जब समय मिलेगा तब तुमसे बात भी कर सकूंगा।" विनोबाजी को यह बात पसन्द आ गई। वे अहमदाबाद के लिए रवाना हो गये।

विनोबाजी अहमदाबाद पहुँच कर गांधीजी से मिले। कोचरब मुहल्ले में उनका आश्रम था। आश्रम का सादा और सरल जीवन, वाणी और कार्य में साम्य, देशभक्ति की लगन तथा उसके लिए त्याग और तपस्या की ओर पूरा झुकाव, ये सब ऐसी बातें थीं जिन्हें विनोबा भी चाहते थे। यहां इन सबको देख कर उन्हें सन्तोष हुआ। यह क्षेत्र भी अपनी रुचि के अनुकूल लगा। इधर गांधीजी भी इस नवयुवक की प्रखर बुद्धि, विरागी जीवन, नियमनिष्ठा और त्यागवृति से प्रभावित हुए। उन्होंने विनोबा से उनके व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में पूछताछ

की ओर बोले - "यदि तुमको यहां का रहन-सहन पसन्द हो और अपना जीवन सेवाकार्य में लगाना चाहो तो यहां रहो। मुझे उससे खुशी होगी।" उन्होंने सब बातों पर विचार किया और तय कर लिया कि वे आश्रम में रहेंगे। अब उन्होंने हिमालय जाने का विचार छोड़ दिया।

वे यहां रहने लगे लेकिन उन्हें अपने मित्रों का ख्याल आने लगा। वे उनसे १५ दिन की छुट्टी लेकर आये थे। उन्होंने यह बात भी गांधीजी के सामने रखी। गांधीजी ने कहा—यदि वे यहां रहना पसन्द करें तो अच्छी बात है, उनको भी बुला लो। गांधीजी से छुट्टी लेकर विनोबा काशी गये। उन्होंने अपना निश्चय मित्रों को सुनाया। उन्हें वह पसन्द नहीं आया। वे अपनी पूर्व योजना के अनुसार ही चलना चाहते थे। विनोबा ने उन्हें समझाया लेकिन जब वे नहीं माने तो मित्रों के विछोह का दुःख अपने मन में लिए हुए वे वापस आगये।

आश्रम में आने के बाद विनोबा के जीवन की दिशा पूरी तरह निश्चित हो गई। अभी तक एक साधक के रूप में साधना निरत रह कर अपना सारा जीवन लोकसेवा में व्यतीत करने का उद्देश्य तो उनके सामने स्पष्ट था लेकिन साधन के सम्बन्ध में वे इतने स्पष्ट नहीं थे। आश्रम में आने के बाद वह अस्पष्टता मिट गई। मार्ग स्पष्ट हो जाने तथा मार्ग दर्शक पाजाने से उनके मनको कुछ संतोष हुआ। महात्माजी ने उनसे परिवार के सम्बन्ध में प्रश्न किये। उन्होंने गांधीजी को बताया कि सूरत वाले पत्र के बाद उन्होंने कोई पत्र घर नहीं लिखा। महात्माजी को यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—"घर तुम्हारे माता पिताजी चिन्ता कर रहे होंगे। उनको कुशल समाचार देते रहना पुत्र का धर्म है। उनको इससे वंचित रखना एक प्रकार की हिंसा ही है।" अहिंसा के उस महान आचार्य ने विनोबा के पिताजी को स्वयं ही पत्र लिखा—

"तुम्हारा विनोबा मेरे पास है। इस छोटी सी उम्र में ही तुम्हारे पुत्र ने जो तेजस्विता और वैराग्य प्राप्त कर लिया है उसे प्राप्त करने

में मुझे कितने ही वर्ष लग गये थे।"

पत्र बहुत ही संक्षिप्त था। लेकिन विनोबा के पिताजी के लिए उसमें कितनी सांत्वना और गौरव गरिमा थी! विनोबा ने भी उनकी आज्ञानुसार पिताजी को एक पत्र लिखा जो कविता में था। वह इस प्रकार है:—

"तातेला मातेला वन्दन करतो तदीय मी,
तदनन्तर प्रभूते, चरणाचा हीन दीन दास नमी।
तुमचा आशीर्वाद कृपा कटाक्षे तसा प्रभू चाही,
कुशली नादत से हा सुत तुमचा आश्रमी, जसा गेही।
प्रेयोभूमि गृहाते सोडुनिया श्रेय आश्रम स्थानी।
मातेचे मन सन्तत चिन्तुनी दीना मुलास सकल कलते।
चिन्ता वृथा कशाला? माय जगाची तिला सकल कलते।
प्रार्थित से यास्तव की कधि न धरावें तुम्ही विषादास।
किमपि मदाशीर्वादी सामर्थ नसे परन्तु रीतीले।
अनुसरुनि, प्रेमाने अर्पी शिवकृष्णादत्त शान्ति ते।"

सत्याग्रह आश्रम, ता० १-१-१९१७। विनायक।

इस पत्र का आशय संक्षेप में इस प्रकार है:—

मैं अपने माता पिता और प्रभु की वंदना करता हूँ। आपकी और ईश्वर की कृपा से मैं घर की ही तरह यहाँ आश्रम में भी कुशल पूर्वक रह रहा हूँ। माताजी, आप अपने दीन हीन बालक की हमेशा चिन्ता करती होंगी और उसके लिए दुःखी रहती होंगी लेकिन व्यर्थ चिन्ता क्यों करती हैं? आप तो संसार की मां हैं और सब कुछ जानती हैं। इसलिए दुःख न करें। यद्यपि मेरे शब्दों में इतनी सामर्थ्य नहीं है कि उनसे आप चिन्ता मुक्त होजायं तथापि मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको शांति दे।

इस पत्र से माता पिता को सन्तोष हुआ। कुछ समय बाद वे स्वयं भी माँ से मिलने गये और मिलकर लौट आये।

:: ८ ::

विनोबा का हृदयस्पर्शी पत्र

आश्रम में कुछ समय रहने के बाद विनोबा के मन में संस्कृत के अध्ययन की इच्छा हुई, उनका स्वास्थ्य भी ठीक नहीं रहता था। अतः उन्होंने गांधीजी से एक वर्ष की छुट्टी ली। छः महीने तक वांई (पूर्वजों का गाँव) की प्राज्ञ पाठशाला में रहकर नारायण शास्त्री मराठे के पास ब्रह्मसूत्र आदि का अध्ययन किया। शेष छः महीने उन्होंने महाराष्ट्र के भ्रमण में व्यतीत किये। वे प्रायः ग्रामों में जाकर गीता पर प्रवचन देते और तीन दिन बाद वहाँ से दूसरे ग्राम चले जाते। इनके ये भाषण महाराष्ट्र में बड़े पसन्द किये गये। सभी ग्रामों में पहिले दिन तो श्रोताओं की संख्या कम रहती थी लेकिन दूसरे और तीसरे दिन लोग उमड़ पड़ते थे। कभी-कभी लोग इतना आग्रह करते थे कि उनको वहाँ और दो तीन दिन ठहरना पड़ जाता था। वर्ष पूरा होने पर वे आश्रम में वापस लौट आये। गाँधीजी ने उनकी इस बात की प्रशंसा करते हुए लिखा था—"अपने संस्कृत के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिये वे एक वर्ष की छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्ष के बाद ठीक उसी घड़ी जब कि उन्होंने एक वर्ष पहिले आश्रम छोड़ा था चुपचाप आश्रम में फिर आ पहुँचे। मैं तो भूल ही गया था कि उस दिन उन्हें आश्रम में वापिस पहुँचना था।"

इस एक वर्ष के समय में विनोबाजी का जीवन किस प्रकार साधनामय रहा तथा उन्होंने अपने एक एक क्षण का कैसा उपयोग किया उसे विनोबाजी के ही शब्दों में देने का लोभ संवरण करना कठिन है। अतः नीचे महादेव भाई की डायरी से हम वह पत्र उद्धृत कर रहे हैं जो उन्होंने बापूजी को लिखा था। इस पत्र में उनकी कठोर साधना, वाणी का बल और ओजस्विता देखने योग्य है:—

आश्रम के पूर्व विद्यार्थी भाई विनायक नरहरि भावे का पत्र

ता० १०-२-१९१८

परम पूज्य बापूजी,

एक साल पहले अस्वास्थ्य के कारण मैं आश्रम से बाहर गया था। यह सोचा था कि दो तीन मास वांई रहकर आश्रम लौट आऊंगा। पर इतना अर्सा बीत गया फिर भी मेरा कोई ठिकाना नहीं। इस कारण मैं आश्रम में आऊँगा या नहीं अथवा जीवित भी हूँ या नहीं यह शङ्का वहाँ हुई होगी। पर मुझे स्वीकार करना चाहिये कि इस बारे में सारा दोष मेरा ही है। वैसे मामा (फड़के) को मैंने एक दो पत्र लिखे थे। उनमें लिखा था कि सत्याग्रह शुरू होने की बात आती हो तो मुझे जरूर लिखियेगा। मैं सब कुछ छोड़कर तुरन्त ही आ पहुचूंगा। नहीं तो जिस लोभ के कारण मैं आश्रम से बाहर रह रहा हूँ वह पूरा होने के बाद ही आश्रम में प्रवेश करूँगा। आश्रम छोड़कर मैं चला गया हूँ, ऐसा भी शक किसी को हुआ हो तो उसमें भी दोष मेरा ही है। क्योंकि पत्र न लिखने की मेरी आदत है। पर इतना तो लिखना ही चाहता हूँ कि आश्रम ने मेरे हृदय में खास स्थान प्राप्त कर लिया है। इतना ही नहीं अपितु मेरा जन्म ही आश्रम के लिये है, ऐसी भी श्रद्धा बनगई है। तो फिर प्रश्न उठता है कि मैं एक वर्ष बाहर क्यों रहा?

जब मैं दस वर्ष का था तब मैंने ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए देशसेवा करने का व्रत लिया था। उसके बाद मैं हाई स्कूल में दाखिल हुआ। उस समय मुझे गीताजी का शौक लगा। पर मेरे पिताजी ने दूसरी भाषा के तौर पर फ्रेंच लेने की आज्ञा दी। तो भी गीता माँ का प्रेम कम नहीं हुआ था और तभी से मैंने घर पर ही खुद-ब-खुद संस्कृत का अभ्यास शुरू कर दिया था। मेरा निश्चय था कि वेदान्त और तत्वज्ञान का भी अभ्यास करूँ। मैं आपकी आज्ञा लेकर आश्रम में दाखिल हुआ पर उसी समय वेदान्त का अभ्यास करने का अच्छा मौका हाथ

लगा। वांईं में नारायण शास्त्री मराठे नामक एक आजन्म ब्रह्मचारी विद्वान विद्यार्थियों को वेदान्त तथा दूसरे शास्त्र सिखाने का काम करते हैं। उनके पास उपनिषदों के अध्ययन करने का लोभ मुझे हुआ। इस लोभ के कारण वांईं में मैं ज़्यादा समय रहगया। इतने समय में मैंने क्या क्या किया, यह लिखता हूँ:—

(१) उपनिषद्, (२) गीता, (३) ब्रह्मसूत्र और शङ्कर भाष्य, (५) मनुस्मृति, (५) पातञ्जल योग दर्शन, इन ग्रन्थों का मैंने अभ्यास किया। इनके अलावा (१) न्याय सूत्र, (२) वैशेषिक सूत्र, (३) याज्ञवल्क स्मृति, इन ग्रन्थों को पढ़ गया। अब मुझे अधिक सीखने का मोह नहीं है। अपने आप ही जो पढ़ना होगा वह पढ़ लूंगा। दूसरा काम था स्वास्थ्य सुधार जिसके लिये मैं वांई गया था, उस बारे में:—

स्वास्थ्य सुधार के निमित्त पहिले तो मैंने १०-१२ मील घूमना शुरू किया। बाद में छः से आठ सेर तक अनाज पीसना चालू किया। आज तीन सौ सूर्य नमस्कार और घूमना यह मेरा व्यायाम है। इससे मेरा स्वास्थ्य ठीक होगया।

आहार के विषय में पहिले छः महीने तक तो नमक खाया। बाद में उसे छोड़ दिया। मसाले वग़ैरह बिलकुल नहीं खाये और आजन्म मसाले और नमक न खाने का व्रत लिया। दूध शुरू किया। बहुत प्रयोग करने के बाद यह सिद्ध हुआ कि दूध बिना बराबर चल नहीं सकता। फिर भी अगर इसे छोड़ा जा सकता हो तो छोड़ देने की मेरी इच्छा है। एक महीना केवल केले, दूध और नींबू पर बिताया। इससे ताक़त कम हुई। आज मेरी खुराक नीचे लिखे अनुसार है:—

दूध (साठ तोला), भाखरी २ (बीस तोला ज्वार की), केले ४ या ५, नींबू १ (मिलजाय तो)। अब आश्रम पहुँचने पर अपना भोजन आपकी सलाह लेकर तय करने का विचार है। स्वाद के लिए अन्य कोई पदार्थ खाने की इच्छा ही नहीं होती। फिर भी ऊपर लिखा हुआ मेरा आहार बहुत अमीरी है—ऐसा महसूस करता हूँ। रोज़ का खर्च लगभग नीचे

लिखे अनुसार हैं:—

केले और नींबू -), ज्वार)॥, दूध -)।, कुल खर्च =)॥।

इसमें और क्या फेरफार करना चाहिए, वह आपसे मुझे जानना है। सो आप मुझे पत्र द्वारा लिखिये।

अब तक मैंने ये कार्य किये हैं:—

(१) गीताजी का वर्ग चलाया—इसमें बिना कुछ लिये छः विद्यार्थियों को अर्थ सहित सारी गीता सिखाई।

(२) ज्ञानेश्वरी छः अध्याय—इस वर्ग में ४ विद्यार्थी थे।

(३) उपनिषद् नौ—इस वर्ग में दो विद्यार्थी रहे।

(४) हिन्दी प्रचार—मैं स्वयं अच्छी हिन्दी नहीं जानता, फिर भी विद्यार्थियों को हिन्दी के समाचार-पत्र पढ़ने-पढ़ाने का क्रम रखा।

(५) अंग्रेजी—दो विद्यार्थियों को सिखाई।

(६) लगभग ४०० मील पैदल यात्रा की—राजगढ़, सिंहगढ़, तोरणगढ़ आदि इतिहास प्रसिद्ध किले देखे।

(७) प्रवास करते समय गीताजी पर प्रवचन करने का क्रम भी रखा था। आजतक ऐसे कोई ५० प्रवचन किये। अब यहाँ से आश्रम आते हुए पहिले पैदल बम्बई जाऊँगा और वहाँ से रेल से आश्रम पहुँचूंगा।

(८) वांई में विद्यार्थी-मण्डल नामक एक संस्था की स्थापना की। उसमें एक वाचनालय खोला और उसकी सहायता के लिये चक्की पीसने वालों का एक वर्ग शुरू किया। उसमें मैं और दूसरे १५ विद्यार्थी चक्की पीसते थे। जो मशीन की चक्की पर पिसवाने लेजाते उनका काम हम (एक पैसे में २ सेर के हिसाब से) करते और ये पैसे वाचनालय को देते। पैसेवालों के लड़के भी इस वर्ग में शामिल हुए थे। वांई पुराने विचार वालों का स्थान होने से और इस वर्ग में हम सब हाई स्कूलों में पढ़ने वाले ब्राह्मणों के लड़के होने के कारण सब हमें मूर्ख ही समझते थे। इतने पर भी यह वर्ग कोई दो मास चला और वाचनालय में ४००

पुस्तकें इकट्ठी होगई।

(९) सत्याग्रहाश्रम के तत्वों का प्रसार करने का मैंने काफ़ी प्रयत्न किया।

(१०) वड़ौदा में १०-१५ मित्र हैं। इन सब में लोकसेवा करने की इच्छा है। इसलिये तीन वर्ष पहिले हमने मातृभाषा के प्रसार के लिये एक संस्था स्थापित की थी। इस संस्था के वार्षिकोत्सव में मैं गया था। (उत्सव यानी संस्था के सभासद् इकट्ठे होकर क्या काम किया और क्या आगे करना है, इसकी चर्चा) उसमें वहाँ मैंने हिन्दी प्रचार करने का विचार रखा। मेरी श्रद्धा है कि वह संस्था यह काम ज़रूर करेगी। आपने हिन्दी प्रचार का जो प्रयत्न शुरू किया है उसमें वड़ौदा की यह संस्था काम करने को तैयार रहेगी।

अन्त में सत्याग्रहाश्रम निवासी के तौर पर मेरा आचरण कैसा रहा, यह कहना आवश्यक है।

(१) अस्वाद व्रत—इस विषय पर भोजन सम्वन्धी प्रकरण में ऊपर लिखा जाचुका है।

(२) अपरिग्रह—लकड़ी की थाली, कटोरी, आश्रम का एक लोटा, धोती, कम्वल और पुस्तकें इतना ही परिग्रह रखा है। वण्डी, कोट, टोपी वग़ैरह न पहिनने का व्रत लिया है। इस कारण शरीर पर भी धोती ही ओढ़ लेता हूँ।

(३) सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य—इन व्रतों का परिपालन अपनी जानकारी में मैंने ठीक-ठीक किया है, ऐसा मेरा विश्वास है।

अधिक क्या कहूँ ? जव भी सपने आते हैं तभी मन में एक विचार आता है कि ईश्वर मुझसे कोई सेवा लेगा। मैं पूर्ण श्रद्धा से इतना कह सकता हूँ कि आश्रम के नियमों के अनुसार (एक को छोड़ कर) मैं अपना आचरण रखता हूँ। यानी मैं आश्रम का ही हूँ। आश्रम ही मेरा साध्य है। जिस एक वात की कमी का मैंने ऊपर उल्लेख किया है वह है, अपना भोजन (यानी भाखरी) स्वयं वनाना। मैंने इसका

भी प्रयोग किया पर प्रवास में संभव न हो सका।

सत्याग्रह का या दूसरा कोई (शायद रेल सम्बन्धी सत्याग्रह करने का) सवाल पैदा हो तो मैं तुरन्त ही पहुँच जाऊंगा, नहीं तो ऊपर लिखे समय पर अवश्य ही।

इधर आश्रम में क्या फेर फार हुए हैं तथा कितने विद्यार्थी हैं? राष्ट्रीय शिक्षा की योजना क्या हैं? तथा मुझे अपने आहार में क्या परिवर्तन करना चाहिए, यह जानने की मेरी प्रवल इच्छा है। आप स्वयं मुझे पत्र लिखें, ऐसा विनोवा का आपको पितृ तुल्य समझने वाले आपके पुत्र का आग्रह है।

मैं दो चार दिन में ही यह गांव छोड़ दूंगा।

—विनोवा के प्रणाम

यह पत्र पढ़कर गोरख ने मछन्दर को हराया। "भीम है भीम" यह उद्गार वापू के मुंह से निकले। सुवह उनको इस प्रकार उत्तर दिया—

तुम्हारे लिये कौनसा विशेषण काम में लाऊं यह मुझे नहीं सूझता। तुम्हारा प्रेम और तुम्हारा चरित्र मुझे मोह में डुवो देता है। तुम्हारी परीक्षा करने में मैं असमर्थ हूँ। तुमने जो अपनी परीक्षा की है, उसे मैं स्वीक़ार करता हूँ और तुम्हारे लिए पिता का पद ग्रहण करता हूँ। मेरे लोभ को तो तुमने लगभग पूरा ही किया है। मेरी मान्यता है कि सच्चा पिता अपने से विशेष चरित्रवान पुत्र पैदा करता है। सच्चा पुत्र वह है जो पिताने जो कुछ किया हो उसमें वृद्धि करे। पिता सत्यवादी, दयामय दृढ़ हो तो स्वयं अपने में ये गुण विशेषरूप से धारण करे। यह तुमने किया है, ऐसा दीखता है। तुमने यह मेरे प्रयत्नों से किया है ऐसा मुझे नहीं मालूम होता। इस कारण तुमने जो पिता का पद दिया है उसे मैं तुम्हारी प्रेम की भेंट के रूप में स्वीकार करता हूँ। उस पद के योग्य वनने का प्रयत्न करूंगा और जव मैं हिरण्यकश्यप होऊं तो प्रह्लाद भक्त के समान मेरा सादर निरादर करना।

तुम्हारी यह वात सच्ची है कि तुमने वाहर र
नियमों का अच्छी तरह पालन किया है। तुम्हारे अ
वारे में मुझे शंका थी ही नहीं। तुम्हारे सन्देश मामा
पढ़ कर सुनाये थे। ईश्वर तुम्हें दीर्घायु करे और तुम्
की उन्नति के लिए हो। यही मेरी कामना है।

तुम्हारे आहार में किसी प्रकार का परिवर्तन
मुझे कुछ नहीं लगता। दूध का त्याग अभी तो
नहीं, आवश्यकता हो तो दूध की मात्रा वढ़ाओ।

रेल विषयक सत्याग्रह की आवश्यकता अभी
लिए ज्ञानी प्रचारकों की आवश्यकता है। यह सं
खेड़ा जिले में सत्याग्रह करना पड़ जाय। अभी तो
दो एक दिन में दिल्ली जाऊंगा।

विशेष तो जब आओगे तब। सब तुमसे मिलने

वाद में वापू के उद्‌गार—"वहुत वड़ा मनुष्य है
हैं कि महाराष्ट्रियों और मद्रासियों के साथ मेरा अ
है। मद्रासी तो इस समय रहे नहीं। परन्तु महाराष्ट्रि
ने मुझे निराश किया ही नहीं। उसमें भी विनोवा ने

:: ६ ::

सावरमती आश्रम का जीवन

"आश्रम ने मेरे हृदय में खास स्थान प्राप्त कर लिया है।
ही नहीं मेरा जन्म ही आश्रम के लिए है, ऐसी मेरी श्रद्धा वन गई

—विनो

भी प्रयोग कि: एकान्त साधक हैं, तपस्वी हैं। जब वे गाँधीजी के
सत्याग्रही उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि अब हिमा-
का) सवालने नहीं जाना है। अब तो उन्हें दरिद्रनारायण की
लिखे समय प और वह भी आश्रम में ही रह कर। अतः श्रमण
इधर आश्र अपने काम में लग गये। उनके कठोर श्रम और
राष्ट्रीय शिक्षा को देख कर प्राचीन ऋषि-पुत्रों की याद आजाती
परिवर्तन करना चल से रात्रि तक का कार्यक्रम निश्चित था। वे
स्वयं मुझे पत्र लिखले अपना कार्य करते रहते थे। यही उनकी
आपके पुत्र का अकी पूजा।

में दो चारम में एक अच्छा बगीचा था। उसमें काफ़ी पेड़ थे।
कठिन कार्य भी आश्रमवासी ही करते थे। यद्यपि
यह पत्र पलहीं थी तथापि वहाँ से बालटियाँ भर कर लाना
यह उद्गार वापू काफ़ी बड़ा काम था। विनोबा ने यह कड़ा काम
दिया— नसन्द नहीं करते थे पसन्द किया। वे नीचे नदी से
तुम्हारे लि सींचने लगे। इस काम में उन्हें प्रतिदिन चार
तुम्हारा प्रेम थे। चार पाँच मास तक वे यही काम करते रहे।
परीक्षा करने छः मास तक वे भोजन बनाने का काम करते रहे।
स्वीकार करत काम नौकर से नहीं करवाया जाता था। सभी
लोभ को स्तयों को अपने हाथ से करने पड़ते थे। विनोबा शरीर-
पिता अपन्किसी से पीछे नहीं रहते थे। जो काम मिल जाता उसे
जो पितकर करते थे। इन्हीं दिनों कताई बुनाई धुनाई का काम
दयामप्रारम्भ हुआ था। विनोबाजी ने यह काम भी इसी तरह
तुमनेशरीरश्रम उनके लिए ईश्वरोपासना बन गया। बिना किसी से
ऐस वे अपना काम करते रहे।

है नके दुर्बल शरीर, कठोर परिश्रम और शिकायत रहित चर्या-
को से प्रभावित होकर गांधीजी ने एक दिन पूछा—"इतने दुर्बल
ये हो फिर भी इतना काम कैसे कर लेते हो ?"

विनोवाजी ने नपे तुले शब्दों में उत्तर दिया' वर्षा लेजायें।
इच्छा शक्ति से।" इस छोटी सी घटना से स्पष्ट प्रकट करदी।
विनोवाजी का आश्रम जीवन कितना श्रद्धामयं, त आश्रमवासियों
यनशील था। गांधीजी को उनके इस उत्तर से ! रहें।" गांधी
होगी ? • है। लेकिन तुम

आश्रम के व्यवस्थापक मगनलाल भाई बड़ेही में अधिक सेवा
वे विनोवा के कठोर श्रम से बड़े ही प्रभावित भारत की सेवा
समय काफ़ी लोग रह रहे थे लेकिन जब स्वावलयह इच्छा वे हमेशा
की ओर अधिक कड़ाई की जाने लगी तो आश्रम देखते रहे। कुछ
होने लगी। काम काफी बढ़ चुका था और लोगोंयही इच्छा प्रकट
से बड़ी कठिनाई पैदा होने लगी। उन्होंने विनआश्रमवासियों के
विनोवा ने कहा—"यदि लोग जा रहे हों तो कोई त्यागी और पवित्र
हमारे नियमों में ढीलापन नहीं आना चाहिए। आप वर्धा चलने के
वस्था ठीक करने के लिए हमे बगीचे आदि का दीजिये।" जमना
सकें, कर देना चाहिये। यदि हमारे नियमों के अकी श्रद्धा गांधीजी
करने वाले दो तीन आदमी ही रहे तो वे सैकड़ों ढार कर लिया और
से अच्छे है।" विनोवा की राय मगनलाल भाई कांश्रम की स्थापना
मगनलाल भाई हमेशा विनोवाजी का आदर करयों के साथ जिन
सलाह लेते रहे। ने और आश्रम

विनोवा ने आश्रम में केवल कठोर शरीर श्रम
उन्होंने एक क्रान्तिकारी बात भी करदी। उनके दोनों श्रमवासियों के
कोवा और शिवाजी आश्रम मे ही आकर रहने लगे थे। ट सम्पर्क में
आश्रम मे रहने की खबर मिलते ही वे यहां आगये थे। विन.। उन्होंने
बार तो उनको समझा बुझा कर घर भेज दिया था, लेकिन नालालजी
दिनों बाद फिर आये और आश्रम में रहने की उनकी उत्कट ब्रह्मचरी के
तो विनोवा ने उन्हें अपने पास रखलिया। एक दिन आश्रम काजी के
छुट्टी लेकर बाहर गया। अपना काम वह एक १०-१२ वर्ष के इस देह

भी प्रयोगः स समय तक आश्रम में पाखाना सफ़ाई का काम सत्याो ः। बेचारे लड़के से पाखाने की भरी हुई बालटियाँ का) सने ता जाता था और बालटियां उठाता जाता था। लिखे समश्री उस पर पड़ी। उनका युवक हृदय सहानुभूति से इवर ३ आगे बढ़े और उसको इस काम में मदद करने लगे। राष्ट्रीय शिक्षको नोबा को मालूम हुई। उन्हें बालकोबा के इस परिवर्तन करनग्र - हुई। अब वे भी इस काम में लग गये। स्वयं मुझे पत्र लि में योग देते देखकर आश्रमवासियों में हलचल आपके पुत्र काकीवासी पाखाना सफ़ाई का काम करें, यह दूसरों में दो न्म कठिन होगया। लेकिन गाँधीजी इस समय आश्रम र्कपाने पर ही निराकरण हो सकता था। जिन लोगों यह पत्रनः ज़्यादा चुभी उन्होंने विनोबा और बालकोबा के यह उद्गार ग न्नन्द कर दिया।

दिया— नसन्द गांधीजी लौटे। पाखाना सफ़ाई की बात उनके तुम्हारेो ो लोग उसके विरोध में थे उन्होंने विनोबा की तुम्हारा प्रेग्थे जी ने कहा—"पाखाना सफ़ाई बड़ा ही पवित्र कार्य परीक्षा कर छ में होता रहेगा। अगर किसी को यह असह्य हो तो स्वीकार ो के लिये स्वतन्त्र हैं।" इस उत्तर ने शिकायत करने लोभ कसयें कर दिया। जिन्हें यह सहन नहीं हुआ वे आश्रम पिता श्कर्याये। आश्रम छोड़कर जाने वालों में गाँधीजी की बहिन जो किर

दयप्रार में एक छोटासा छात्रालय था और एक विद्यालय भी। तुशरी के लिये विनोबाजी को छात्रालय का काम सौंपा गया। ऽ वे कोई काम अप्रिय नहीं है। वे किसी काम को बड़ा या छोटा ैके ते। इस काम को भी उसी तन्मयता से करने लगे। प्रातःकाल ी स्ही घण्टी लगती और बालकों को उठाया जाता। कार्य-कर्ता ये ैचिल्लाकर बच्चों को उठाते। कोई उन्हें झिड़कियाँ सुनाता, कोई

झटका देकर उठा देता। लेकिन विनोवाजी को य वर्धा लेजायें।
लगा। वे तो सव में ईश्वर का दर्शन करते हैं। व प्रकट करदी।
दुर्व्यवहार उन्हें कैसे सहन होता? वाल्मीकि रामा· आश्रमवासियों
उनकी स्मृति में गूंज गया:— ह रहें।" गांधी

रामेति मधुरा वाणी विश्वामित्रोऽभ्य है। लेकिन तुम
उत्तिष्ठ नरशार्दूल पूर्वा सन्ध्या ही में अधिक सेवा
रा भारत की सेवा

विश्वामित्रजी रामचन्द्रजी को जगाते हुए व यह इच्छा वे हमेशा
राम, अव उठो।' वे भी इसी स्नेह और मधुरता द देखते रहे। कुछ
लगे। पहले उन्हें धीरे धीरे पुकारते, फिर कुछ जो यही इच्छा प्रकट
कर्कशता तो होती ही नहीं थी। यदि वालक फिर आश्रमवासियों के
वे दस मिनिट वाद फिर उनके पास जाते और प्रेम त्यागी और पवित्र
करते। फिर भी कोई काई वालक नहीं जगते। ले आप वर्धा चलने के
होते। जगाने की क्रिया मामूली है लेकिन उन्होंने दीजिये।" जमना
और काव्यमय वना दिया था। की श्रद्धा गांधीजी

छात्रावास का काम करते करते उन्होंने अनुभव ार कर लिया और
शास्त्र में इस कला की सवसे अधिक आवश्यकता है। ाश्रम की स्थापना
अनुभव करना चाहिए कि वे सजीव देवताओं की ही ियों के साथ जिन
लेकिन अध्यापकों की प्रणाली तो डांट फटकार और पहुंचे और आश्रम
आश्रित थी। उन्होंने वड़ी तीव्रता के साथ शिक्षा-प्रणाल
को अनुभव किया। अध्यापक को तो अपने हाथ से गन्दे श्रमवासियों के
हाथ पैर भी धो देना चाहिए, कपड़े सी देना चाहिये और कट सम्पर्क में
वड़ा ही स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। वे स्वय भी इस ए। उन्होंने
व्यवहार करने लगे। वालकों के विकास पर इसका वड़ा अच्छमनालालजी
हुआ। शिक्षा के सम्बन्ध में ये विचार उनके मन में गूंजते रहे अ डायरी
आगे चलकर गांधीजी ने नई तालीम को जन्म दिया तो उन्होंने इसोवाजी
में गांधीजी की वड़ी मदद की। आज विनोवा नई तालीम के सद दस

भे
प्र प्रणाली से उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में एक जबरदस्त

का
ी भी काम में विनोवाजी पीछे नहीं रहे। उनकी
लिख
आगे की पंक्ति के कार्यकर्ताओं में होती थी।
क्रान्तिकारी काम होता तो वे तुरन्त प्रारम्भ कर
राष्ट्री
रात विद्यापीठ में किसी ने गांधीजी से पूछा—
परिवर्तन
ा काम भी शिक्षा में आता है ?" गाँधीजी ने
स्वयं मुभ
पाखाना सफ़ाई का काम बड़ा महत्वपूर्ण है।
आपके
ी गुञ्जाइश है।" गांधीजी ने बताया कि पाखाने
के स्वास्थ्य के बारे में बहुतसी बातें जानी जासकती
का तो स्वास्थ्य पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। वह
य
के ठीक-ठीक उपयोग से खेती के काम में बहुत
यह उद्
ती है। बालकों के मन पर यह बात ज्यों की त्यों
दिया—
भी कैसे ? यह तो उनके संस्कारों के विरुद्ध थी।
तु
भी गुजरात विद्यापीठ में कुछ पढ़ाते थे। गांधीजी
तुम्हार
ही चुप नहीं हुए। उन्होंने और आगे बढ़कर कहा—
परीक्षा
मेरी बात आगई हो वे कल से ही पाखाना सफ़ाई
स्वीक
करदें।" अब तो विद्यार्थियों और शिक्षकों में हलचल
लोभ
काम से बचने के लिये बहुत से शिक्षक और विद्यार्थी
पि
ाना फिरने के लिये जाने लगे। लेकिन विनोबाजी आगे
उन्होंने पाखाना सफ़ाई का काम प्रारम्भ कर दिया। इस
कई दिनों तक करते रहे। इस काम के प्रति लोगों की
करने और उसे कलामय बना देने का बहुत सा श्रेय उन्हीं

नोबाजी आश्रम में कड़ा शरीर श्रम करते थे, लेकिन इससे
न और चिन्तन में कोई बाधा नहीं आती थी। अधिक पुस्तकें पढ़ने
उनकी आँखों पर पहिले ही काफ़ी असर हो चुका था। परिणाम यह

हुआ कि उनको आँखों से कम दिखाई देने लगा। लो· वर्धा लेजायें।
की राय दी लेकिन वे इसके लिए तैयार नहीं हुए। (प्रकट करदी।
वे कुछ नहीं पहिनते थे। गांधीजी ने उनसे कहा : आश्रमवासियों
शुरू करदें। अतः गांधीजी की आज्ञा से चश्मा आय.के रहें।" गांधी
उपयोग शुरू किया। आंखों के सम्बन्ध में वाश है। लेकिन तुम
उन्होंने कहा था—"आश्रम में मैं जिस कमरे में ्ही में अधिक सेवा
मकोड़े थे। मुझे वे दिखाई नहीं देते थे, लेकिन च्रा भारत की सेवा
तो वे मुझे दिखाई देने लगे।" यह इच्छा वे हमेशा

विनोवाजी के आश्रम में आने के वाद उनके ह देखते रहे। कुछ
इस ओर आकर्षित हुए। वे एक के वाद एक आने लगे यही इच्छा प्रकट
जी काले, रघुनाथरावजी घोत्रे, वावाजी मोघे आश्रमवासियों के
हरकारे जैसे व्यक्ति प्रमुख थे। ये सब लोग आगे चल त्यागी और पवित्र
ाक कार्यों के स्तम्भ वन गये। विनोवा का व्यक्ति आप वर्धा चलने के
ोह माया और आराम के जीवन से खींचकर आ दीजिये।" जमना
विरागी जीवन में ले आया। की श्रद्धा गांधीजी

इन्ही दिनों विनोवा के पास उनके एक मित्र ग़ार कर लिया और
लिखा था कि माँ वीमार है, लेकिन विनोवा मो ाश्रम की स्थापना
और विगड़ने लगी तो उसने अन्त में गांधीजी को लि ियों के साथ जिन
विनोवा को वुलाकर कहा कि वे इसी समय घर जाक चे और आश्रम
सुश्रूषा करें। विनोवा घर गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने
स्नेह से माँ के चरणों में सिर रख दिया। माँ की वीमा श्रमवासियों के
चुकी थी। वे उठ वैठ नहीं सकती थीं, लेकिन उनका मन अ सम्पर्क में
ही कड़ा था। वोली—"अपना काम छोड़कर क्यों आया ?ए। उन्होंने
इस प्रश्न से वड़े दुखी हुए। उन्होंने मन ही मन माँ से क्षमा या मनालालजी
जिस माँ ने विनोवाजी जैसे पुत्र को जन्म दिया, अन्त समय में डायरी के
कमजोरी कैसे आसकती थी ? उसकी दृढ़ता, गम्भीरता और उच्च वाजी के
के आगे किसका सिर श्रद्धा से नहीं झुकेगा ? इन देह

:: १० ::

ग्रह आश्रम की स्थापना

म अन्य अतिथियों के साथ स्व० सेठ जमनालाल
भी आया करते थे। इन दिनों वे नवयुवक ही
ना च र्ग-दर्शक की खोज में थे। अपना व्यापार का
ाय मुझ पत्र लिखे, काम के लिए भी समय निकाल लेते थे। मार्ग-
ापके पुत्र का उन्होंने उस समय के बड़े बड़े कहे जाने वाले प्रायः
में दो चार के स्थापित करने का प्रयत्न किया। वे महामना
द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर, सर जगदीशचन्द्र वसु, लोक
यह पत्र प सभी लोगों से मिलकर परिचय बढ़ा रहे थे। उन्होंने
उद्गार वा िकट से देखने का प्रयत्न भी किया। इस खोज ने
ा— पर सबसे अधिक असर कर रखा था। वह थी स
तुम्हारे लि उक्ति—

ारा प्रेम ा चाले। त्याची वंदावी पाउले॥"

क्षा करने व्यक्ति वन्दनीय है जो जैसा बोलता है वैसा ही
कार करत ता है। अपनी इस कसौटी पर कसकर ही वे किसी को
ा को त र्शक बनाना चाहते थे।
ा अपने

पित इसी खोज के सिलसिले में वे गांधीजी के पास साबरमती
मर भी आने लगे। धीरे धीरे उन्होंने गांधीजी से परिचय
र उनके तथा आश्रम के जीवन को निकट से देखने का प्रयत्न
जैसे जैसे वे गांधीजी के निकट आते गये उनको वह उक्ति
के जीवन में बहुत अंशों में दिखाई देने लगी। अन्त में वे इस
पर पहुँचे कि गांधीजी ही उनके मार्ग-दर्शक का स्थान ले सकते
गांधीजी में अपने सच्चे मार्ग-दर्शक का दर्शन करके जमनालालजी

की यह इच्छा हुई कि वे उन्हें आश्रमवासियों के साथ वर्धा लेजायें। आखिर एक दिन उन्होंने अपनी यह इच्छा गांधीजी पर प्रकट करदी। वे वोले—"वापूजी मेरी उत्कट इच्छा है कि आप सारे आश्रमवासियों के साथ वर्धा चलें और वहीं आश्रम की स्थापना करके रहें।" गांधीजी ने उत्तर दिया—"तुम्हारा विचार तो वड़ा अच्छा है। लेकिन तुम जानते हो कि मैं गुजराती हूँ। गुजरात में रह कर ही मैं अधिक सेवा कर सकूंगा। मैं यहाँ से गुजरात की सेवा के द्वारा भारत की सेवा करूंगा।" जमनालालजी निरुत्तर होगये। लेकिन यह इच्छा वे हमेशा के लिए न छोड़ सके। वे उपयुक्त अवसर की राह देखते रहे। कुछ समय के वाद फिर उन्होंने गांधीजी के सामने अपनी यही इच्छा प्रकट की लेकिन दूसरे रूप में। इस समय तक वे सारे आश्रमवासियों के सम्पर्क में आ चुके थे और विनोवा के तपस्यानिरत, त्यागी और पवित्र जीवन से प्रभावित हो चुके थे। अतः वोले—"यदि आप वर्धा चलने के लिए तैयार नहीं हैं तो विनोवाजी को ही वर्धा भेज दीजिये।" जमनालालजी के इस आग्रह को टालना कठिन था। उनकी श्रद्धा गांधीजी से छिपी नहीं थी। अतः उन्होंने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और सन् १९२१ में विनोवाजी को वर्धा में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना करने के लिए भेज दिया। विनोवाजी अपने कुछ साथियों के साथ जिन में धोत्रेजी, वल्लभस्वामी तथा कुछ विद्यार्थी थे, वर्धा पहुँचे और आश्रम की स्थापना की।

सत्याग्रह-आश्रम की स्थापना करके विनोवाजी आश्रमवासियों के साथ रहने लगे। जमनालालजी को यहाँ विनोवाजी के निकट सम्पर्क में आने का वहुत मौका मिला। वे उनसे वहुत प्रभावित हुए। उन्होंने विनोवाजी को अपना गुरु वना लिया। उनके सम्पर्क का जमनालालजी पर जो असर पड़ा उसको वताने के लिए यहां हम उनकी डायरी के एक दो वाक्य उद्धृत किये विना नहीं रह सकते।—"विनोवाजी के प्रति दिन व दिन श्रद्धा वढ़ती जारही है। परमात्मा यदि मुझे इस देह

से उनकी श्रद्धा के योग्य बनासके तो वह समय मेरे लिए धन्य होगा। मुझे दुनिया में बापू पिता व विनोबा गुरु का प्रेम दे सकते हैं, अगर मैं अपने को योग्य बनालूं।"

सावरमती आश्रम में विनोबा एक मूक साधक थे। आश्रम के सभी नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करके वे साधना में लगे हुए थे। इन दिनों वे बड़ी तेजी से आध्यात्मिक दिशा में प्रगति कर रहे थे। आश्रम के कार्यों में वे दिलचस्पी अवश्य लेते थे, लेकिन आगे बढ़कर कोई नया काम बहुत कम करते थे। गांधीजी और आश्रम के व्यवस्थापक मगनलाल भाई जो काम सौंपते उसे ही पूरी तरह करने में जुटे रहते थे। यहाँ उनकी दृष्टि अपने ऊपर अधिक थी, आश्रमवासियों पर कम। लेकिन एक आश्रम की ज़िम्मेदारी लेकर भी ऐसा ही रहना कठिन था, अतः यहाँ उन्हें अपने साथ-साथ आश्रमवासियों पर भी, दृष्टि रखनी पड़ी।

आश्रम का उद्देश्य था, देशसेवकों का निर्माण करना। आश्रम में इसी बात की शिक्षा दी जाती थी और आश्रमवासी आजन्म देश सेवा करने का व्रत लेकर उसमें लग जाते थे। लेकिन जीवन को सेवामय बना देना कोई सरल काम नहीं था। इस विषय पर वे बहुत दिनों से विचार कर रहे थे और इस परिणाम पर पहुँचे थे कि इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एकादश व्रतों का पालन आवश्यक है। इन वृतों को उन्होंने श्लोक बद्ध कर लिया। सारे व्रत दो श्लोकों में आगये हैं:—

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असंग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन ॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना।
ही एकादश सेवावीं नम्रत्वे व्रतनिश्चये ॥

अर्थात्—अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शरीरश्रम, अस्वाद, अभय, सब धर्मों के प्रति समानता, स्वदेशी और अस्पृश्यता निवारण, इन ग्यारह व्रतों का सेवन नम्रतापूर्वक

एवं निश्चय से करना चाहिये।

इन श्लोकों को लिखकर वे बहुत दिनों तक इनका चिन्तन करते रहे। कुछ समय बाद उन्होंने इनको प्रातःकालीन और सांयकालीन प्रार्थना में शामिल कर दिया और इन व्रतों का पालन आश्रमवासियों के लिये अनिवार्य कर दिया।

ये एकादश व्रत आश्रम की आत्मा थे। साबरमती आश्रम भी इसी आदर्श पर चलरहा था, लेकिन दोनों आश्रम एक प्राण, दो शरीर की भाँति कार्य कर रहे थे। वे दोनों स्वतन्त्र थे, कोई किसी की शाखा नहीं था।

उपर्युक्त एकादश व्रतों की प्रतिज्ञा लेने वाला व्यक्ति ही आश्रम में प्रवेश प्राप्त कर सकता था। फिर चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, चाहे हिन्दू हो चाहे मुसलमान। धर्म या अन्य कोई भेद उसके प्रवेश में बाधक नहीं हो सकते थे। माता पिता के साथ उनके छोटे बच्चे भी आश्रम में रह सकते थे। आश्रम की शिक्षा सात भागों में बांटी गई थी। धार्मिक, औद्योगिक, भाषा सम्बन्धी, सामाजिक, व्यवहारिक, कलात्मक और शारीरिक।

(१) धार्मिक—व्रत पालन, ईश्वरोपासना, शास्त्रों का अध्ययन, संतों के वचनों का अध्ययन आदि।

(२) औद्योगिक—कताई-बुनाई, धुनाई, खेती, बढ़ई का काम, सिलाई आदि।

(३) भाषा सम्बन्धी—संस्कृत, हिन्दुस्तानी, तथा अपनी प्रांतीय भाषा आदि का अध्ययन।

(४) सामाजिक—राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि का अध्ययन।

(५) व्यवहारिक—गणित, हिसाब रखना, भूगोल, विज्ञान आदि।

(६) कलात्मक—सङ्गीत, चित्रकला, साहित्य आदि।

(७) शारीरिक—खाना बनाना, पानी भरना, पीसना, आरोग्य

शास्त्र तथा पाखाना सफ़ाई।

उपर्युक्त व्रतों व सप्तमुखी शिक्षा को ध्यान रखकर दैनिक कार्य-क्रम बनाया गया ताकि उससे इनके पालन में सहायता मिले। कार्य-क्रम इसी दृष्टि से बनाया गया कि ये व्रत जीवन में उतारे जा सकें और सप्तमुखी शिक्षा के प्राप्त करने में सहायता मिले। कार्यक्रम इस प्रकार था—

४-३० बजे उठने की पहली घंटी।

४-३० से ५ बजे तक शौच जाना, हाथ मुंह धोना।

५ से ५-३० तक प्रार्थना।

५-३० से ७-३० तक धार्मिक ग्रन्थों का अध्ययन, मनन, अध्यापन तथा पानी भरना, पीसना, नाश्ता तैयार करना।

७-३० से ८-० तक नाश्ता।

८ से ११-३० तक शरीर श्रम—कातना, धुनना, बुनना, भोजन बनाना आदि।

११-३० से १२ तक स्नान तथा कपड़े धोना आदि।

१२-० से १-३० तक भोजन, वर्तन साफ़ करना, अनाज साफ करना और विश्राम।

१-३० से २ तक सामूहिक तकली कताई।

२-० से ५-३० तक शरीरश्रम—प्रातःकाल की भांति।

५-३० से ६ तक व्यायाम, शौच आदि।

६-० से ८-० तक भोजन, वर्तन साफ करना, घूमना।

८-० से ८-३० तक प्रार्थना।

८-३० से १० तक अध्ययन।

१०-० बजे सोने की घन्टी।

आश्रम के नियमों का कड़ाई से पालन किया जाता था। कोई भी आश्रमवासी अपने समय को व्यर्थ नहीं जाने देता था और समय पर सब काम करता था। कताई, बुनाई, धुनाई पर आश्रम में काफ़ी ध्यान

दिया जाता था और कातना तो सब के लिये अनिवार्य था। किसी भी नये व्यक्ति पर आश्रम की सात्विकता, शान्ति और सत्य अहिंसा की साधना की छाप पड़े बिना न रहती थी। विनोबा इन नियमों के पालन में बड़े कड़े थे और दूसरों के प्रति भी वे ढिलाई नहीं करते थे। परिणाम यह होता था कि आश्रम में कभी ज्यादा लोगों की भीड़ नहीं हो पाती थी। केवल सच्चे कार्यकर्ता ही विनोबाजी के पास टिकते थे। मध्यभारत के राष्ट्र कर्मी श्री वैजनाथजी महोदय ने अपने एक लेख में विनोबा के उस समय के स्वभाव का चित्र खींचते हुए लिखा है:—

"मैंने उन्हें पहिले पहल सन् १९२८ में देखा। तब उनकी भाषा आज जैसी नम्र नहीं थी। उस समय वे एकदम मौनी थे। अनुशासन के अत्यन्त कठोर। एक-एक अक्षर के वाक्यों में बोलते थे। कार्यकर्ताओं को उनके साथ बात करते डर लगता। जहां वे बैठते, सम्पूर्ण खामोशी रहती। आश्रम के सारे काम हाथ से होते। न इसमें अपवाद बर्दाश्त होता न अनियमितता। जहां कोई भूल हुई कि कार्यकर्ता की शामत आई समझिये। प्रारम्भिक उत्साह में उनके आश्रम में जाने वाले कार्यकर्ता दो दिन भी नहीं टिक पाते थे। कोई पहले दिन का पहला खाना खाकर रवाना हो जाते तो कोई शाम का भोजन पाकर सुबह गायब होजाते। मुश्किल से कोई दूसरे तीसरे दिन के प्रातःकाल तक टिक पाता। उस जमाने के और आज के विनोबा में जमीन आसमान का अन्तर होगया है।" उन दिनों विनोबा अग्नि जैसे प्रखर थे। वह प्रखरता प्रत्येक व्यक्ति के लिये सहन करना कठोर होता था। उस अग्नि ने तपाकर ही तो आज विनोबा को कुन्दन बना दिया है।

:: ११ ::

दो सत्याग्रह

"शब्द छोटे टाइप में लिखे हों या बड़े टाइप में, आकार के कारण उनके अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता। मनुष्य की सेवा यदि शुद्ध और निरहंकार होती है तो उस सेवा का क्षेत्र या परिणाम छोटा है या विस्तृत, इसकी कोई खास कीमत नहीं है। परमेश्वर निरहंकार सेवा ही स्वीकार करता है।"

—विनोबा

देशभक्ति की भावना विनोबा में प्रारंभ से ही रही है। हमारे राष्ट्रीय जागरण के दिनों देशसेवा दो तरीकों से होती रही। पहला तरीका था पार्लियामेन्टरी कार्यक्रम का और दूसरा रचनात्मक कार्य का। विनोबा ने पहले तरीके को कभी नहीं अपनाया यहां तक कि राजनैतिक आन्दोलन में भी उन्होंने तभी भाग लिया जबकि उन्हें वहां शुद्ध और निरहंकार सेवा का अवसर दिखाई दिया। उन्होंने सत्ता, प्रसिद्धि और 'वाह वाह' प्राप्त करने की कभी कल्पना ही नहीं की। यदि यह कहा जाय कि वे इनसे भागते रहे तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी।

सन् १९२३ की बात है। १३ अप्रेल के दिन नागपुर में राष्ट्रीय सप्ताह के उपलक्ष में राष्ट्रीय झण्डे का जुलूस निकला। पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट ने जुलूस रोक दिया। स्वयं-सेवक इस बाधा से विचलित नहीं हुए। पुलिस ने जुलूस पर आक्रमण किया और अनेक स्वयंसेवकों को गिरफ्तार कर लिया। पुलिस का यह कार्य राष्ट्रीय झण्डे का अपमान था। यह अपमान करके मानो उन्होंने देशभक्तों को चुनौती दी थी। सेठ जमनालालजी बजाज ने इस चुनौती को स्वीकार किया और इस अन्याय के विरुद्ध खड़े होगये। उनके आह्वान पर प्रान्त के देशभक्त स्वयंसेवक आगे आये और सत्याग्रह प्रारम्भ होगया। सरकार ने सेठ जमनालालजी को

गिरफ़्तार कर लिया और आशा की कि अब आन्दोलन की कमर टूट जायगी लेकिन कहीं आन्दोलन शान्त हो सकता था। अब तो आग और भी बढ़ी। उस दिन पंडित जवाहरलाल नेहरू नागपुर में ही थे। वे उन दिनों अखिल भारतीय कांग्रेस के प्रधान मन्त्री थे। उन्होंने एक स्थान पर अपने भाषण में कहा—"नागपुर आने पर मेरे दिमाग़ को कुछ शान्ति मिली। नागपुर ने बता दिया कि यहां पर कुछ काम हो रहा है। बड़ी-बड़ी तक़रीरों और बहसों में मेरी दिलचस्पी नहीं है। मुझे तो एक ही बात पसन्द आती है—काम करना और एक ही बात में लुत्फ़ आता है और वह है—लड़ाई लड़ना। नागपुर ने आज जो करके दिखाया है, वह अन्य प्रान्तों के लिए भी अनुकरणीय है। मैं इस झण्डे की लड़ाई को खास तौर से पसन्द करता हूं, क्योंकि यह स्वार्थ की नहीं, उसूल की लड़ाई है।"

कांग्रेस कार्यसमिति तथा महासमिति दोनों ने ही झण्डासत्याग्रह को आशीर्वाद दिया। इतना ही नहीं, कमेटी ने आन्दोलन को सफल बनाने के लिए उसकी सहायता करने का भी निश्चय किया। १८ तारीख के दिन सारे देश में झण्डा-दिवस मनाया जाय। कमेटी ने सारे देश के युवकों से अपील की कि राष्ट्रीय झण्डे का जो अपमान नागपुर में हुआ और उसके लिए वहां जो सत्याग्रह हो रहा है, उसमें वे सम्मिलित हों और उसे सफल बनावें। अब तो नागपुर में देश भर के स्वयंसेवकों का तांता बंध गया। जगह जगह से प्रति दिन स्वयंसेवक आने लगे। वे टोलियां बनाकर सत्याग्रह करते और जेल जाते। अनेक स्वयंसेवक गिरफ़्तार होने लगे और वातावरण में काफ़ी गर्मी आगई।

अब झण्डा-सत्याग्रह एक अखिल भारतीय आन्दोलन बन गया। विनोबा अपने काम में लगे थे। लेकिन इस बड़ी हलचल ने उनकी समाधि भंग की। यह बात उन्हें कैसे अच्छी लग सकती थी कि जब वर्धा के पास ही नागपुर में झण्डे की प्रतिष्ठा के लिए बाहर के स्वयंसेवक आवें और वे चुपचाप उपेक्षावृत्ति से काम करते रहें। उनका ध्यान

सत्याग्रह की ओर आकर्षित हुआ। उन्होंने निश्चय किया कि वे भी अपने साथियों के साथ सत्याग्रह में सम्मिलित होंगे। जब यह खबर इधर-उधर फैली तो लोगों ने उनसे कहा कि वे सत्याग्रह के संचालन का सूत्र अपने हाथ में लें और उसे गति दें। विनोबा ने यह उत्तरदायित्व स्वीकार कर लिया। जब पुलिस को इस बात की सूचना मिली तो उसने विनोबा को सत्याग्रह सूत्र संचालन करने के पूर्व ही गिरफ़्तार कर लिया और जेल भेज दिया।

विनोबा की गिरफ़्तारी के बाद सरदार वल्लभभाई पटेल ने सत्याग्रह की बागडोर अपने हाथ में सम्भाली। उन्होंने १८ तारीख को जुलूस निकालने का निश्चय किया और उसका रास्ता भी निश्चित् कर दिया। जुलूस निकला, लेकिन पुलिस ने न उसे रोका, न किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किया। बात यह थी कि अब वह अपनी भूल स्वीकार कर चुकी थी। अधिक दिनों तक कई लोगों को जेलों मे ठूंसे रहना भी तो संभव नहीं था। अतः उसने समझौते की बात चलाई और समझौता करके सारे प्रतिबन्ध उठा लिये। तीन सितम्बर के दिन सारे सत्याग्रही छोड़ दिये गये। विनोबा भी इस दिन छोड़ दिये गये। जेल से छूटते ही वे फिर आश्रम चले गये और अपने काम में पहिले की तरह लग गये। इस बार संभवतः पहिली ही बार अखबारों में विनोबा कानाम आया।

अखबारों में विनोबा का नाम दूसरी बार आने का मौक़ा भी थोड़े ही दिनों बाद आगया। यह मौक़ा था बाइकोम का सत्याग्रह। बाइकोम एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान है। वह केरल प्रान्त में है और दक्षिणी भारत के पश्चिमी किनारे पर स्थित है। यहाँ गाँव के बीचोंबीच शङ्कर जी का प्रसिद्ध मन्दिर है। यह मन्दिर सनातन धर्मियों का केन्द्र है। सन् १९२४ के प्रारम्भ में यहाँ सत्याग्रह प्रारम्भ हुआ। माधवन, कृष्णस्वामी तथा केलधन ने इसे प्रारम्भ किया था। उन्होंने एक दिन ब्राह्मण बस्ती से होकर मन्दिर की ओर जाने वाले रास्ते से कुछ अस्पृश्यों को साथ लेकर जाने का प्रयत्न किया। रास्ता सार्वजनिक था,

लेकिन ब्राह्मणों और पण्डों ने सैकड़ों वर्षों से उस रास्ते से अस्पृश्यों का जाना आना बन्द कर रखा था। उपर्युक्त तीनों सज्जनों को यह व्यवहार अमानवीय लगा और वे उसका विरोध करने के लिये तैयार हुए।

गांधीजी भी हाल ही जेल से छूटकर आये थे। उनका स्वास्थ्य अभी पहिले जैसा नहीं हो पाया था। अपेन्डिसाइज़ का आपरेशन हुआ था और वे अभी काफ़ी कमजोर थे। वाईकोम के कार्यकर्ता उनसे सलाह लेने आये। गांधीजी की भी बड़ी इच्छा थी कि इस सत्याग्रह का नेतृत्व करें, लेकिन स्वास्थ्य की रुकावट थी। गांधीजी ने उनको आशीर्वाद दिया और उनके मार्ग दर्शन के लिये किसी को भेजने का विचार किया। मार्ग दर्शन का विचार आते ही उनकी दृष्टि अपने आश्रम वासियों पर गई। सत्याग्रह के तत्व को अच्छी प्रकार समझने वाले व्यक्ति की जरूरत थी। नजर विनोबाजी पर ही ठहरी। वे जानते थे कि विनोबाजी इधर-उधर जाना पसन्द नहीं करते। उनको आगे बढ़कर राजनीति में आने की इच्छा नहीं है। लेकिन वे यह भी जानते थे कि सेवा के कामों में उनकी कितनी ज़्यादा दिलचस्पी है। जहाँ वास्तविक कार्य हो रहा हो और उनकी आवश्यकता हो वहाँ वे पीछे भ। नहीं रहते हैं। गांधीजी ने उन्हें बुलाया और उनपर अपना विचार प्रकट किया। कार्य तो अच्छा था ही, गांधीजी की इच्छा भी थी, अत-एव वे तैयार होगये और वाईकोम की ओर चल पड़े।

विनोबाजी ने शङ्कराचार्यजी के ग्रन्थों और भाष्यों का काफ़ी अध्ययन किया है और उनके ऊपर उनका बड़ा असर पड़ा है। उनके मन में शङ्कराचार्यजी के प्रति काफ़ी श्रद्धा है। भूगोल पढ़ते समय उन्हों ने याद कर रखा था कि मलावार के किनारे पर शङ्कराचार्यजी का जन्म ग्राम है। जिधर होकर वे जारहे थे उधर कहीं कहीं भगवान् शङ्कराचार्य का 'कालड़ी' ग्राम था। उन्होंने अपने साथ के मलियाली व्यक्ति से पूछा। उसने कहा—यहाँ से वह स्थान १०-१२ मील दूर है। क्या आप जाना चाहते हैं? इस स्थान को देखने की उनको बड़ी इच्छा

थी, लेकिन दूसरे ही क्षण उनको अपनी कर्तव्य-भावना का खयाल आया। उन्होंने वहाँ जाने से इन्कार कर दिया। वे सत्याग्रह सञ्चालन के लिये जारहे थे, अतः और कहीं जाना उचित नहीं था। शङ्कराचार्य जी के प्रति अपार श्रद्धा और उस स्थान को देखने की बड़ी इच्छा होते हुए भी वे वहाँ नहीं गये। उनके मन में आज तक इस बात का पश्चा-ताप नहीं है। लेकिन रात को जब सोने लगे तो वह कालड़ी ग्राम और शङ्कराचार्यजी की मूर्ति उनकी आँखों के सामने बार-बार आने लगी। उनकी नींद उड़गई। शङ्कराचार्य का वह ज्ञान का प्रकाश, उनकी दिव्य अद्वैत निष्ठा, सामने फैले हुए इस संसार को मिथ्या ठहराने वाला उनका अलौकिक व ज्वलन्त वैराग्य, उनकी गम्भीर भाषा और विनोबाजी पर किये हुए उनके अनन्त उपकार रह-रह कर उनको याद आने लगे। उनकी कल्पना में ये सब भाव सजीव साकार होने लगे। इस समय उन्हें इतना आनन्द मिला जितना प्रत्यक्ष भेंट में भी नहीं मिलता।

वे वाईकोम पहुँचे। त्रावणकोर की सरकार ने सनातनियों का पक्ष लिया और रास्ते की रक्षा के लिये पुलिस भेजदी। सार्वजनिक रास्ते का उपयोग करने का अधिकार प्रत्येक नागरिक को है, यही इस सत्या-ग्रह का आधार था। विनोबाजी ने सारी स्थिति का अध्ययन किया और सत्याग्रह की सारी तैयारियाँ कीं। पहिली टुकड़ी भेजी गई। ब्राह्मणों और पुजारियों ने रास्ता रोक लिया और इस टुकड़ी के लोगों को बुरी तरह पीटा। एक व्यक्ति तो बहुत बुरी तरह घायल हुआ। इस टुकड़ी में कुछ सुधारक और कुछ अस्पृश्य थे। विनोबा ने आगामी मुसीबतों से उनको पहिले ही परिचित करा दिया था। अतः इसका उनके ऊपर कोई विशेष असर नहीं हुआ। विनोबा ने उनको बताया कि उन्हें बदले में हिंसा की कल्पना भी नहीं आने देनी चाहिए और प्रसन्न चित्त से अपना कार्य चालू रखना चाहिये। कार्यक्रम इसी प्रकार चालू रखा गया। कितने ही सत्याग्रहियों को गिरफ्तार करके सजाएँ दी गईं, मारा पीटा भी गया, लेकिन यही क्रम चलता रहा।

विनोवा के सफल नेतृत्व ने जनता में उत्साह की लहर दौड़ा दी। आसपास के ग्रामों और प्रान्तों से सत्याग्रही आने लगे और वे गिरफ़्तार हो जाने वाले सत्याग्रहियों का स्थान लेने लगे। अब यहाँ भी इतने सारे लोगों को हमेशा गिरफ़्तार करते रहना सरकार के लिये कठिन होगया। अतः उसने गिरफ़्तारी बन्द करदी। लेकिन सरकार ने एक दूसरी चाल चली। उसने रास्ता रोक दिया और वहाँ पुलिस नियुक्त करदी। विनोवाजी ने गांधीजी से सलाह ली और यह तय हुआ कि उस रोक को तोड़ने के वजाय सत्याग्रही नम्रतापूर्वक रात दिन उसके सामने खड़े रहें। स्वयंसेवकों ने पास ही एक झोंपड़ी वनाली और छः छः घण्टों की वारी लगाकर अपना काम शुरू कर दिया। अधिकांश समय में वे सूत कातते। पुलिस वाले, सरकारी आफ़ीसर, पुजारी अथवा ब्राह्मणों के विरुद्ध किसी भी प्रकार की हिंसा का अव-लम्वन करने का विचार भी मनमें न आने देते हुए सत्याग्रही अपना कार्य कर रहे थे। यह एक वहुत वड़ी वात थी। इस शान्ति और अहिंसा का श्रेय विनोवाजी को ही था।

यह कार्यक्रम कई दिनों तक चालू रहा। अव वर्षा शुरू हुई। रास्ते का वह भाग वहुत ही नीचा था, अतः वहाँ पानी ही पानी होगया। फिर भी स्वयंसेवक विचलित नहीं हुए। कितनी ही वार वे कन्धे कन्धे पानी में खड़े रहे। उन्होंने तीन-तीन घण्टे की पाली वाँधी लेकिन अपना सत्याग्रह चालू रखा। पुलिस को भी एक चौकी पास ही वनानी पड़ी।

सत्याग्रह की अखण्डता और स्वयंसेवकों के मूक कष्टसहन के कारण इस प्रश्न को अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त होगया। चारों ओर उसकी चर्चा होने लगी। कई लेख समाचारपत्रों में इस सम्वन्ध में निकले। सन् १९२१ के अप्रेल मास में स्वयं गांधीजी यहाँ आये। वे त्रावणकोर के अधिकारियों से मिले। गांधीजी ने उनसे कहा कि केवल पाशविक सत्ता के वल पर सनातनधर्म की रक्षा नहीं होसकती। जव रास्ते की

रोक हटा लेने के लिए सरकार तैयार हुई, तब एक वर्ष चार महीनों के बाद यह सत्याग्रह समाप्त हुआ। इस प्रकार विनोबा ने गांधीजी के एक सेनापति के रूप में अपना कर्तव्य पूरा किया और सत्याग्रह के सञ्चालन में महत्वपूर्ण काम किया।

:: १२ ::

आश्रम-जीवन

"प्राचीन काल में राजा लोग प्राय: ऋषियों के आश्रम में जाया करते थे। वहाँ वे ऋषियों के साथ सारे राजनैतिक और सामाजिक प्रश्नों पर चर्चा करते थे और ऋषि निर्विकार रूप से सारे प्रश्नों का विवेचन करते थे। वहाँ दूसरे ऋषि भी समय समय पर एकत्र होते और आपस में विचार विनिमय करते थे। राजा इन आश्रमों से नवीन विचार, नवीन दृष्टिकोण और पवित्रता लेकर लौटते थे। आश्रम मानो ज्ञान संयम, उद्योग, प्रयोग और कर्म के केन्द्र स्थान थे। गाँव के बाहर वाले मन्दिर में जाने पर जो शान्ति और आनन्द मिलता है वही आश्रम में जाने पर भी मिलना चाहिए। आश्रम ऐसा स्थान हो जहां संसार के त्रस्त जीवों को आनन्द उत्साह और स्फूर्ति प्राप्त हो तथा उन्हें नई दृष्टि मिले।"

—विनोबा

आश्रम जीवन के सम्बन्ध में विनोबा के विचार स्पष्ट थे। वे शरीर-श्रम को आश्रम का शरीर, स्वाध्याय को वाणी तथा नैतिक व्रताभ्यास को उसका हृदय बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि आश्रम के आसपास ऐसी संस्थायें हों जिनमें अलग अलग तरह के उद्योग धन्धे चलते रहें जैसे बढ़ई का काम, बुनाई, कृषि, लोहारी, गोपालन, चमड़े का काम

आदि। प्रत्येक संस्था एक एक उद्योग का संचालन करे। आश्रमवासी अपने शरीरश्रम के समय में इन सस्थाओं में जाँय और वहां दूसरे मजदूरों के साथ काम करें। इन कामों से जो मजदूरी मिले वह आश्रम में जमा करदी जाय। आश्रम में शरीरश्रम के अतिरिक्त शेष सब काम हों। अपनी इस कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए विनोबाजी ने चर्मशाला, ग्रामोद्योग संघ, चर्खा संघ, तालीमीसंघ, गोसेवा संघ आदि संस्थाओं के निर्माण में बड़ी सहायता दी और इनको इस तरह संगठित किया कि उन्हें शीघ्र ही अखिल भारतीय स्वरूप प्राप्त होगया। आश्रम निवासी इन संस्थाओं में जाकर काम करने लगे और अपने बचे हुए समय में आश्रम में आहार शुद्धि, स्वाध्याय, प्रार्थना, सूत्रयज्ञ, आत्म-निरीक्षण एवं व्रताभ्यास आदि की साधना भी करते रहे।

आश्रम मानो एक प्रयोगशाला ही थी। भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग वहाँ चलते रहते थे। आश्रम के सभी निवासी साधक थे। वे पुराने नियमों, व्यवस्थाओं व प्रणालियों को न तो पुराने कहकर समाप्त करना चाहते थे, न नवीन को आँख मूंद कर ग्रहण करना चाहते थे। अतः प्रयोग करके सब को सत्य की कसौटी पर कसना आवश्यक था। बिना इसके ग्राह्य अग्राह्य, अच्छे बुरे तथा उचित अनुचित का निर्णय नहीं किया जासकता था।

सन् १९२४ और २५ में यह प्रयोग किया गया कि आश्रमवासी श्रम करके जितनी मजदूरी प्राप्त करें उतने भर से ही अपना निर्वाह किया जाय। प्रातःकाल तो खाना बनाया जाता था और सब लोग खा लेते थे लेकिन शाम के समय यह हिसाब लगाया जाता था कि आज की मज़दूरी में से प्रातःकाल के भोजन का मूल्य निकलने के बाद कुछ बचता है या नहीं। यदि कुछ बचता तो उतने का भोजन बनता, अन्यथा नहीं। इस प्रकार जो कुछ मिलजाता सब लोग उसी में सन्तोष मान लेते थे। राधाकृष्णजी बजाज बढ़ई का काम करते थे और इससे वे आठ आने प्रतिदिन प्राप्त कर लेते थे। गोपालरावजी मध्यम धुनको

पर १॥ सेर रुई धुन लेते थे। इस प्रकार अन्य लोग भी अपनी-अपनी उत्पादन शक्ति वढ़ाने में लगे हुए थे। देश की आर्थिक स्थिति ठीक करने और लोगों में श्रम की प्रतिष्ठा पैदा करने के लिये यह ज़रूरी भी था।

आश्रम में कोई काम छोटा या वड़ा नहीं माना जाता था। विनोवाजी ने एक वार झाड़ू लगाने का काम ले लिया, वे कई दिनों तक झाड़ू लगाते रहे। आश्रम की सफ़ाई तो करते ही थे, पर जव किसी का कमरा गन्दा देखते तो उसे भी साफ़ कर देते थे।

आश्रम का भोजन वड़ा सादा था। भोजन के वारे में भी नये-नये प्रयोग होते रहते थे। तेल और घी में तली हुई चीज़ें, मिठाइयाँ, मिर्च, मसाले आदि वहाँ काम में नहीं लाये जाते थे, क्योंकि ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन में ये सहायक नहीं होते। सब्ज़ी उवली हुई रहती थी और दाल में नमक नहीं डाला जाता था। जिसे आवश्यकता होती, ऊपर से ले सकता था। दूध, दही, छाछ, फल आदि चीज़ें केवल भोजन के समय ही खाई जाती थीं। भोजन के समय के अलावा किसी भी समय कोई चीज़ खाना मना था।

विनोवाजी आहार शुद्धि को आवश्यक मानते हैं। उनका कहना है कि 'जैसा आहार वैसा ही मन'। आहार की परिमितता पर उनका अधिक ज़ोर है। आहार कैसा हो इसकी अपेक्षा वे इस वात पर अधिक ज़ोर देते थे कि वह कितना हो। इसका यह मतलव नहीं कि आहार का चुनाव उनकी दृष्टि में महत्वपूर्ण नहीं है। वे उसे महत्वपूर्ण मानते हैं, लेकिन भोजन की परिमितता को वे इससे भी ज़्यादा महत्वपूर्ण मानते हैं। जो कुछ खाया जाता है उसका असर तो होता ही है। अतः वे उसकी मात्रा और पवित्रता का ध्यान आवश्यक मानते हैं। भोजन करने का प्रयोजन तो केवल सेवा करना ही है। जिस प्रकार के आहार से उत्कृष्ट सेवा हो सके उसे ही वे ठीक समझते हैं। आहार को वे एक यज्ञ का अंश मानते हैं। उनका विचार है कि सेवारूपी यज्ञ को फलदायी वनाने के लिए उसकी आवश्यकता है।

वे कहते हैं कि आहार शुद्धि की कोई मर्यादा नहीं। हिन्दुस्तान में आहार शुद्धि के लिए विशाल प्रयत्न हुए हैं। उन प्रयोगों में हज़ारों वर्ष बीते। संसार में हिन्दुस्तान ही एक ऐसा देश है जिसमें अनेक जातियाँ अमांस भोजी हैं। वे कहते हैं कि मांसाहार की प्रवृत्ति को रोकने के लिये यज्ञ शुरू हुआ और इसी के लिये वह बन्द भी होगया। श्रीकृष्ण भगवान् ने यज्ञ की व्याख्या बदल दी। उन्होंने दूध की महिमा बढ़ाई। श्रीकृष्णजी ने अनेक असाधारण बातें की हैं लेकिन हिन्दू जनता को तो गोपाल कृष्ण प्रिय हैं। श्रीकृष्णजी के गोपालन से मांसाहार बन्द करने में बड़ी सहायता मिली।

वे मानते हैं कि फिर भी अभी पूरी आहार शुद्धि नहीं हुई है। उन्होंने विचार किया कि दूध पीना भी एक प्रकार की सूक्ष्म हिंसा ही है। दूध तो बछड़े के लिए होता है। बछड़े का भाग उसकी माँ से छीनना ठीक नहीं। उन्होंने आहार शुद्धि के प्रयोग को आगे बढ़ाने की दृष्टि से सन् १९३० में दूध लेना छोड़ दिया। सन् १९३४ तक उन्होंने बिलकुल दूध नहीं लिया। इतने लम्बे अर्से तक प्रयोग करके वे देखते रहे कि दूध के बिना काम चल सकता है या नहीं।

प्रयोगों के सम्बन्ध में वे कोई पूर्व धारणा लेकर नहीं चलते और न किसी बात की ज़िद ही करते हैं। जिस क्षण सत्य की अनुभूति होती है उसी क्षण उसे स्वीकार कर लेते हैं। जिस प्रकार उन्होंने दूध छोड़ने का प्रयोग किया उसी प्रकार आश्रम के एक भाई ने अपनी कब्ज़ दूर करने के लिये केवल दूध पर ही रहने का प्रयोग किया और उनको इससे लाभ भी हुआ। इस प्रकार आश्रम के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के प्रयोग चल रहे थे।

कच्ची सब्ज़ी के सम्बन्ध में भी प्रयोग हुआ। भोजन के समय उबली हुई सब्ज़ी के स्थान पर कच्ची सब्ज़ी खाई जाने लगी और यह देखने का प्रयत्न किया गया कि वह उबली हुई सब्ज़ी से अधिक लाभदायक सिद्ध होती है या नहीं। यह प्रयोग सब लोगों ने मिलकर किया। लगभग

४-५ महीनों तक आश्रम में उवली हुई सब्ज़ी नहीं बनी, सब ने कच्ची सब्ज़ी ही खाई।

मिट्टी के तेल के सम्बन्ध में भी एक प्रयोग किया गया। यहां जितना मिट्टी का तेल निकलता है वह आवश्यकता की दृष्टि से पर्याप्त नहीं होता अतः ब्रह्मा आदि देशों से भी मंगवाया जाता है। स्वदेशी की प्रतिज्ञा लेने वाले आश्रमवासियों को इसमें कुछ विदेशीपन लगा। दूर देश से आने वाले तेल का उपयोग स्वावलम्बन के मार्ग में भी वाधक था अतः विनोवाजी ने नियम वनाया कि एक वर्ष तक मिट्टी के तेल का उपयोग नहीं किया जाय। यह प्रयोग वहुत सफल हुआ। सवने देशी तेल जलाना प्रारम्भ किया और इस तेल को जलाने के लिए तरह-तरह की लालटेनें वनाई गई। 'मगन दीप' इन सव में अच्छा सिद्ध-हुआ।

आश्रम प्रायः शहर से दूर रहते थे। सावरमती आश्रम जंगल में था। वर्धा के आश्रम भी शहर से दूर ही थे। अतः सांपों के कारण आश्रमवासी प्रायः परेशान रहते थे। सांप को मारना तो किसी को पसन्द नहीं था। वह अहिंसा के सिद्धांत के विरुद्ध भी था। अतः सांपों को पकड़ने और उन्हें दूर छोड़ आने की वात ही सवने पसन्द की। यह अध्ययन भी प्रारंभ हुआ कि कौनसा साँप विषैला होता है और कौनसा नहीं। सव लोगों ने सांपों को पकड़ना और उनको पहिचानना सीखा। जव साँप दिखाई देता, उसे पकड़ कर दूर छोड़ दिया जाता। इससे आश्रम के आसपास सांप न रहे। सांप पकड़ने के काम में भाऊ पानसे अधिक चतुर थे। सांप की ही भांति विच्छुओं को भी पकड़ कर वाहर छोड़ दिया जाता था।

यह तो आश्रम के साधारण से प्रयोगों की वात है। कताई, धुनाई, वुनाई आदि के सम्वन्ध में भी वहुत से प्रयोग हुए और यह काम वहुत तेज़ी से आगे वढ़ाया गया। शिक्षा, उद्योग, लिपि, समाज-विज्ञान और अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में भी वड़े वड़े प्रयोग किये गये। इस प्रकार वर्धा के सत्याग्रह आश्रम में विनोवा की सेवामय तपस्या चल रही

थी। उन्होंने अपनी इस तपस्या से हजारों लोगों को स्फूर्ति ही नहीं नई दृष्टि भी प्रदान की।

यहीं से 'महाराष्ट्र धर्म' नामक एक मासिक पत्र उन्होंने प्रारंभ किया। इसके केवल चार ही अङ्क निकले लेकिन ये चार ही बड़े महत्वपूर्ण हैं। इनमें उपनिषदों के तत्वज्ञान पर अच्छे-अच्छे लेख हैं। नागपुर के झण्डा-सत्याग्रह पर "धर्म क्षेत्रे नागपुरे" शीर्षक का एक तेजस्वी लेख इसके चौथे अङ्क में प्रकाशित हुआ था। आगे चलकर यह मासिक बन्द हो गया और इसके स्थान पर इसी नाम का साप्ताहिक पत्र प्रारंभ किया गया। इस पत्र में सब कुछ विनोबाजी ही लिखते थे। इसमें तुकाराम के अभंग नामक एक स्तंभ भी था जिसमें तुकारामजी के अभंग देकर उनपर सुन्दर टीका की जाती थी। इसके अन्य स्तंभ भी बड़े स्फूर्तिदायक थे।

इस प्रकार विनोबाजी हमेशा आश्रम के कार्यों में ही लगे रहे। गांधीजी के प्रति अपार श्रद्धा होने पर भी उन्होंने कभी उनके निकट रहने का प्रयत्न नहीं किया। एक अच्छे सैनिक की भांति वे अपने स्थान पर हमेशा दृढ़तापूर्वक खड़े रहे और अपने काम को ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण मानते रहे। बिना गांधीजी की आज्ञा के वे कभी किसी दूसरे काम में नहीं लगे। सन् १९२४ में दिल्ली में हिन्दू मुस्लिम एकता के लिए गांधीजी ने २१ दिन का उपवास किया। इस अवसर पर जब विनोबाजी की उपस्थिति आवश्यक मानी गई तो वे दिल्ली गये और उपवास के दिनों गांधीजी की सेवा करते रहे। वे गांधीजी को गीता, उपनिषद् आदि सुनाया करते थे। प्रार्थना तो प्रति दिन होती ही थी। सायंकालीन प्रार्थना में शहर के लोग भी आया करते थे। उपवास के कारण गांधीजी दिन प्रति दिन कमज़ोर होते जा रहे थे। अतः उनमें प्रवचन देने की शक्ति नहीं रही थी। विनोबाजी को यह काम सौंपा गया। वे प्रति दिन कठोपनिषद् पर प्रवचन देते रहे। ज्योंही उपवास समाप्त हुआ, वे वर्धा आगये।

उपवास के बाद के दिनों की ही एक घटना है। जब उपवास अच्छी तरह समाप्त होगया तो देश में शान्ति स्थापित करने के लिये एक सर्वधर्म परिषद् का आयोजन किया गया। सारे धर्मों के प्रतिनिधि दिल्ली आये। परिषद् का समय प्रातःकाल ९ बजे का था, लेकिन समय पर वहाँ केवल दो व्यक्ति पहुँचे—श्रीमती एनीबीसेन्ट और विनोबाजी। विनोबाजी में समय की पाबन्दी का एक बहुत बड़ा गुण प्रारम्भ से ही है। वे अपना प्रत्येक काम समय पर करते हैं और इसमें किसी प्रकार की ढ़ीलढ़ाल सहन नहीं करते।

आश्रम में कोई उत्सव नहीं मनाया जाता था, न उसके काम की कोई रिपोर्ट ही छापी जाती थी। जहाँ प्रत्येक क्षण सेवा में व्यतीत होता है, वहाँ रिपोर्ट कैसी? एक बार कुछ आश्रमवासी विनोबाजी के पास आये और बोले—"कल रामनवमी है अतः उसका उत्सव मनाया जाय।" विनोबा ने कहा—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन आप उसे कैसे मनाएँगे?" "हम सब लोग मिलकर सूत कातेंगे।" विनोबाजी ने कहा—"बहुत अच्छा।"

दूसरे दिन राम जन्म के समय सब लोग इकट्ठे हुए और सूत कातने बैठे। गम्भीर शान्ति फैली हुई थी। विनोबाजी सूत कात रहे थे और उनकी आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। पता नहीं उनके सामने राम का चरित्र था या रामायण के अन्य पात्रों का, उनके सामने तुलसीदास थे या वाल्मीकि। उनके हाथ सूत कात रहे थे और आँखों से धारा बह रही थी। बड़ा ही रोमाञ्चकारी और पवित्र दृश्य था। इस प्रकार राम जन्म कितने लोग मनाते हैं? विनोबा की पवित्र भावनाओं के प्रवाह में आश्रमवासी बहे बिना न रहे होंगे।

विनोबाजी का आश्रम जीवन आदर्श था। आश्रम मानो ज्ञान विज्ञान आदि सेवा साधना का एक प्रमुख केन्द्र बनगया था। यही आकर्षण बाद में गाँधीजी को भी यहाँ खींच लाया।

:: १३ ::

धूलिया जेल में

"महात्माजी का सत्याग्रह सबको पुकार रहा है। स्त्री-पुरुष-बच्चे बूढ़े सबके लिये उसमें स्थान है। वस्तुतः सबने उसमें भाग लिया भी है। जिस प्रकार सब लोग रामनाम का जप कर सकते हैं उसी प्रकार सब लोग सत्याग्रह में भी भाग ले सकते हैं।" —विनोबा

सन् १९३० में जो सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ वह भारतवर्ष की आज़ादी के इतिहास में बड़ा महत्वपूर्ण है। गांधीजी ने नाटकीय ढङ्ग से यह आन्दोलन प्रारम्भ किया। अपने कुछ आश्रमवासियों के साथ उन्होंने पैदल दाण्डी यात्रा की और दाण्डी पहुँचकर नमक क़ानून तोड़ा। उनके द्वारा क़ानून भङ्ग होते ही सारे देश में सत्याग्रह संग्राम छिड़ गया। जेल जाते समय गाँधीजी ने सन्देश दिया—"दूसरों को बिना मारे मरो।" सारे देश में उत्साह की लहर दौड़ गई। जगह-जगह नमक बनाया जाने लगा तथा सभाओं, जुलूसों व लाठी चार्जों की मानो बाढ़ ही आगई। विनोबा कैसे चुप रहते? एक सैनिक की भाँति वे भी आगे आये। ताड़ के पेड़ काटना भी कार्यक्रम का एक अङ्ग था। वे कुल्हाड़ी लेकर ताड़ के पेड़ काटने जाते थे। यह काम करते हुए लोगों ने उनमें अलौकिक स्फूर्ति देखी थी।

सन् १९३१ में आन्दोलन रुका। इन दिनों खानदेश में सत्याग्रहियों का सम्मेलन हुआ। विनोबाजी उसके अध्यक्ष बनाये गये। अपने अध्यक्ष पद से विनोबाजी ने उस समय जो भाषण दिया वह बड़ा ही स्फूर्ति-दायक था—"महात्माजी का सत्याग्रह सब लोगों को पुकार रहा है। स्त्री, पुरुष, बच्चे, बूढ़े सब के लिये उसमें स्थान है। वस्तुतः सबने इसमें भाग लिया भी है। जिस प्रकार सब लोग राम नाम का जप कर सकते

हैं, उसी प्रकार सब लोग सत्याग्रह में भी भाग ले सकते हैं। फ़ौजों के द्वारा जो युद्ध लड़ा जाता है उसमें कुछ ही लोग भाग लेते हैं, लेकिन जिस लड़ाई में सब लोग भाग लेते हैं वह बड़ा महत्वपूर्ण होता है। जिसे सब लोग लड़कर प्राप्त करते हैं, उसकी रक्षा भी सभी लोग करते हैं। सब को इस बात से सन्तोष होता है कि उन्होंने ही लड़कर स्वराज्य प्राप्त किया है। सत्याग्रह का अहिंसक आन्दोलन सब लोगों को स्पर्श करता है। महात्माजी का मार्ग सब लोगों की आत्मा को जाग्रत करने वाला है। वह सब को प्रेरणा देने वाला है।"

इस परिषद् में किसी ने पूछा—"क्या हमको अपनी जब्त वस्तुएँ फिर वापिस न मिलेंगी?" विनोबाजी गुस्सा होकर बोले—"और ऊपर से पूरणपोली का भोजन भी क्या नहीं मिलेगा? आप स्वतन्त्रता का क्या अर्थ समझते हैं? स्वतन्त्रता का अर्थ है अपार त्याग।"

सन् १९३२ के प्रारम्भ में फिर सत्याग्रह संग्राम शुरू हुआ। उस समय धूलिया में उनका जो भाषण हुआ, वह भाषण बड़ा ही ओजस्वी था। उन्होंने कहा—"स्वराज्य के लिये प्राण देने पड़ते हैं। हमें प्राण लेना नहीं, प्राण देना है। लाठी चार्ज के समय सिर ऊँचा किये हुए खड़े रहना है। स्वातन्त्र्य देवता के सामने अपना सिर चढ़ाना है और किसी भी हालत में अब गुलाम बनकर नहीं रहना है। अब हमने स्वतन्त्र रहने का निश्चय कर लिया है। हमने आज जिस झण्डे को फहराया है, उसे झुकने नहीं देना है। आज राष्ट्र हमसे त्याग की अपेक्षा कर रहा है। हमें उसे पूरा करना है।"

उसी दिन धूलिया की धर्मशाला में व्यापारियों के सामने उनका एक और भाषण हुआ। यह भाषण भी अपूर्व था। वे बोले—"व्यापारी भाइयो! देश में नई हवा बह रही है। आप दुनिया की हलचल को देखिये। रूस में जो कुछ हुआ उसपर विचार कीजिये। हम चाहते हैं कि हमारे देश में रक्तपात न हो, धनी और ग़रीब की लड़ाई न हो, लेकिन यदि सचमुच आप ऐसा ही चाहते हैं तो आपको त्याग करना

होगा। आज हमारे बीच में गांधीजी हैं और वे रक्तपात को रोक रहे हैं। हिंसा का मुकाबला कर रहे हैं। लेकिन यदि आपने उनकी बात नहीं सुनी तो क्रान्ति की लहर अवश्य आएगी। ग़रीबों को मिटाने का प्रयत्न मत कीजिये। भारतीय संस्कृति ने उनको सन्तोष का पाठ पढ़ा दिया है। लेकिन यदि इस सन्तोषप्रिय जनता को मिटाने का आपने प्रयत्न किया तो वह रौद्र रूप धारण करलेगी और मैं स्पष्ट रूप से कहरहा हूँ कि वह आपको ककड़ी की तरह चबा जायगी। अतः यदि आप चाहते हैं कि ऐसा न होने पाये और हमारे देश की समस्या अन्य देशों की अपेक्षा भिन्न प्रकार से हल होजाय तो महात्माजी की बात सुनिये। वे कितने वर्षों से कहते आरहे हैं कि विदेशी माल लेना बन्द कीजिये। स्वदेशी माल खरीदिये। खादी को अपनाइये। और मैं आपसे क्या कहूँ?" इतना कह कर उन्होंने तुकारामजी का एक अभङ्ग सुनाया। इस अभङ्ग का "सकलांचा पाय माझा दण्डवत" वाला चरण उन्होंने इतने करुणा-पूर्ण भाव से कहा कि सब की आँखों में आंसू आगये।

विनोबाजी धूलिया से जलगांव गये। यहां भी उनका भाषण होने वाला था लेकिन सभाओं पर सरकार ने पाबन्दी लगा रखी थी। अतः उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया और धूलिया जेल भेज दिया गया। धूलिया जेल सारे राष्ट्रीय कैदियों से भर गई। सारे सत्याग्रही वहीं आने लगे और वह एक राष्ट्रीय आश्रम बन गया। जेल में लगभग २००-२५० सत्याग्रही तथा नजरबन्द व्यक्ति थे। इनमें स्वर्गीय सेठ जमनालालजी बजाज, रामेश्वरजी, भाऊ पानसे, गोपालरावजी काले, द्वारकानाथजी, दत्तोबा और साने गुरुजी भी थे।

विनोबा को 'बी' क्लास दिया गया। 'बी' क्लास के कैदियों को साधारणतः अधिक सुविधा दी जाती है। उन्हें रसोई बनाने के लिये आदमी मिलता है, काम भी कम करना पड़ता है और दैनिक खर्च भी अधिक मिलता है। इस तरह उनके साथ साधारणतः अच्छा व्यवहार किया जाता है। विनोबा के अन्य बहुत से साथी कार्यकर्ताओं को 'सी' क्लास

दिया गया परन्तु यह भेद उन्हें पसन्द नहीं आया। दूसरे साथियों को जो सुविधाएँ प्राप्त नहीं थीं, उन सुविधाओं को प्राप्त करना विनोवाजी को कैसे पसन्द हो सकता था? उन्होंने 'बी' क्लास में रहने से इनकार कर दिया और अपने साथियों के साथ 'सी' क्लास में ही रहने लगे।

जेल में सबके लिए चक्की पीसने का नियम था। न बीमारों के साथ रिआयत की जाती थी न कमजोरों के साथ। अतः बच्चों, बूढ़ों और कमजोरों की सुविधा की दृष्टि से विनोवा ने जेलर से कहा—"आप जितना आटा पिसवाना आवश्यक समझते हों हमारे सुपुर्द कर दीजिये, हम उतना पीसकर आपको दे देंगे। आप प्रत्येक व्यक्ति से चक्की पिसवाने का आग्रह मत रखिये।" जेलर मान गया। स्वयंसेवक आगे आये और उन्होंने आटा पीसने का काम अपने ऊपर ले लिया। लेकिन एक दिन विनोवा के कान पर यह बात किसी तरह आई कि—"विनोवाजी को दूसरों से आटा पिसवाते क्या लगता है? वे स्वयं तो पीसते हैं नहीं।" विनोवा ने इस कथन की सचाई को बड़ी तीव्रता से अनुभव किया और उन्होंने प्रतिदिन २१ पौंड अनाज पीसने का निर्णय कर लिया। लोगों ने आग्रहपूर्वक मना किया, समझाया भी लेकिन वे अपने निश्चय पर दृढ़ रहे। उस समय उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। वज़न ९३ पौण्ड होगया था। फिर भी वे पीसते रहे। हाथ में छाले पड़ गये, कष्ट होने लगा लेकिन उन्होंने नियम भंग नहीं होने दिया। अन्त में जब स्व० सेठ जमनालालजी बजाज तथा गांधीजी के सेक्रेटरी प्यारेलालजी ने बहुत आग्रह किया तब कहीं उन्होंने चक्की पीसना छोड़ा।

एक दिन चक्कीघर में कार्यकर्ताओं का जेल के कर्मचारियों से झगड़ा हो गया। कार्यकर्ताओं को बुरा लगा। उन्होंने विरोध में उपवास करने का निश्चय किया। विनोवाजी ने भी सब के साथ उपवास किया। अन्त में सारे सत्याग्रहियों ने इस आश्वासन पर उपवास तोड़ दिया कि समस्या जल्दी ही हल कर दी जायगी। परन्तु विनोवा

ने उपवास नहीं तोड़ा। वे बोले—"मैं कभी उपवास नहीं करता हूँ। न कभी एकादशी करता हूँ न शिवरात्रि। विगत १२ वर्षों में मैंने कोई उपवास नहीं किया। अब किया है तो जब तक समस्या पूरी तरह हल नहीं हो जाती तब तक उपवास कैसे तोड़ दूं?" अन्त में जब उनको पूरा विश्वास हुआ तभी उन्होंने उपवास छोड़ा।

धूलिया जेल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है विनोबाजी के गीता पर दिये हुए प्रवचन। सब लोगों ने विनोबाजी से प्रार्थना की कि गीता पर प्रति रविवार को प्रवचन दिया करें। विनोबाजी ने इसे स्वीकार कर लिया। २१ फरवरी सन् १९३२ से यह कार्यक्रम प्रारंभ हुआ। गीता मानो विनोबाजी का प्राण ही है। उन्होंने कहा है—"गीता का और मेरा सम्बन्ध तर्क से परे है। मेरा शरीर माता के दूध पर जितना पला है उससे कहीं अधिक मेरा हृदय और बुद्धि दोनों गीता माता के दूध से पोषित हुए हैं। जहां ऐसा सम्बन्ध होता है वहां तर्क की गुंजाइश नहीं रहती। तर्क को काटकर श्रद्धा और प्रयोग के दोनों पंखों से मैं गीता गगन में शक्ति भर उड़ान मारता रहता हूँ। मैं प्राय: गीता के ही वातावरण में रहता हूँ। गीता मेरा प्राणतत्व ही समझिये। जब मैं गीता के सम्बन्ध में किसी से बातें करता हूँ तो मानो गीता के गहरे समुद्र में गोता मार कर बैठ जाता हूँ।"

गीता विनोबाजी के रोम रोम में समाई हुई है। प्रवचन देते हुए वे तन्मय हो जाते थे। जब वे नवें अध्याय पर प्रवचन देने खड़े हुए तो उनकी आँखों से अश्रु बहने लगे और वे पाँच मिनट तक कुछ भी बोल न सके। लगभग २००-२५० व्यक्ति प्रवचन सुनने एकत्र होते थे। सब मन्त्र मुग्ध होकर उनका प्रवचन सुनते रहे। पता नहीं पड़ा कि यह डेढ़ दो घन्टे कैसे व्यतीत हो गये! १९ जून सन् १९३२ को ये प्रवचन समाप्त हुए। वांई प्राज्ञ पाठशाला के तर्कतीर्थ लक्ष्मण शास्त्री भी इसी जेल में थे। उन्होंने एक दिन इन प्रवचनों के सम्बन्ध में साने गुरुजी से कहा था—"ऐसा प्रतीत होता है कि कभी कभी विनोबाजी स्वयं

स्फूर्त होकर बोलते हैं।" पीछे से ये प्रवचन जिन्हें साने गुरुजी ने उस समय लिख लिया था पुस्तकाकार प्रकाशित हुए और गीता प्रेमियों ने उनको बहुत पसन्द किया। उसकी कितनी ही आवृतियां मराठी में बिक चुकी हैं। हिन्दी में इसका अनुवाद सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है।

:: १४ ::

नालवाड़ी से परंधाम

"जब तक हम बड़े बने रहेंगे तब तक ईश्वर से दूर रहेंगे। भगवान् तो पीड़ित और पतित लोगों के पास है। अतः यदि हम भगवान् का काम करना चाहते हैं तो हमें "करि मस्तक ठंगना, लगे संताचा चरणा" के अनुसार अपना सिर इतना नीचा करना चाहिए कि वह सन्तों के चरणों से जा लगे।"

—विनोबा

जेल में रहते हुए विनोबाजी ने देश की स्थिति पर विचार किया था और यह अनुभव किया था कि भारतवर्ष ग्रामों का देश है। सच्चा भारत ग्रामों में ही है अतः देशोन्नति का कार्य ग्रामोन्नति के बिना नहीं हो सकेगा।

जेल से आते ही उन्होंने अपने विचारों के अनुसार काम शुरू कर दिया। वे ग्राम में रहने चले गये। वे वहाँ एक महीना रहे। लोग कहा करते थे कि इस ग्राम में जागृति पैदा करना कठिन है, लेकिन विनोबाजी के प्रयत्न से इस थोड़े से ही समय में बीस व्यक्तियों ने खादी पहिनना प्रारम्भ कर दिया और उत्साह का वातावरण बनगया। यदि उनको समय मिलता तो और अधिक काम यहाँ होता, लेकिन वर्धा

आश्रम में उन्हें बुलाया जारहा था और वहां की व्यवस्था ठीक करना आवश्यक था।

प्रारम्भ में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना मगनवाड़ी में हुई थी लेकिन एक डेढ़ वर्ष के बाद यह स्थान बदला गया और वह बजाजवाड़ी के पास सेठ जमनालालजी बजाज के एक बंगले में जो घास का बंगला कहलाता था आगया। सेठजी तथा आश्रमवासी सभी यह अनुभव कर रहे थे कि आश्रम के लिये एक अलग जगह खरीद कर वहां उसके लिए मकान बनाने चाहिए क्योंकि बनी बनाई इमारत में वे सारी आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं जो आश्रम जीवन के लिए आवश्यक होती हैं। इस विचार से नये रूप से आश्रम का निर्माण किया गया। इस नये आश्रम का निर्माण हुआ नालवाड़ी में। यहीं पर अपनी ग्राम सेवा की कल्पना को मूर्त रूप देने के लिए विनोबाजी ने एक ग्राम-सेवा मण्डल नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था के कार्यकर्ता ग्रामों में जाकर काम करने लगे।

लेकिन इस प्रकार आश्रम बनने तथा ग्राम-सेवा का कार्य प्रारम्भ होने में कुछ समय लगा। विनोबाजी को विवशता के कारण इन दिनों चुपचाप रहना पड़ा लेकिन उनके मन में ग्राम सेवा की छटपटाहट बनी रही। अपनी इस छटपटाहट को व्यक्त करते हुए एक स्थान पर उन्होंने कहा था—'कई बार मेरे मन में आया है कि मैं गांवों में घूमता फिरूं। जेल से छूटते समय भी यही विचार था। लेकिन परिस्थिति भिन्न है। मुझे उसका भी दुःख नहीं है। जो परिस्थिति प्राप्त होती है उसी में मेरे आनन्द का निवास होता है। मेरे पैरों को गति कब मिलेगी कह नहीं सकता लेकिन एक बार गति मिली तो वह ठहरेंगे, ऐसा भी नहीं दीखता।

इस प्रकार परिस्थितियों के कारण ग्राम सेवा का काम प्रारम्भ नहीं होसका लेकिन उसकी पृष्ठभूमि तैयार हो चुकी थी। विनोबाजी के दिमाग़ मे ग्राम-सेवा का पूरा चित्र था। उन्होंने अपनी कल्पना को

स्पष्ट करते हुए उन्हीं दिनों कहा था—"ग्रामों की स्वयंभू जनता महा-देव है। वह ग्रामों में ही रहेगी। अतः यदि हम उस महादेव के पूजक वनना चाहते हैं तो हमें ग्रामों के और उसके पास ही जाना होगा। ग्रामों में जाते समय हमारे मन में कोई हीनता का भाव नहीं आना चाहिए, और न उसमें कोई थकावट का ही अनुभव करना चाहिए। जिस प्रकार भक्त वड़ी खुशी से भगवान् के मन्दिर की प्रदिक्षरणा लगाता है उसी प्रकार हमें भी गांवों का चक्कर वड़ी खुशी के साथ लगाना चाहिए। जनता रूपी महादेव के पूजन में भक्त का उत्साह क्यों कम होना चाहिये ? जन सेवकों को १४ दिन तक ग्रामों में घूमना चाहिये और १५ वें दिन अपने प्रधान कार्यालय में उसकी जानकारी देनी चाहिए और फिर अपनी प्रदिक्षरणा में लग जाना चाहिये। भक्त जव प्रत्येक प्रदिक्षरणा में भगवान् की मूर्ति की ओर देखता है तव उसके हृदय में मूर्ति खिचती जाती है, हृदय पर जमती जाती है, उसका स्वरूप ध्यान में आता जाता है। स्वरूप ध्यान में आते ही यह समझ में आता है कि इस भगवान् की भक्ति का पथ क्या है, पूजा की सामग्री क्या है ? उस समय यदि मैं भक्त होऊँ तो देवता से एकरूप होजाता हूँ। मेरा हृदय देवता के हृदय में मिल जाता है। तभी देवता की कृपा होती है, उसका अनुग्रह होता है।

लोक-सेवा हमारी मूर्ति पूजा है। ५-२५ गाँवों का संग्रह हमारा महामन्दिर है। गांवों में क्या क्या है इसकी हम फेहरिस्त वना लें, मन पर भी, कागज पर भी। फेहरिस्त हम जनसेवकों को दें, वे देवता का स्वरूप समझ लें। जान लें कि वह दिगम्वर हो गया है, उससे धूल लिपट रही है, उसके सिरसे पानी वह रहा है। केवल वैल ही उसके पास सम्पत्ति के रूप में रहा है और वह जंगल में निवास कर रहा है। जन सेवक जान लें कि देवता का स्वरूप क्या है, चेहरा कैसा है, भाव कौनसे हैं, उसकी रुचि और अरुचि की वस्तुएँ कौनसी हैं, उसका नैवैद्य क्या हो गया है और उस पर कौनसे पुष्प

चढ़ते हैं। परिचय हुए विना पूजा न वनेगी। ऐसा न करने पर शिव पर तुलसी होगी और विष्णु पर वेलपत्र। देवपूजा में जल्दवाजी नहीं चलती। तुम्हें भले ही जल्दी हो पर भगवान को नहीं है। वह शान्ति का अवतार है। उस पर इकट्ठा घड़ा उँडेलने से काम नहीं चलेगा। उसे तो विन्दु की चाह है। एकदम उँडेलने की अपेक्षा सतत धार जारी रखने से ही वह प्रसन्न होता है।"

विनोवा की यह कल्पना कितनी उच्च और उदात्त है! वे किस भावना से इस काम को करना चाहते थे और उन्होंने इसका कितना मूल्य आँका था यह वात इससे स्पष्ट हो जाती है। नालवाड़ी हरिजनों की वस्ती थी। अतः जव वहां आश्रम वना तो हरिजनसेवा और ग्रामसेवा का केन्द्र ही उसे वनाना उपयुक्त भी था। इस आश्रम ने यह महान् कार्य इसी भावना से प्रारंभ कर दिया।

विनोवाजी की योजना के अनुसार कार्यकर्ता ग्रामों में जाते। वे लोगों में घुलते मिलते और वहां रचनात्मक प्रवृत्तियां प्रारंभ करते। कार्यकर्ताओं ने अपने अपने क्षेत्र निश्चित कर लिये थे। १४ दिन तक इन ग्रामों में घूमकर तथा रचनात्मक कार्य को गति देकर १५ वें दिन सारे कार्यकर्ता आश्रम में आ इकट्ठे होते और अपनी अपनी रिपोर्ट सुनाते। इससे वड़ा लाभ होता। कार्यकर्ताओं को अपनी कठिनाइयों का हल ढूंढने, दूसरों की सफलता से प्रेरणा लेने और क्रमिक रूप से अपने कार्य को वढ़ाते रहने का सुअवसर मिलता। अधिक उत्साह से इस काम में जुटने वालों में श्री तुकाराम ठाकुर, रामदास भाई तथा दिलीपकुमार प्रमुख थे। ग्रामसेवा का यह क्रम दो वर्ष तक अच्छी तरह चलता रहा। इसके वाद प्रत्येक कार्यकर्ता अपने लिए एक देहात चुन कर वहीं स्थायी रूप से रहने लगा। उन्होंने उन ग्रामों में अपने लिए आश्रम वना लिये और वहीं रहकर कार्य करने लगे। इस प्रकार के आश्रमों की संख्या ९-१० थी।

विनोवाजी ग्रामसेवा के इस कार्य को जिस लगन और तत्परता

से कर रहे थे उसका और अच्छा परिचय कराने के लिए यहां हम मीरा बहन के एक लेख का कुछ अंश उद्धृत कर रहे हैं जो सन् १९३३ के नवम्बर मास में हरिजन में प्रकाशित हुआ था:—

"सन् १९२१ में इस आश्रम की स्थापना हुई। साबरमती आश्रम को इसका जनक कहना चाहिए। आर्थिक आश्रय तो इसे देशभक्त सेठ जमनालालजी बजाज का प्राप्त है लेकिन इसके व्यवस्थापक तथा आध्यात्मिक पथ-प्रदर्शक हैं विनोबा भावे। विनोबाजी संस्कृत के अच्छे विद्वान हैं। वे अनुपम मेधावी और सहृदय हैं।

"स्थापना के बाद आठ वर्ष तक तो आश्रम का ध्यान अपनी आन्तरिक उन्नति की ओर रहा। लेकिन विनोबाजी ने सन् १९२९ में आसपास के ग्रामों से सम्पर्क स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की। ग्रामसेवा का कार्य प्रारम्भ हुआ और वह धीरे धीरे बढ़ चला। सन् १९३१ में एक जोरदार कार्यक्रम आरंभ किया गया। वह कार्यक्रम था ग्राम सुधार के लिए ग्रामों में घूमना और खास कर हरिजनों के लिए कुंए और मन्दिर खुलवाना। क़रीब दो लाख जनसंख्यावालीवर्धा तेहसील छः कार्यक्षेत्रों में विभक्त की गई। एक एक विभाग का काम एक एक आश्रमवासी को सौंपा गया। प्रत्येक कार्यकर्ता को अपने क्षेत्र के लगभग ५० ग्रामों के निरीक्षण का काम १५ दिन में पूरा करने का आदेश दिया गया। इसके बाद उन क्षेत्रों में सेवा केन्द्र स्थापित किये गये। इस प्रकार के कुल आज १७ केन्द्र वहां हैं। कुछ अनिवार्य कारणों से ६-७ केन्द्र अभी बन्द कर दिये गये हैं और १० केन्द्र चल रहे हैं। इनमें तीन तो मानो छोटे छोटे आश्रम ही हैं। उनकी अपनी झोंपड़ियां हैं। दूसरे सेवा केन्द्र कुछ दयालू ग्रामवासियों के घरों में स्थित हैं। दो स्थान पर तो इन नन्हे नन्हे आश्रमों के झोंपड़े सेवा-प्रेमी ग्रामवासियों ने अपने परिश्रम से खड़े कर दिये हैं। अधिकांश कार्यकर्ताओं को गाँव वाले अपने घरों में टिकाये हुए हैं और भोजन भी उन्हें मुफ़्त देते हैं।

"मुख्य ग्रामसेवा केन्द्र श्री विनोवाजी की देखरेख में चल रहा हैं। ग्राम संगठन के सारे कार्य यहीं से प्रारंभ होते हैं। वास्तव में वर्धा का सत्याग्रह आश्रम वहां से उठकर अब गांवों में चला गया है ....विनोवा का यह ग्रामसेवा केन्द्र यहां से सिर्फ़ एक मील दूर है। आश्रम की छत पर से हम इसे अच्छी तरह देख सकते हैं। अभी थोड़े दिन हुए एक दिन वड़े तड़के में वहां खेतों में होकर टहलती टहलती पहुँच गई। गांव के एक छोर पर मैंने उस छोटे से आश्रम को देखा। बांस से छाये हुए दो मामूली कच्चे झोंपड़े वहां वने हुए हैं। एक तो रहने के लिए हैं दूसरा रसोईघर तथा भण्डार का काम देता है। दोनों के वीच में खुला हुआ आंगन है। थोड़ी दूर एक कच्चा पाखाना है और वहीं नहाने धोने के लिए एक झोंपड़ा वना हुआ है। हर एक चीज़ मैंने वहां खूव साफ़ सुथरी पाई। विनोवाजी के साथ वहां सात कार्यकर्ता रहते हैं—चार भाई व तीन वहिनें। वे सव नियमपूर्वक आश्रम का जीवन विताते हैं। शाम सवेरे प्रार्थना करना, सूत कातना, भोजन वनाना, सफाई करना, कपड़े धोना, अध्ययन करना आदि सारा कार्यक्रम आश्रम की ही भांति चलता है। वडे सवेरे ये लोग ग्राम की गलियों में झाड़ू देने जाते हैं। इस काम में कुछ गांववाले भी इनका साथ देते हैं। तीसरे पहर गांव की वड़ी वड़ी वहिनें और लड़कियां विनोवाजी से गीता पढ़ने आती हैं। गीता संस्कृत में नहीं, उनकी मातृभाषा मराठी में हैं। गीता का यह सुन्दर समवृत मराठी पद्यानुवाद स्वयं विनोवाजी ने किया है। उसी को वे पढ़ाते हैं। सायंकालीन प्रार्थना में सम्मिलित होने के लिए तो अनेक ग्रामवासी भी वहां आते हैं।

"हम लोगों ने उस दिन वह गांव भी देखा। वड़ा ही स्वच्छ गांव था। वहां की जन संख्या लगभग ८०० थी। वहां ५ परिवारों को छोड़कर शेष सव हरिजन थे। ये ज्यादातर खेती का काम करते हैं और उन्हें दो आने से लेकर तीन आने तक प्रति दिन मजदूरी मिलती

है। भोजन बहुत सादा है। ज्वार की रोटी, दाल, नमक, मिर्च, थोड़ासा तेल और कभी तरकारी भी इन्हें नसीब हो जाती है लेकिन दूध घी तो शायद ही कभी इन्हें मिलता हो।

"नित्य के इस साधारण कार्यक्रम के अलावा ग्रामों में भ्रमण कार्य तो पूर्ववत् चल ही रहा है। अब तक हरिजनों के लिए इस तहसील में ३६ मन्दिर और २४५ कुए खुल चुके हैं और आश्रमवासियों के मौन सेवा कार्य से ग्रामवासियों का जो सुधार हुआ है वह अलग।"

इस लेख से उस समय के कार्य पर अच्छा प्रकाश पड़ जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जिस समय का यह चित्र है वह तो ग्रामसेवा के कार्य का प्रारम्भिक काल था। उसके बाद तो यह कार्य और भी आगे बढ़ा और सतत प्रगति होती रही है।

इन दिनों गांधीजी और विनोबाजी के बीच जो पत्र व्यवहार हुआ उससे वस्तु स्थिति और स्पष्ट हो जाती है। महादेवभाई ने अपनी डायरी में लिखा है:—

ता० १-१-३३ का विनोबा का हृदयस्पर्शी पत्र

पूज्य बापूजी की पवित्र सेवा में,

नालवाड़ी, वर्धा से डेढ़ मील दूर केवल हरिजनों की आबादी वाला गांव है। २५ तारीख से हरिस्मरण करके वहां रहने वाला हूं। वर्धा के आश्रम को स्थापित हुए अब १२ वर्ष होजायँगे। एक सत्र समाप्त हुआ। अनुभव अच्छा मिला। कर्तापन की भावना चली गई। ईश्वर ही है—ऐसी प्रतीति हो गई। इतने वर्ष मैं वर्धा में नहीं रहा, आप की आज्ञा में रहा हूं। इस दुनिया में आपके आशीर्वाद के बिना सब शून्य है। मैं यह कह सकता हूँ कि इन १२ वर्षों में व्रतों का पालन करने का मैंने सतत प्रयत्न किया है। फिर भी अपने में बहुत अपूर्णता पाता हूँ। ईश्वर के प्रति मेरी जितनी भक्ति है उससे कहीं अधिक ईश्वर की कृपा मैंने अपने ऊपर देखी है।

मैं जानता हूँ कि आपके आशीर्वाद से तो मैं पूरी तरह ओतप्रोत हूँ फिर भी उसी की याचना करने के लिए यह पत्र लिख रहा हूँ। अपने तुच्छ सेवक को संभाले रखिये। आपके महायज्ञ की आहुति बन जाने की पात्रता उसे ईश्वर से दिलाइये। भविष्य के लिये कोई सूचनाएँ देनी हों तो वे भी दीजिये। —विनोबा के दण्डवत प्रणाम

बापू ने भी इसके जवाब में वत्सलता के आँसुओं से भीगा हुआ पत्र भेजा

चि० विनोबा,

तुम्हारी श्रद्धा और भक्ति आंखों में हर्ष के आंसू लाती है। मैं इसके योग्य होऊं या न होऊं परन्तु तुम्हें तो यह फलेगा ही, तुम बड़ी सेवा के निमित्त बनोगे। नालवाड़ी चले गये यह ठीक ही है।

भविष्य की सूचना अभी तो इतनी ही है:—दूध के त्याग का आग्रह न रखते हुए शरीर की रक्षा करना। अभी स्वधर्म है अस्पृश्यता निवारणादि। मैं जो लिखता रहता हूँ उसे पढ़ने के लिए समय निकाल लेना। बहुत नहीं होता। मुझे पत्र लिखते रहना। सप्ताह में एक भी लिखो तो काफ़ी है। —बापू के आशीर्वाद

इस तरह विनोबा की कठोर साधना ने यदि बापू को जीत लिया तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ?

सन् १९३६ में विनोबाजी ने वर्धा जिले के रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं का सम्मेलन बुलाया। इस सम्मेलन का नाम रखा गया 'खादी यात्रा'। यह 'खादी यात्रा' सन् १९४१ तक होती रही। यात्रा किसी देहात में होता थी। वहाँ दो दिन तक समारंभ होता रहता था। सब कार्यकर्ता खादी, ग्रामोद्योग, गोसेवा तथा अन्य रचनात्मक कार्यों के बारे में अपने अनुभव और कठिनाइयां रखते। उनकी शंकाओं का समाधान किया जाता और सब लोगों को अपने अपने विचार व्यक्त करने तथा दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने का अवसर मिलता। इन दिनों कताई,

बुनाई, धुनाई आदि की प्रतियोगितायें भी होती थीं और एक अच्छी प्रदर्शिनी का आयोजन किया जाता था जिससे ग्रामीणों तथा कार्यकर्ताओं को बड़ा लाभ मिलता था। यह सम्मेलन बड़ा सफल रहता था।

ग्रामसेवा के कार्य को गति देने के लिये विनोबाजी इन दिनों जो कड़ा श्रम कर रहे थे उसका उनके स्वास्थ्य पर बड़ा असर हुआ। सन् १९३८ में स्वास्थ्य गिरने लगा। वजन कम हो गया और हालत प्रतिदिन बिगड़ने लगी। आश्रम के कार्यकर्ता चिन्तित हुए। गांधीजी को जब यह खबर मिली तो वे भी चिन्तित हुए। उन्होंने सोचा जब तक विनोबा यहां रहेंगे तब तक उन्हें विश्राम नहीं मिलेगा अतः उन्हें स्वास्थ्य सुधार के लिये बाहर भेजना चाहिए। विनोबा बाहर नहीं जाना चाहते थे लेकिन जब गांधीजी ने आज्ञा दी तो उन्होंने नालवाड़ी से चार मील दूर पवनार में रहना तय किया। वहां नदी के किनारे सेठ जमनालालजी का एक बंगला था। बंगले के पास ही धाम नदी पवनार नदी में मिलती है। वे यहीं आकर रहने लगे। वैसे तो धामनदी के उस पार होने के कारण इस आश्रम का नाम परंधाम रखा गया लेकिन यह विनोबाजी के चरणों का ही प्रताप था कि वह आश्रम सचमुच परंधाम बन गया। आश्रम का यह नाम रखते समय अपने को लोककल्याण की चिता में जीते जी भस्म कर देने वाले विनोबा ने मानो सन्त तुकाराम की इस वाणी को ही दुहरा दिया—"आपले मरण पाहिले मी डोला" अर्थात मैंने अपनी मौत अपनी आंखों से देख ली है।

:: १५ ::

रचनात्मक कार्यों में

"विनोबाजी रचनात्मक कार्य के महान पुरस्कर्ता हैं और दिन-रात उसी में लगे रहते हैं।"

—महादेव देसाई

इस समय देश में तेजी से जाग्रति हो रही थी। सभी विद्वान विचारक और नेता अब यह अनुभव कर चुके थे कि राजनैतिक दासता ही सारी बुराइयों का मूल है अतः उसी के मूल पर कुठाराघात करना हमारा पहला काम होना चाहिए। इस विचार के कारण सब लोगों का ध्यान 'आजादी' की ओर लगा हुआ था। लेकिन आजादी को प्राप्त करने के सम्बन्ध में दो विचार धाराएँ प्रचलित थीं। एक दल का कहना यह था कि पार्लियामेन्टरी कार्यक्रम के द्वारा आजादी के निकट जल्दी पहुँचा जा सकता है। वह धारा सभा में जाकर सरकार की आलोचना करने और वहां जनता को लाभ पहुँचाने वाले क़ानून बनाने में समस्या का हल देखता था। दूसरे दल का यह विचार था कि रचनात्मक कार्य के द्वारा ही पूर्ण स्वराज्य प्राप्त किया जा सकता है। पहली विचार धारा के समर्थक थे पंडित मोतीलाल नेहरू तथा देशबन्धु दास और दूसरी विचार धारा के समर्थक थे गांधीजी, राजाजी और राजेन्द्र बाबू।

पार्लियामेन्टरी कार्यक्रम में विनोबाजी की रुचि बिलकुल नहीं है। उनके लिए रचनात्मक कार्यक्रम केवल स्वराज्य प्राप्त करने का ही नहीं, आत्मोन्नति का भी साधन है। वह उनका स्वधर्म है। रचनात्मक कार्यक्रम में क़ौमी एकता का पहला स्थान है। उसका अर्थ यह है कि हिन्दू मुसलमान, ईसाई, पारसी, तथा बंगाली, गुजराती, मद्रासी आदि भेदों से दूर रहकर सबके साथ अपनेपन का—आत्मीयता का अनुभव किया

जाय। सवके साथ मित्रता का सम्वन्ध स्थापित करके दूसरे धर्मों का उतना ही आदर किया जाय जितना अपने धर्म का। विनोवाजी इस दिशा में काफ़ी आगे गये। वे हिन्दू मुसलमान ही नहीं, प्राणी मात्रमें एक आत्मा का दर्शन करते हैं। उनके लिए कोई पराया नहीं है। इस्लाम धर्म को समझने के लिए उन्होंने मूल अरवी भाषा में क़ुरान पढ़ा है और उसके वहुत से अंश उन्हें कण्ठस्थ हैं। एक वार विनोवाजी गांधीजी से मिलने सेवाग्राम गये। उस समय गांधीजी के पास मौलाना अवुल कलाम आज़ाद वैठे थे। वे गांधीजी से किसी विषय पर चर्चा कर रहे थे। जव चर्चा समाप्त हुई तो गांधीजी ने विनोवाजी से कहा कि वे क़ुरान शरीफ़ का कोई अध्याय सुनावें। विनोवाजी ने एक अध्याय सुनाया। विनोवाजी के शुद्ध उच्चारणों को देखकर मौलाना साहव चकित रह गये। वोले—"इसमें एक भी अशुद्धि नहीं है। मैं तो चकित हूँ।" यह घटना व्यक्तिगत सत्याग्रह के कुछ पहले की है।

विनोवाजी के मन में सभी धर्मों के प्रति वड़ा आदर है। जव वे किसी धर्म के वारे में कोई कुशंका सुनते हैं तो क्षुव्व हो जाते हैं। एक वार धूलिया जेल में किसी ने उनसे पूछा—"पैग़म्वर साहव ने कई शादियाँ की थीं। इसका क्या कारण था?" विनोवाजी का गंभीर चेहरा क्षण भर के लिए लाल होगया। लेकिन दूसरे ही क्षण वे शान्त होकर वोले—"जव मेरी आँखों के सामने पैग़म्वर का जीवन आता है तो मेरी समाधि लग जाती है। कार्लाइल और गिवन जैसे वड़े वड़े विद्वानों ने पैगम्वर मुहम्मद साहव की प्रशंसा की है, उनके प्रति श्रद्धा व्यक्त की है। क्या इन विद्वानों को किसी ने रिश्वत दी थी? पैग़म्वर साहव ने अनेक शादियाँ अवश्य की थीं लेकिन भोग के लिए नहीं। कुछ शादियाँ उन्होंने भिन्न २ जातियों में एकता स्थापित करने के लिए की थीं, और कुछ शादियाँ धर्म के नाम पर वलिदान होने वाले शहीदों की पत्नियों से की थीं। उनसे विवाह करके ही वे उनके रक्षण-पोषण की व्यवस्था कर सकते थे। यदि वे भोग-विलास के कीड़े होते तो आज

१३०० वर्षों तक करोड़ों लोगों के हृदय में कैसे रहते ?

"क्या मुसलमान होने से ही वे बुरे होगये ? यदि ईश्वर ने मुसलमानों को बुरा ही पैदा किया होता तो उनकी एक कोड़ी की भी कीमत न रहती। आप मुसलमानों में जाते नहीं है, उनके साथ घुल मिलकर रहते नहीं हैं, उनसे मित्रता स्थापित करने का प्रयत्न नहीं करते हैं क्या यह सब अच्छा हैं ? मुसलमान भी अच्छे हैं। पहिले महायुद्ध के समय यदि कैदियों के साथ किसी ने अच्छा व्यवहार किया तो तुर्किस्तान ने। यह बात सारे यूरोप ने स्वीकार की थी और इसके लिए उसकी प्रशंसा की थी।

एक और प्रश्न पूछा गया—"क्या उनके क़ुरान में यह नहीं लिखा है कि स्वर्ग में सुन्दर अप्सराएँ मिलेंगी, अमृत मिलेगा ?" विनोबाजी ने उत्तर दिया—"क्या तुम्हारा भी स्वर्ग ऐसा नहीं है ? वहां अप्सराएँ और अमृत तुमने नहीं रखे हैं ? यह स्वर्ग नर्क तो साधारण आदमी के लिये हैं। सुख का लोभ या सजा का भय दिखाकर उन्हें नीति मार्ग पर रखना पड़ता है। लेकिन इस प्रकार का वर्णन धर्म का सार नहीं है।"

अन्त में पूछागया—"क्या क़ुरान में यह नहीं लिखा है कि जो शत्रु हों उन्हें तुरन्त क़त्ल कर देना चाहिए।" विनोबा बोले—क़ुरान में ऐसे वाक्य हैं, लेकिन ये वाक्य दुवारा धोखा देकर फँसाने वाले ज्यू लोगों को उद्देश्य करके लिखे गये हैं। ज्यू मुहम्मद साहब के शत्रु थे। वे मक्का से मदीने पर चढ़ आये थे। इधर मदीना के ज्यू लोगों ने शत्रुओं से मिल कर अन्दर ही अन्दर षड्यन्त्र रचा। ऐसे समय क्या किया जाता ? आज के राष्ट्र ऐसे अवसर पर क्या करेंगे ? मुहम्मद साहब केवल धर्म संस्थापक ही तो नही थे, उन्हें तो राज्य का भी कारबार चलाना पड़ता था। अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने क्षमा को ही प्रधानता दी थी। क़ुरान के कुछ वाक्य तत्कालीन परिस्थिति से सम्बन्ध रखते हैं। क्या हम यह नहीं कहते कि हमारे शत्रु का नाश होना चाहिये ? क्या हमारे वेदों में भी इस आशय के मन्त्र नहीं हैं कि 'जो हमसे द्वेष करें, हम

जिससे द्वेष करें, हे ईश्वर उनका खात्मा कर।' लेकिन यह धर्म का प्राण नहीं है।" विनोबाजी के ये विचार उनकी सर्वधर्म समानत्व की भावना को पूरी तरह व्यक्त करते हैं। यदि उनके मनमें कहीं शङ्का होती तो वे इतना परिश्रम करके क़ुरान नहीं पढ़ते। इसी तरह जैन, बौद्ध तथा ईसाई धर्म के ग्रन्थों का भी उन्होंने अध्ययन किया हैं और उनमें उनकी श्रद्धा है।

रचनात्मक कार्य का दूसरा अंग हैं अस्पृष्यता निवारण। अस्पृष्यता हिन्दू समाज का कलंक है। इस कलंक को मिटाने के लिए उन दिनों गांधीजी ने उपवास किया था। परिणाम स्वरूप सारे देश में हलचल मची थी और इस दिशा में कार्य भी प्रारंभ हुआ था लेकिन बहुत से कांग्रेसजन फिर भी उसे एक राजनैतिक आवश्यकता ही समझते थे। लेकिन विनोबाजी तो अस्पृष्यता को हिन्दू जाति का अस्तित्व मिटा देने वाली बात मानते हैं। उनके लिए अस्पृष्यता निवारण एक व्रत है और उसे उन्होंने अपने एकादशव्रत में स्थान दिया है जिसका पालन वे अपने लिए तो अनिवार्य मानते ही हैं प्रत्येक आश्रमवासी के लिए भी मानते हैं। अब तो वे 'सर्वोदय' शब्द की व्याख्या 'अन्त्योदय' कह कर करना ज़्यादा पसन्द करते हैं। अस्पृष्यता निवारण के लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी यह है कि जिस पाखाना साफ़ करने के काम को लेकर समाज में अस्पृष्यों का स्थान इतना नीचा होगया है, उस काम को स्वयं करना प्रारम्भ किया जाय ताकि उसके प्रति घृणा की भावना कम हो एवं अस्पृष्यों का काम सरल हो जाय। पाखाना सफाई की दिशा में विनोबाजी ने जो कुछ किया है वह पिछले अध्यायों में आचुका है। आश्रम में मेहतर नहीं रखा जाता है और पाखाना सफ़ाई आश्रमवासी ही करते हैं। इतना ही नहीं विनोबाजी ने इस काम को भी सरल और सुन्दर बना दिया है। परंधाम जाने के बाद वे कितने ही दिनों तक प्रतिदिन प्रातः काल सुरगाँव जाते रहे। वहां जहां भी ग्राम के आस-पास मैला दिखाई देता उसे उठाकर वे गड्ढे में डालते और उसे मिट्टी

से ढक देते थे। विनोबाजी अद्वैतवादी हैं। वे अस्पृश्यों में भी उसी ईश्वर का दर्शन करते हैं। अस्पृश्य पिछड़े हुए हैं उनकी स्थिति ठीक करना वे अपना परम कर्तव्य समझते हैं। वे कहते हैं कि अस्पृश्यता को मिटाने के लिए हम लोगों को अपने परिवार में एक हरिजन रखना चाहिए। उन्होंने अपने साथ एक हरिजन बालक को कितने ही दिनों तक रखा।

रचनात्मक कार्यो में तीसरा स्थान है खादी का। गांधीजी खादी को हिन्दुस्तान की समस्त जनता की एकता का तथा आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का प्रतीक कहते थे। नेहरूजी उसे आज़ादी की पोशाक कहते हैं। खादी के पीछे जीवन की आवश्यक चीज़ों की उत्पत्ति और उनके बँटवारे के विकेन्द्रीकरण की भावना छिपी हुई है। जिसका अर्थ यह है कि प्रत्येक ग्राम अपनी आवश्यकता की सब चीजें स्वयं पैदा करे और स्वावलम्बी बने। विनोबाजी ने इस दिशा में जितना काम किया है उतना किसी ने नहीं किया। तकली कातने में तो उन्होंने पूर्णता प्राप्त कर ली है। जब वे कातने बैठते हैं तो हाथ बड़ी कुशलता से कताई करते रहते हैं और वे आंखें बन्द करके जैसे समाधि में मग्न हो जाते हैं। 'चित्तीं नाम हाथीं काम' (चित्त में नाम और हाथ में काम) वाली बात विनोबा पर पूरी चरितार्थ होती हुई दिखाई देती है। कताई में वे थोड़ा सा भी धागा व्यर्थ नहीं जाने देते। उनके लिए टूटे हुए तार को फेंकना मानों ईश्वरोपासना की सामग्री का अपमान करना है। वे न तो पूनी में ज़रा सा भी कचरा होना पसन्द करते हैं, न तार का टूटना।

कताई के सम्बन्ध में जितने प्रयोग विनोबाजी ने किये हैं, उतने और किसी ने नहीं किये। उन्होंने इसे एक शास्त्र का रूप दिया है। छः मास तक उन्होंने लगातार आठ घण्टे कताई की। इतना ही नहीं, उससे जो कुछ मिलता उतने में ही निर्वाह करने का नियम बनाया। यह बड़ी कठिन तपस्या थी। आश्रम में हलचल मचगई। गांधीजी भी चिन्तित हुए। उन्होंने लिखा कि आप काफ़ी कमजोर हैं अतः आपको

इतना कड़ा नियम बनाने की आवश्यकता नहीं है। लेकिन विनोबाजी ने उत्तर दिया—"आप चिन्ता न कीजिये। जिस प्रकार भगवान् ने कबीर को करघे पर मदद की उसी प्रकार वह मेरी भी मदद करेगा।" यह है उनकी ज़बरदस्त श्रद्धा का नमूना ।

विनोबाजी ने सन् १९३७ में कताई को व्यापक बनाने के लिये तुनाई का प्रयोग प्रारम्भ किया। यह प्रयोग काफ़ी सफल रहा। चर्खा सङ्घ और तालीमी सङ्घ ने उसे अपना लिया। आगे इस तुनाई में से धुनाई की क्रिया निकाली गई। गाँवों में कताई को व्यापक बनाने के लिये उन्होंने स्वयं धुनकर कातने वालों से नैवेद्य के रूप में प्रति दिन एक तोला पूनी लेने का काम प्रारम्भ किया। इस प्रकार इकट्ठी होने वाली पूनी ग्रामों के कातने वालों को दी जाती थी। फिर इस नैवेद्य को 'अभिज्ञा' का रूप दिया गया। इसके बाद जब तुनाई की सरल पद्धति निकाल लीगई तब अभिज्ञा की आवश्यकता नहीं रही।

गाँवों में विनोबाजी की जितनी दिलचस्पी है वह पिछले अध्याय में बताई जाचुकी है। वे मानते हैं कि अपनी सभी आवश्यकता की वस्तुएँ गाँवों में पैदा होनी चाहिए ताकि वे स्वावलम्बी बन सकें। इस दिशा में उन्होंने जो कुछ किया उसे दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

बुनियादी तालीम का रचनात्मक कार्यों में महत्वपूर्ण स्थान है। इस तालीम का उद्देश्य यह है कि गाँव के बच्चों को सँवार कर उन्हें ग्राम के आदर्श नागरिक बनाया जाय। बच्चे किसी भी राष्ट्र की अमूल्य सम्पत्ति होते हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जासकती। विदेशी शिक्षा भारतीय युवकों में अनेक बुराइयाँ पैदा करती हैं, अतः उसको बदले बिना काम नहीं चल सकता। बुनियादी तालीम बच्चों को देश के श्रेष्ठ तत्वों से जोड़ती है। वह बालक के तन और मन दोनों का विकास करती है।

विनोबाजी गुजरात विद्यापीठ में अध्यापन का कार्य कर चुके थे और गहरा अध्ययन तो उनके पास था ही, अतः उन्होंने गाँधीजी की

बुनियादी तालीम की कल्पना को मूर्त रूप देने में काफ़ी सहायता दी। स्वयं गांधीजी ने लिखा था—"स्वभाव से ही शिक्षक होने के कारण उन्होंने श्रीमती आशादेवी को दस्तकारी के द्वारा बुनियादी तालीम की योजना का विकास करने में बहुत योग दिया है।" विनोबाजी ने कताई को बुनियादी दस्तकारी मानकर 'मूल उद्योग कताई' नामक ऐसी मौलिक पुस्तक लिखी है जो बुनियादी तालीम में बड़ी महत्वपूर्ण मानी जाती है। गांधीजी ने भी इस पुस्तक की प्रशंसा की है और लिखा है कि इस पुस्तक के द्वारा उन्होंने हँसी उड़ाने वालों को यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है जिसका उपयोग बुनियादी तालीम में बखूबी किया जा सकता है।" यह कल्पना की जासकती है कि इतना बड़ा कार्य करने में विनोबाजी को कितना श्रम करना पड़ा होगा !

विनोबाजी आजन्म ब्रह्मचारी हैं। लेकिन वे उन ब्रह्मचारियों में से नहीं हैं जो स्त्री का नाम सुनते ही भागते हैं या नफ़रत से भर जाते हैं। उनके मनमें मातृ जाति के लिए बड़ा आदर है। वे स्त्रियों की पिछड़ी हुई स्थिति को देश के लिए अहितकर समझते हैं। अतः उनकी उन्नति का जब कभी अवसर आता है, वे अवश्य योग देते हैं। वे स्त्रियों को पुरुषों के केवल बराबर ही नहीं मानते बल्कि यह भी मानते हैं कि कोमल गुणों की अधिकता के कारण स्त्रियों पर अहिंसा के विकास की अधिक जुम्मेदारी है। वे कहते हैं कि स्त्री और पुरुष में एक ही आत्मा है। शारीरिक बनावट में कुछ भेद अवश्य है, अतः इस थोड़े से भेद पर बहुत ज़्यादा ज़ोर नहीं देना चाहिए। यदि स्त्रियों और पुरुषों के काम को अलग अलग बना दिया गया तो समाज के टुकड़े टुकड़े हो जायँगे और उसका एक अंग बोझ रूप बन जायगा।

जब साबरमती आश्रम की बालिकायें वर्धा बुला लीं गई और वर्धा में महिलाश्रम की स्थापना हुई तो विनोबाजी उसके काम में भी मदद करने लगे। कुछ समय बाद गांधीजी ने महिलाश्रम की व्यवस्था

का काम संभालने के लिए विनोबाजी से कहा। विनोबाजी ने बिना हिचकिचाहट के इसे स्वीकार कर लिया और बहुत दिनों तक इस स्थान पर काम करते रहे। इस समय महिलाश्रम की जो उन्नति हुई वह महिलाश्रम से सम्बन्ध रखने वाला प्रत्येक व्यक्ति जानता है।

. प्रान्तीय और राष्ट्र भाषा का भी रचनात्मक कार्य में महत्वपूर्ण स्थान है। जिस दिन उन्होंने यह अनुभव किया कि उन्हें प्रान्तीय भाषाएँ सीखनी हैं, उसी दिन एक पत्रक बनाया कि वे किस समय कौनसी भाषा का अध्ययन करेंगे। बस उसके अनुसार वे कार्य करते गये और कुछ वर्षों में ही उन्होंने गुजराती, बंगला, उड़िया, तेलगू, कनाड़ी, मलायलम आदि भाषाएँ सीखलीं। इतना ही नहीं उन्होंने, उर्दू, अरबी, फ्रेंच और लेटिन भी सीखी। राष्ट्र भाषा के रूप में हिन्दी की शिक्षा का प्रसार का काम वे बहुत पहिले से ही करने लगे थे। जब वे एक वर्ष की छुट्टी लेकर साबरमती आश्रम से गये थे तब उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा था कि राष्ट्र भाषा के प्रचार के लिये वे क्या कर रहे हैं। इस प्रकार भाषाओं के अध्ययन और प्रचार के काम में भी वे हमें बहुत आगे दिखाई देते हैं।

आर्थिक समानता ही अहिंसक स्वराज्य की चाबी है। उसे क़ायम करने के लिए पूंजी और मजदूरी के बीच के झगड़े को हमेशा के लिये मिटाना होगा और दोनों को एक समान धरातल पर लाना होगा। विनोबाजी इस कार्य को बड़ा महत्वपूर्ण मानते हैं। विनोबाजी ने अपना जीवन अधिक से अधिक सादा बनाकर इस दिशा में काम करना प्रारम्भ कर दिया था। उनके ग्रामों में काम करने से इस कार्य को भी गति मिली और आगे चलकर काञ्चनमुक्ति और भूदान के जो कार्य उन्होंने प्रारम्भ किये उनमें यही विचार समाया हुआ है। भूदान और काञ्चनमुक्ति पर आगे के अध्यायों में विस्तारपूर्वक विचार किया जायगा।

कुष्ट सेवा का कार्य सेवा की दृष्टि से बड़ा ही पवित्र और उच्च कोटि का है। इसमें निष्काम सेवा भरी हुई है। कोढ़ी भी मनुष्य हैं।

समाज में उनका भी वही स्थान है जो किसी अन्य व्यक्ति का हो सकता है। लेकिन इस रोग के कारण वे समाज की उपेक्षा के पात्र बन गये हैं। उनकी उपेक्षा हृदय-हीनता ही है। विनोवाजी को यह कार्य बहुत पसन्द है। अपनी 'रचनात्मक कार्यक्रम' नामक पुस्तक में गांधीजी ने लिखा है:—"कोढ़ियों की सार-संभाल के लिए हिन्दुस्तान की ओर से चलने वाली एक मात्र संस्था वर्धा के पास काम कर रही है और मनोहर दीवाण उसे प्रेमपूर्ण सेवा के भाव से चला रहे हैं। इस संस्था को श्री विनोवा भावे की प्रेरणा और रहनुमाई प्राप्त है।" श्री मनोहर दीवाण को इस कार्य के लिए अपना जीवन देने और इसमें जुट जाने के लिए विनोवाजी ने ही तैयार किया था।

विद्यार्थी देश के भावी नागरिक हैं अतः राष्ट्र की बहुत बड़ी जुम्मेदारी उनके कन्धों पर है। बुनियादी तालीम के द्वारा उन्होंने विद्यार्थियों को शिक्षा की सही दिशा दिखाई है। फिर भी जब जब विद्यार्थियों के लिए कुछ करने का अवसर आया, विनोवाजी ने उसकी उपेक्षा नहीं की। वे विद्यार्थियों को साधक और सत्यपोषक कहते हैं और उन्हें राय देते हैं कि वे संयमी और तेजस्वी वनें। विद्यार्थियों के लिए उनके मन में बड़ा प्रेम है। एक शिक्षक के रुपमें उन्होंने सदैव विद्यार्थियों को सही मार्ग दिखाया है—केवल वातों से नहीं अपने कार्यों से भी।

इस प्रकार विनोवा से रचनात्मक कार्य का कोई अङ्ग नहीं छूटा है। अपने अविरतश्रम और महान त्याग से उन्होंने इस कठिन कार्य को भी सरलसा बना दिया है। आज वे ही रचनात्मक कार्यों के प्रकाश-स्तंभ हैं, इसमें कौन शक करेगा ?

:: १६ ::

व्यक्तिगत सत्याग्रह और उसके बाद

"आज से १३ वर्ष पहिले भारत में अंग्रेज़ों के युद्ध प्रयत्न के खिलाफ व्यक्तिगत सत्याग्रह का आरम्भ करने के लिए गांधीजी ने सबसे प्रथम सत्याग्रही के रूप में विनोबा को चुना था। वह कोई संयोग की बात नहीं थी। उस समय विनोबा बहुत कम प्रकाश में आये थे। लेकिन बापू ने अपनी अचूक अन्तर्दृष्टि से विनोबा को सत्याग्रह का आरम्भ करने के लिए चुना।" —आचार्य कृपलानी

सन् १९३९ में दूसरा महायुद्ध प्रारम्भ हुआ। शीघ्र ही उसकी लपटें दुनियां के दूसरे देशों में फैली और वे अधिकाधिक भयंकर और व्यापक बनती गईं। इंग्लैण्ड के लिए तो यह जीवन मरण का प्रश्न था अतः उसने भारत को भी उसमें ज़बरदस्ती घसीटने का प्रयत्न किया। इस समय अधिकांश प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें ही काम कर रही थीं। कांग्रेस का मत था कि युद्ध में सम्मिलित होना किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। लेकिन सरकार को इसकी कहां चिन्ता थी? उसने काफ़ी ज़ोर दिया अतः विरोध स्वरूप सभी प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिये।

अब चुपचाप बैठने से तो कोई लाभ नहीं था। अतः कांग्रेस ने सरकार से यह मांग की कि—"हिन्दुस्तान को अहिंसात्मक तरीके से खुले आम अपनी युद्ध विरोध नीति का प्रचार करने की स्वतन्त्रता है और सरकारी युद्ध प्रयत्नों से असहयोग करने के लिए वह स्वतन्त्र है"—यदि सरकार इस बात की घोषणा ही कर दे तो हम सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारंभ नहीं करेंगे। सरकार ने इस मांग को ठुकरा दिया। अतः अब कोई क़दम उठाना आवश्यक हो गया।

भाषण-स्वातन्त्र्य तो नाममात्र को भी नहीं था। जिन लोगों ने रामगढ़ कांग्रेस (१९४०) के युद्ध सम्बन्धी प्रस्ताव का ही जनता में प्रचार करने का प्रयत्न किया उनके ऊपर भी मुकद्दमे चलाये गये। अतः गाँधीजी ने कहा—"अब हम चुप नहीं बैठ सकते। जब भाषण-स्वातन्त्र्य के लिये हमारे लोग लगातार जेल में जारहे हों तब चुपचाप बैठे रहना सत्याग्रह नहीं है। यदि हम चुपचाप बैठे रहेंगे तो कांग्रेस नष्ट होजायगी और उसके साथ राष्ट्र की हिम्मत भी समाप्त हो जायगी।"

अब सत्याग्रह शुरू करना अनिवार्य होगया। सारी स्थिति पर विचार करके इस समय व्यक्तिगत सत्याग्रह प्रारम्भ करना उचित समझा गया। गांधीजी को ही सत्याग्रह का संचालन करना था। अतः उन्होंने यह निश्चित किया कि इस बार ऐसे ही लोगों को सत्याग्रह करने की इजाजत दी जाय जो रचनात्मक कार्यों में पूरा विश्वास रखने वाले, निष्ठावान तथा सच्चरित्र हों। वे संख्या बल की अपेक्षा गुणों पर ज्यादा जोर देना चाहते थे।

सत्याग्रह-संग्राम की पूरी योजना तैयार कर लेने के बाद गांधीजी के मन में यह प्रश्न उठा कि पहला सत्याग्रही किस व्यक्ति को चुना जाय ? विनोबाजी के अतिरिक्त ऐसा और कौन हो सकता था ? अतः उन्होंने विनोबाजी को बुलाया और सब बातें उनके सामने रखीं। विनोबाजी ने प्रथम सत्याग्रही बनना स्वीकार कर लिया। यह निश्चय हुआ कि विनोबाजी १७ अक्टूबर को पवनार में युद्ध विरोधी भाषण देकर सत्याग्रह शुरू करेंगे। विनोबाजी ने उस दिन युद्ध-विरोधी भाषण देकर सत्याग्रह प्रारम्भ किया। सरकार ने उन्हें गिरफ्तार नहीं किया। वे प्रति दिन भाषण देते रहे। आखिर चौथे दिन गिरफ्तारी हुई। मुकदमा चला और उन्हें तीन महीने की सजा मिली। विनोबाजी के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू ने सत्याग्रह किया और फिर तो अन्य अनेक व्यक्तियों ने सत्याग्रह करना प्रारंभ कर दिया।

अखबारों के लिए विनोबाजी का नाम नया था। विनोबाजी ने कभी

लोगों की दृष्टि में आने का प्रयत्न ही नहीं किया था। उनका तो सूत्र था—"आंच लगने से जब तक धुआं ही धुआं निकलता है तब तक दुनिया के सामने मत खड़े रहो। आंच बढ़ने पर जब धुंए की ज्वाला बन जायगी तब दुनिया स्वयं उसे देख लेगी।" लेकिन जो स्थान गांधीजी ने देश के किसी बड़े से बड़े नेता को नहीं दिया उसी को विनोबाजी को देते देखकर लोगों के मन में उनके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने की इच्छा पैदा हुई। अनेक व्यक्तियों ने गांधीजी को पत्र लिखे। अतः गांधीजी ने हरिजन सेवक में उनका परिचय देते हुए लिखा—"श्री विनोबा भावे कौन हैं? मैंने उन्हें सत्याग्रह के लिए क्यों चुना? और किसी को क्यों नहीं? मेरे हिन्दुस्तान लौटने पर उन्होंने कालेज छोड़ा था। वे संस्कृत के पंडित हैं। उन्होंने आश्रम में शुरू से ही प्रवेश किया था। आश्रम के सबसे पहले सदस्यों में से वे एक हैं। अपने संस्कृत के अध्ययन को आगे बढ़ाने के लिए वे एक वर्ष की छुट्टी लेकर चले गये। एक वर्ष के बाद ठीक उसी घड़ी जबकि एक वर्ष पूर्व उन्होंने आश्रम छोड़ा था, चुपचाप आश्रम में फिर पहुँच गये। मैं तो भूल ही गया था कि उस दिन उन्हें आश्रम में पहुँचना था। आश्रम में सब प्रकार की सेवा प्रवृत्तियों—रसोई से लगाकर पाखाना सफाई तक में वे हिस्सा ले चुके हैं। उनकी स्मरणशक्ति आश्चर्यजनक है। वे स्वभाव से ही अध्ययनशील हैं। पर अपने समय का ज़्यादा से ज़्यादा हिस्सा वे कातने में ही लगाते हैं और उसमें ऐसे निष्णात होगये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलना में रखे जा सकते हैं। उनका विश्वास है कि व्यापक कताई को सारे कार्यक्रम का केन्द्र बनाने से ही गांवों की ग़रीबी दूर हो सकती है। स्वभाव से ही शिक्षक होने के कारण उन्होंने श्रीमती आशादेवी को दस्तकारी के द्वारा बुनियादी तालीम की योजना का विकास करने में बहुत योग दिया है। श्री विनोबा ने कताई को बुनियादी दस्तकारी मानकर एक पुस्तक भी लिखी है। यह बिलकुल मौलिक चीज़ है। उन्होंने हंसी उड़ानेवालों को भी यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई

एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है जिसका उपयोग बुनियादी तालीम में बखूबी किया जा सकता है। तकली कातने में तो उन्होंने क्रान्ति ही ला दी है और उसके अन्दर छिपी हुई तमाम शक्तियों को खोज निकाला है हिन्दुस्तान में हाथकताई में इतनी सम्पूर्णता किसी ने प्राप्त नहीं की जितनी उन्होंने की है।

"उनके हृदय में छुआछूत की गन्ध तक नहीं है। साम्प्रदायिक एकता में उनका उतना ही विश्वास है जितना कि मेरा। इस्लाम धर्म की खूबियों को समझने के लिए उन्होंने एक वर्ष तक क़ुरान शरीफ़ का मूल अरबी में अध्ययन किया इसके लिए उन्होंने अरबी भी सीखी। अपने पड़ौसी मुसलमान भाई से अपना सजीव सम्पर्क बनाये रखने के लिए उन्होंने इसे आवश्यक समझा।

"उनके पास उनके शिष्यों और कार्यकर्ताओं का एक ऐसा दल है जो उनके इशारे पर हर तरह का बलिदान करने के लिए तैयार है। एक युवक ने अपना जीवन कोढ़ियों की सेवा में लगा दिया है। उसे इस काम के लिए तैयार करने का श्रेय श्री विनोबा को ही है। औषधियों का कुछ भी ज्ञान न होने पर भी अपने कार्य में अटल श्रद्धा होने के कारण उसने कुष्ठ रोग की चिकित्सा को पूरी तरह समझ लिया है। उसने उनकी सेवा के लिए कई चिकित्साघर खुलवा दिये हैं। उनके परिश्रम से सैंकड़ों कोढ़ी अच्छे हो गये हैं। हाल ही में उसने कुष्ठ रोगियों के इलाज के संबन्ध में एक पुस्तिका मराठी में लिखी है।

"विनोबा कई वर्षों तक वर्धा के महिलाश्रम के संचालक भी रहे हैं। दरिद्रनारायण की सेवा का प्रेम उन्हें वर्धा के पास के एक ग्राम में खींच ले गया। अब तो वे वर्धा से ५ मील दूर पौनार नामक गांव में जा बसे हैं और वहां से उन्होंने अपने तैयार किये हुए शिष्यों के द्वारा गांववालों के साथ संपर्क स्थापित कर लिया है। वे मानते हैं कि हिन्दुस्तान के लिए राजनैतिक स्वतन्त्रता आवश्यक है। वे इतिहास के निष्पक्ष विद्वान् हैं। उनका विश्वास है कि गांववालों को रचनात्मक कार्यक्रम

कविवर टेगौर की यह प्रार्थना शायद विनोबा पूर्व जन्म से करके आये हैं। ऐसे अनुयायी से गांधीजी और उनके सत्याग्रह की भी शोभा है।"

गांधीजी और महादेवभाई के इन लेखों ने विनोबाजी को चारों ओर प्रसिद्ध कर दिया। वे तीन महीने के बाद जेल से छूटे। गांधीजी ने कहा था कि एक बार मुक्त होने पर सत्याग्रही को फिर सत्याग्रह करना चाहिए। अतः विनोबाजी ने फिर सत्याग्रह किया और जब जेल से छूटे तो फिर सत्याग्रह किया। इस प्रकार तीन बार उन्होंने जेल यात्रा की। गांधीजी ने सत्याग्रहियों के लिए बड़े बड़े नियम बनाये थे। उन्होंने कहा था कि सत्याग्रहियों को जेल के सारे नियमों का पालन करना चाहिए। एक आदर्श सत्याग्रही की भांति विनोबाजी ने सारे नियमों का पालन किया।

व्यक्तिगत सत्याग्रह लगभग डेढ़ वर्ष तक चलता रहा। ब्रिटिश सरकार अब तक कांग्रेस की सारी मांगें ठुकराती रही लेकिन जब मध्यपूर्व की स्थिति खराब होने लगी तो और अधिक उपेक्षा करना कठिन हो गया। व्यक्तिगत सत्याग्रह में वे सभी लोग जेल गये थे जो अभी कुछ दिन पहले प्रान्तीय सरकारों में मन्त्रियों के पद पर काम कर रहे थे। जापान बड़ी तेज़ी से भारत की ओर बढ़ता आ रहा था। अतः कांग्रेस का सहयोग प्राप्त करने की दृष्टि से सरकार ने क्रिप्स मिशन की घोषणा की। २३ मार्च को सर स्ट्रैफर्ड क्रिप्स कुछ प्रस्ताव लेकर भारत आये। प्रस्तावों में कांग्रेस और लीग दोनों को खुश करने की बातें थीं लेकिन वास्तव में कोई खास चीज़ नहीं मिल रही थी। अतः गांधीजी ने उसे 'दिवालिये बैंक के नाम बाद की तारीख का लगा हुआ चेक' कह कर ठुकरा दिया। क्रिप्स-मिशन असफल हो गया। अब फिर कांग्रेस के लिए लड़ाई के अलावा कोई रास्ता नहीं था। १९ जुलाई के दिन आगामी संग्राम के सम्बन्ध में गांधीजी ने कहा—"इसबार मैं मांग कर जेल नहीं जाने वाला हूं। इस संग्राम में मांग कर जेल जाना नहीं है। यह बहुत ही नरम चीज़ होगी। अब तक अवश्य हमने मांग कर

जेल जाने का व्यापार कर रखा था लेकिन अब की बार मेरा इरादा ऐसा नहीं है।"

इसी वातावरण में बंबई में कांग्रेस महासमिति का अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में वह ऐतिहासिक प्रस्ताव पास हुआ जिसे 'अगस्त प्रस्ताव' कहा जाता है। गांधीजी ने 'करो या मरो' का नारा दिया। प्रस्ताव पास होते ही देश के बहुत से बड़े २ नेता बम्बई में ही गिरफ्तार कर लिये गये और अज्ञात स्थानों पर भेज दिये गये। अब क्या था ? सारे देश में आन्दोलन की लहर दौड़ गई। चारों ओर 'भारत छोड़ो' का नारा बुलन्द होगया।

विनोबाजी अपने रचनात्मक कार्य में लगे थे। उन्होंने न बम्बई जाने की आवश्यकता समझी न इस बात की आवश्यकता समझी कि आन्दोलन में एकदम शामिल हो जांय। लेकिन पिछले सत्याग्रह संग्राम के इस योद्धा को सरकार उपेक्षा की दृष्टि से कैसे देख सकती थी। उसने विनोबा को गिरफ्तार करके दूर वेलोर जेल भेज दिया और उनकी देखरेख में चलने वाले सारे आश्रमों को जब्त कर लिया। बड़े २ नेताओं की तरह विनोबाजी के बारे में भी यह बात गुप्त रखी गई कि वे किस जेल में हैं। वे लगभग १ वर्ष तक वेलोर जल में रखे गये। इसके बाद जब आन्दोलन कुछ शान्त हुआ तो उनको मध्यप्रान्त की सिवनी जेल में भेज दिया गया।

नजरबन्दी का यह समय विनोबाजी ने अध्ययन और कताई में व्यतीत किया। उन्होंने तेलगू, कनाड़ी, तामिल, मलयालम आदि भाषाएें सीखीं। सिवनी जेल में भी यह क्रम चालू रहा। श्री भारतन् कुमारप्पा को वे तुलसीकृत रामायण सिखाते रहे और उनसे द्रविड़ भाषाएें सीखते रहे। उन्होंने अन्य लोगों को भी जिन्होंने सीखने की इच्छा व्यक्त की, सिखाया। जेल में गीता पर प्रवचन भी होते रहे। जब अन्य लोग छोड़े जाने लगे तब सन् १९४४ में वे भी मुक्त कर दिये गये।

:: १७ ::

परिव्रज्या

"मैं आपको भगवान समझ कर आपकी सेवा करने आया हूं।"

—विनोबा

"पूज्य बापू के आकस्मिक देहान्त के दिन से लेकर जिन जिन कार्यों के लिए बापू मर मिटे उन्हें जितना हो सके अपनी तरफ़ से संभालने में, अपनी साधारण रुचि और स्वभाव के प्रतिकूल होते हुए भी, विनोबाजी अपना शरीर घिस डाल रहे हैं, यह हर कोई देख सकता है।"

—स्व० किशोरलालभाई मश्रुवाला

'भारत छोड़ो' आन्दोलन के बाद देश का घटना-चक्र बड़ी तेजी से घूमा। अंग्रेजों ने पूरी तरह अनुभव कर लिया कि भारतीय जनता पर उसकी इच्छा के विरुद्ध शासन करते रहना कठिन है। अतः उसने अपना एक प्रतिनिधि मण्डल भेजा। इसमें वहाँ के तीन बड़े राजनीतिज्ञ थे—सर स्ट्रेफर्ड क्रिप्स, लार्ड पैथिक लारेन्स और सर अलेक्जेन्डर। इस मिशन ने अपना काम प्रारम्भ किया और सब दलों में समझौता करवा कर सर्व सम्मत हल निकालने के लिये काफ़ी दौड़धूप की। लेकिन मुस्लिम लीग अपने दो राष्ट्र के सिद्धान्त पर दृढ़ थी। वह मुसलमानों के लिये एक अलग प्रदेश की माँग कर रही थी और पाकिस्तान से कुछ भी कम लेने के लिये तैयार नहीं थी। दूसरी ओर काँग्रेस इसके बिलकुल विरुद्ध थी। अपनी माँग को सीधी तरह मंजूर होते हुए न देखकर मुस्लिम लीग ने 'सीधी कार्रवाई दिवस' मनाने की घोषणा करदी। बङ्गाल में उस समय लीग की मिनिस्ट्री थी। अतः वहाँ यह दिन बड़े जोश से मनाया गया। हिन्दुओं और हिन्दू नेताओं के विरुद्ध काफ़ी विषवमन हुआ। परिणाम यह हुआ कि कलकत्ते में जबरदस्त

हिन्दू मुस्लिम दङ्गा प्रारम्भ होगया। २-४ दिनों में ही दङ्गे की यह आग पूर्वी बङ्गाल के ग्रामों में फैली और चारों ओर सामूहिक हत्या, लूटमार, बलात्कार और अपहरण के दृश्य दिखाई देने लगे। बढ़ते-बढ़ते यह आग बिहार में फैली और वहाँ भी यही होने लगा। ऐसा प्रतीत होता था मानो यह आग सारे देश में फैलेगी और भारत अपनी सारी शक्ति इसी में खोकर आगामी कितने ही वर्षों के लिये परमुखापेक्षी बन जायगा। गांधीजी इसे चुपचाप कैसे सहन कर सकते थे? वे तुरन्त बङ्गाल पहुँचे। उन्होंने नोआखाली के ग्रामों में पैदल यात्रा प्रारम्भ की और इस प्रकार वे ग्राम-ग्राम घर-घर पहुँच कर प्रेम और शान्ति का सन्देश सुनाने लगे। अपने प्राणों की बाजी लगाकर गांधीजी ने इस आग को बुझाने का प्रयत्न किया। बड़ा ही कठिन अवसर था। विनोबा को भी इन घटनाओं की खबर मिली। उनसे भी लोगों ने बङ्गाल जाने के लिये कहा, लेकिन उन्होंने बिना गांधीजी की आज्ञा के अपना काम छोड़कर वहाँ जाने की आवश्यकता नहीं समझी।

देश का घटनाचक्र और तेज़ी से घूमा। पाकिस्तान की माँग मंजूर करली गई। लेकिन दङ्गे शान्त न हुए। वे सारे उत्तरी भारत में फैले। फिर कलकत्ते में ज़बरदस्त दङ्गा हुआ। गाँधीजी चिन्तित हुए। इस बार उन्होंने और कड़ा क़दम उठाया। घोषणा की कि जबतक शान्ति न होगी वे अनशन करेंगे। विद्रोही प्रवृत्तियों को चुनौती मिली। वे सहमी और अन्त में उन्होंने गाँधीजी को विश्वास दिलाया कि वे आगे दङ्गे न होने देंगे। लेकिन ज़हर तो सारे देश में फैलगया था। देहली में दङ्गा होगया। गांधीजी देहली पहुँचे। उन्होंने वहाँ भी आमरण अनशन प्रारम्भ किया। दङ्गा शान्त हुआ। गांधीजी ने उपवास तोड़ा। लेकिन दुर्भाग्य से कुछ ऐसे भी लोग देश में थे जो गांधीजी के इन कार्यों को हिन्दू हितों के विरुद्ध मानने लगे थे। उन्हीं में से एक व्यक्ति ने ३० जनवरी सन् १९४८ को प्रार्थना सभा में गांधीजी पर गोली चलादी। गाँधीजी गिर गये और सदा के लिए विदा होगये।

इस घटना ने सारे देश को शोक में डुवा दिया। लोग अपने को असहाय अनुभव करने लगे। सारी स्थिति पर विचार करने के लिये गाँधीजी की मृत्यु के दो मास वाद वर्धा में गाँधीजी के भक्तों की एक सभा हुई। इस सभा में निश्चय हुआ कि सर्वसेवासङ्घ नामक एक ऐसी संस्था की स्थापना की जाय जिसके अन्तर्गत रचनात्मक कार्य करने वाली सारी संस्थाएँ कार्य करें। इसी सभा में सर्वोदय समाज की स्थापना का भी निश्चय हुआ। यह विनोवाजी की ही प्रेरणा थी। इस अवसर पर लोगों ने आग्रह किया कि विनोवाजी गाँधीजी के कार्य को अपने हाथ में लेलें। विनोवा में ही सव को आशा की किरण दिखाई देरही थी। वे ही सव को प्रकाशस्तम्भ प्रतीत हो रहे थे।

यद्यपि यह कार्य विनोवाजी की रुचि और स्वभाव दोनों के प्रतिकूल था तथापि उन्होंने इस अनुरोध को मान लिया। वे देहली आये। अव भी वातावरण में विद्वेष, हिंसा और घृणा फैले हुए थे। शरणार्थियों की एक नई समस्या सामने थी। विनोवाजी इन कामों में लग गये। इस नये क्षेत्र में वड़ी तत्परता से उन्हें काम करते हुए देखकर आश्चर्य होता था। मैंने उनसे इन्हीं दिनों पूछा—"आप अपना एकान्तिक जीवन छोड़कर इस नये क्षेत्र में आये हैं। इस क्षेत्र में आपके सामने कौनसा मुख्य उद्देश्य है ?" विनोवाजी ने उत्तर दिया—"मैं नहीं मानता कि मैं एक क्षेत्र छोड़कर दूसरे क्षेत्र में आगया हूँ। जिस क्षेत्र में मैं पहले था, उसी में अव भी हूँ। पहले घूमता नहीं था अव घूमने लगा हूं। मेरा यदि पहले का जीवन एकान्तिक था तो अव का जीवन भी एकान्तिक ही है। एकान्त का यह मतलव नहीं कि लोगों से दूर चले जाना और अकेले में वैठे रहना। उसका मतलव तो यही है कि वाहर की स्थिति का अपने ऊपर कोई असर न होने देना। जिस दिन मेरे ऊपर वाहर की स्थिति का असर होने लगेगा, उस दिन मैं अपने को कमजोर समझ कर काम छोड़ दूंगा। मैं आत्म शुद्धि की दृष्टि से प्रत्येक कार्य करता हूँ। कर्मयोग एक चीज है, सन्यास दूसरी। यह हमें देख लेना चाहिए कि

किस मौक़े पर किसको अपनाना चाहिए।" विनोवाजी के ये शब्द उनकी निर्लेप वृत्ति एवं निष्काम सेवा पर पूरा प्रकाश डालते हैं। यही विनोवाजी की आध्यात्मिक भूमिका है।

देहली पहुँच कर उन्होंने शरणार्थियों का काम प्रारंभ किया। शरणार्थियों के सब केम्पों का दौरा करके उनकी समस्या को समझा और अपने प्रार्थना प्रवचन में कभी सर्वधर्म समभाव, कभी प्रेम और शान्ति तथा कभी धर्म के तत्वों पर प्रकाश डालना प्रारंभ किया। उन्होंने शरणार्थियों से पूछा क्या वे कताई बुनाई कर सकते हैं? क्या वे खेती करना जानते हैं? क्या वे अपना मकान बना सकते हैं? अब तक सरकार की ओर से उन्हें भोजन मिलता था और वे सरकार से ही आगे के लिए आशा लगाये हुए थे। सरकार उनके प्रश्न को सुलझाने के लिए प्रयत्नशील भी थी लेकिन इतने बड़े प्रश्न को जल्दी ही हल कर लेना सरल नहीं था। विनोवाजी ने शरणार्थियों को स्वावलम्बी बनने की बात कही। उन्होंने सरकार से कहा कि वह शरणार्थी केम्पों में चर्खे, चक्कियाँ आदि भेजे ताकि वे कुछ न कुछ काम करने लगें। शरणार्थियों का प्रश्न काफ़ी बड़ा था लेकिन सरकार और जनता की सहानुभूति तथा विनोवाजी के प्रयत्न से वह हल होने लगा।

शरणार्थियों में मेवों का प्रश्न बड़ा विकट बन रहा था। मेव देहली, आगरा, भरतपुर, अलवर आदि के आसपास बसे हुए किसान हैं। ये लोग धर्म परिवर्तन करके मुसलमान बने थे। जब पाकिस्तान बना तो धार्मिक जोश में ये लोग भी पाकिस्तान चले गये लेकिन उनको शीघ्र ही वहाँ से लौटना पड़ा। उनके लौटते ही इतने सारे लोगों को फिर से बसाने का प्रश्न उपस्थित हुआ। उनकी अनुपस्थिति में उनकी जमीन मकान आदि पर दूसरे लोगों ने कब्ज़ा कर लिया था। अब भी साम्प्रदायिक कटुता तो लोगों में थी ही। हिन्दुओं को बसाने में तो जनता की ओर से सहायता मिल रही थी लेकिन इन मुसलमान शरणार्थियों को फिर से बसाने में सहानुभूति की कमी थी। विनोवाजी ने इसी

काम को लेलिया। वे जगह जगह मेवों के कैम्पों में गये और उनकी समस्या को समझा। वे अपनी ज़मीन और मकान वापिस चाहते थे। सरकार ने ज़मीन देने के लिए कुछ पेशगी लेने का नियम वना रखा था। विनोवाजी ने सरकारी कर्मचारियों तथा जन-नेताओं से मिलकर इस प्रश्न को सुलझाया। सरकार ने विना पेशगी लिए ज़मीन देना स्वीकार कर लिया और आश्वासन दिया कि जिन लोगों की ज़मीन शरणार्थियों को दी जाचुकी है उन्हें बदले में दूसरी ज़मीन देदी जायगी। इसी तरह उनके मकान भी उन्हें लौटाने की वात तय होगई। ३-४ महीनों में यह महत्वपूर्ण कार्य होगया। आगे इस प्रश्न को इसी तरह सुलझाने के लिए उन्होंने सत्यनजी को वहाँ रख दिया। सत्यनजी ने बड़े परिश्रम से काम कर के मेवों को काफ़ी सहायता की।

इन्ही दिनों जव वे शरणार्थियों के काम में लगे हुए थे, उन्हें वीकानेर से समाचार मिला कि वहां के कुछ सुधारक भाइयों ने गांधी सप्ताह में हरिजन बस्ती में जाकर सफ़ाई का काम किया। सवर्ण लोगों को यह वहुत वुरा लगा। उन्होंने इन लोगों का मन्दिर प्रवेश वन्द कर दिया। सवर्णों का मन्दिर प्रवेश वन्द करना नई वात थी। जिन लोगों पर यह प्रतिवन्ध लगाया गया था उनका प्रतिदिन मन्दिर में जाने का नियम था अतः जव उन्हें वार वार रोका गया तो उन्होंने मन्दिर के सामने वैठकर सत्याग्रह शुरू कर दिया। विनोवाजी के सामने यह वात आई उनसे भी वीकानेर आने का आग्रह किया गया। वे वीकानेर पहुँचे और वहां सभी विचारों के लोगों से मिले। प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा—"मैं आज सत्याग्रही भाइयों से मिला और उनसे कहा कि आपने सवर्ण होते हुए भी जो हरिजनों की सेवा की उसका यह पुरस्कार मिला मन्दिर में जाने से रोके जाने के रूप में आपको। समझना चाहिए कि आपने जो सेवा की उससे परमात्मा प्रसन्न हुआ और उसने आपको हरिजन की उपाधि दी। यहाँ हरिजनों का मन्दिर में प्रवेश नहीं है। इसलिए अगर आप अकेले मन्दिर में जायँगे तो अपने ही हरिजन

भाइयों से अलग पड़ जायंगे। भगवान् ऐसा नहीं चाहता। वह तो चाहता है कि आप ही सचमुच में हरि के जन बन जायँ और जबतक हरिजन भाई मन्दिर में न जा सकें तबतक आप भी न जायं। आप इसे भगवान का आशीर्वाद समझिये। आप ऊंचा सत्याग्रह कीजिये और जब तक हरिजनों का मन्दिर में प्रवेश न हो जाय तब तक मन्दिर में न जाने का निश्चय कीजिये। मैं अपना दृष्टान्त देता हूं। मेरे आश्रम के पास पवनार ग्राम में एक मन्दिर था। हरिजन वहां नहीं जा सकते थे अतः मैं भी वर्षों तक वहां नहीं गया। जिस मन्दिर में सबका प्रवेश नहीं हो सकता वहां सिर्फ़ पत्थर की मूर्ति रह जाती है। भगवान् तो माता का हृदय रखता है। वह अपने बच्चों को दूर नहीं रख सकता। भगवान् का दर्शन और उसकी आवाज सब तक पहुंचनी चाहिए। लेकिन जहां भगवान् के भक्तों की मनाही होती है वहां भगवान् कैसे रहेगा ?"

वे चार दिन तक बीकानेर रहे और वातावरण को शुद्ध बनाकर लौट आये।

विनोबाजी की अजमेर यात्रा उनकी शान्ति यात्रा का एक महत्व-पूर्ण अङ्ग है। अजमेर में ख्वाजा साहब की दरगाह है, जो भारत के मुसलमानों के लिये बड़ा पवित्र स्थान है। प्रति वर्ष उर्स के समय वहां मेला लगता है और देशभर के हजारों यात्री आते हैं। अजमेर के पास ही पुष्कर नामक स्थान भी है, जो हिन्दुओं का बड़ा तीर्थस्थान है। अजमेर आर्यसमाजियों का भी एक केन्द्र माना जाता है। साम्प्रदायिक दङ्गों के कारण जब देश में गन्दी हवा फैल रही थी, गांधीजी ने कहा था कि वे उर्स के मेले के अवसर पर अजमेर जायंगे। जब देशभर के मुसलमान एक स्थान पर धार्मिक भावना से एकत्र होते हैं, तब होसकता है कि वहां दूसरे सम्प्रदायों की ओर से कुछ अवांछनीय बातें हो जांय। यदि सौभाग्य से ऐसा न हो तब भी सद्भावना बनाने के लिये ऐसे अवसर काफ़ी लाभदायक सिद्ध होते हैं। इसी दृष्टि से गांधीजी ने वहां

जाने का निश्चय किया था। लेकिन दुर्भाग्य से वे स्वर्ग सिधार गये। जब विनोबाजी को गांधीजी के इस निश्चय की बात मालूम हुई तो उन्होंने कर्तव्य समझ कर अजमेर जाने का निश्चय कर लिया और वे मेले के अवसर पर अजमेर पहुंच गये। वहां उन्होंने जो पहला भाषण दिया उसके कुछ अंश हम यहाँ दे रहे हैं—"ऐसे उत्सवों का प्रसङ्ग सब के लिये आनन्द और सन्तोष का प्रसङ्ग होना चाहिये। लेकिन दुर्दैव से आज ऐसी हवा चली है कि कभी धार्मिक उत्सव आता है तो डर सा छा जाता है कि न मालूम अब क्या होगा ?............ । लेकिन इस वृत्ति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म के नाम का उपयोग करके राजकीय महत्वाकांक्षा रखने वाले लोग जनता को बहकाते हैं, जो सच्ची धर्मनिष्ठा रखते हैं उन्हें इन बुरी बातों से बचना चाहिए ।

"यहां अजमेर में सब धर्मों के लोग रहते आये हैं यह अनेक धर्मों का केन्द्र है। यह मुसलमानों का केन्द्र तो मशहूर है ही हिन्दुओं का भी है। आर्यसमाजी भी यहां काम करते आये हैं, जैन भी यहां के प्रसिद्ध हैं। इस तरह जहाँ सब धर्मों के लोग रहते हैं, वहाँ का जीवन आनन्दमय होना चाहिए। क्योंकि सब धर्मों ने आपस में प्रेमभाव रखने की शिक्षा दी है ।

"गीता ने साफ़ साफ़ कहा है कि हर एक को अपने अपने धर्म पर चलना चाहिए और चलने देना चाहिए। जिसकी जिस पर श्रद्धा हो वही उपासना उसके लिए अनुकूल है। यही बात क़ुरान में भी पाई जाती है। वह कहता है कि हर एक क़ौम के लिए भगवान ने रसूल भेजे हैं। जितने रसूल दुनिया में भेजे गये हैं सबकी जमात एक है। हर मज़हब में जितने सन्त हुए हैं उन सबका हृदय एक है। आपस में जो भेद दिखाई देते हैं वे लोगों के पैदा किये हुए हैं, सन्तों के नहीं ।

"जैन कहते हैं कि परिपूर्ण विचार कहीं शब्दों में नहीं आता। एक २ पन्थ में सत्य का एक एक पहलू दिखता है। एक ही पहलू को देखने से पूरा सत्य हाथ में नहीं आता है। सब पहलुओं से उसे देखना चाहिए।

लेकिन एक पहलू का दूसरे से विरोध हो ही नहीं सकता।

"आर्यसमाजी वेदों में श्रद्धा रखते हैं। वेद ने कहा है:—'एकं सद् विप्रा वहुधा वदन्ती' सत्य एक है उसकी उपासना करने वाले उसे अलग अलग नामों से पुकारते हैं। भिन्न भिन्न धर्म अलग अलग उपासनाएं नहीं तो क्या हैं? इस्लाम एक तरह की उपासना है, ईसाई धर्म दूसरी तरह की। हिन्दू धर्म में तो उपासना के कई भेद हैं। फिर सत्य एक ही है। इसलिए वेद भगवान की आज्ञा है कि उन उपासनाओं में विरोध नहीं होना चाहिए।

"ईसाइयों के धर्म ग्रन्थों में भी यही वात है। ईसा अपने शिष्यों को कहते हैं—"तुम यह न समझो कि तुम ही मेरे शिष्य हो और तुम्हारे ही मकान में मैं रहता हूं। मेरे लिए दूसरे भी मकान पड़े हैं।" इस तरह ईसा ने अपने शिष्यों को सर्वधर्म समभाव समझाया है।

"मतलव यह है कि किसी भी धर्म का किसी भी धर्म से विरोध नहीं हैं। सब धर्मों का यदि किसी से विरोध है तो वह अधर्म से। अधर्म का विरोध करने में सबको एक होना चाहिए।

"हिन्दुस्तान में जो अनेक उपासनाएं चलती हैं उनकी झलक अजमेर में देखने को मिलती है। इसलिए मैं प्रार्थना करूंगा कि हम एक दूसरे के उत्सवों में शरीक़ हों और सबको अपने दिल में समालें। तभी हिन्दुस्तान मज़बूत बनेगा और दुनिया को रास्ता दिखाएगा।"

विनोवाजी एक सप्ताह अजमेर रहे। इस बीच कई सभाओं में उनके प्रवचन हुए। इन प्रवचनों ने जैसे सारी हवा ही वदल दी। मुसलमान भाइयों पर इतना असर हुआ कि उन्होंने विनोवाजी को दरगाह शरीफ़ में वुलाया और वहां उनकी प्रार्थना हुई। दरगाह शरीफ़ में प्रार्थना होना और उसके साथ रामधुन भजन आदि होना एक अभूतपूर्व घटना थी। दरगाह के पिछले ३००-४०० वर्ष के इतिहास में पहले कभी ऐसा नहीं हुआ था। दृश्य वड़ा ही सुन्दर था। ऐसा प्रतीत होता था मानो हिन्दू मुस्लिम एकता साकार हो गई है। जब दरगाह के दीवान

साहव ने विनोवाजी को सिरोपाव भेंट किया तो प्रायः सभी उपस्थित व्यक्तियों को रोमाञ्च होगया।

अजमेर यात्रा के कुछ ही दिन वाद राऊ (मध्यभारत) में सर्वोदय सम्मेलन हुआ। यहां अपने काम की रिपोर्ट सी देते हुए उन्होंने कहा था—"मैंने देखा कि मुसलमानों ने मुझको अपने में से एक माना। अजमेर में मुझे इसका वहुत अनुभव हुआ। गुड़गांव में मेवों को वसाने का जो काम हो रहा है वहां भी यही अनुभव हुआ। यह काम वहां जोरों से चल रहा है। अच्छे कार्यकर्ता काम में लगे हैं। उनको साथ भी अच्छा मिला है। शुरू में ४-६ महिने यद्यपि वहुतसी मुसीवतों का सामना करना पड़ा तो भी आज वहुत से वादल हट गये हैं और हिन्दुस्तान की एकता का कुछ प्रयोग वहां हम कर सके हैं।"

उपर्युक्त कथन से विनोवाजी के कार्य का महत्व स्पष्ट है। एक वर्ष के थोड़े से समय में उन्होंने साम्प्रदायिकता के विष को वुझाने में काफ़ी सफलता प्राप्त कर ली। वे जहां कहीं गये वहां उनका वड़ा स्वागत हुआ और द्वेष, अहिंसा तथा घृणा का वातावरण प्रेम, शान्ति और उदारता में वदल गया।

राऊ सम्मेलन के समय ही हैदरावाद में साम्प्रदायिक कटुता फैलने के समाचार आ रहे थे। हैदरावाद जैसे राज्य में वाहर के व्यक्तियों को प्रायः आन्तरिक स्थिति का अध्ययन नहीं करने दिया जाता था। मुसलमान राजा होने के कारण वहां के मुसलमान इस राज्य को पाकिस्तान में मिलाने का स्वप्न देखते रहे और इसके लिए वे उन्हीं तरीकों का अवलम्वन करने लगे जो उत्तरी भारत में काम में लिये गये थे। वहां उपद्रवकारी रज़ाकार लोग थे। विनोवाजी हैदरावाद गये और उन्होंने वहां के एक वहुत वड़े भाग का दौरा किया।

इस यात्रा में विनोवाजी ने जो तलस्पर्शी मार्मिक और प्रेरणादायक प्रवचन दिये एवं सद्‌भावना को वढ़ाने का प्रयत्न किया वह अपना महत्व रखता है। एक डाक्टर की भांति उन्होंने देश की वीमारी को

छानबीन की और जहां जिस प्रकार के इलाज की आवश्यकता थी वहां वही सुझाया। देश भर में अलग अलग रूप में होनेवाले दंगों के मूल कारण पर प्रकाश डालते हुए उन्होंने अजमेर में कहा था—"यह मैं केवल सिन्धी नौजवानों को ही नहीं कहता। सारे हिन्दुस्तान की यह समस्या है। यहां यदि परिश्रम, निष्ठा और उत्पादन नहीं बढ़ेगा और ज्यादातर शिक्षित लोग नौकरी और व्यापार ही करना चाहेंगे तो हिन्दुस्तान के लड़ाई झगड़े मिटने वाले नहीं हैं बल्कि मैं तो स्पष्ट देख रहा हूँ कि वे और बढ़ने वाले हैं। कभी वे हिन्दूमुस्लिम झगड़े का रूप पकड़ेंगे तो कभी सिन्धी मारवाड़ी झगड़े का और कभी कोई और रूप होगा। लेकिन वह रूप बाहरी होगा। झगड़े का असली कारण तो यही है कि गरीब चूंसे जा रहे हैं, उत्पादन का भार उन पर पड़ रहा है। खाना भी पूरा नहीं मिल रहा है, जब कि दूसरे लोग पूरा खाना खा रहे हैं।"

विनोबाजी समस्या की तह तक पहुँचते हैं और चाहे वह राजनैतिक हो, आर्थिक हो, सामाजिक हो अथवा धार्मिक हो उसका सही हल बताते हैं। उनके इन दिनों के भाषण 'शान्तियात्रा' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। जिन्हें ज्ञान, कर्म और उपासना की त्रिवेणी में स्नान करना हो उन्हें ये प्रवचन अवश्य पढ़ना चाहिए।

कांचनमुक्ति योग

"....उपनिषद् में कहा है कि सत्य का मुंह सुवर्ण से ढका हुआ है। 'सुवर्ण' वहां माया के रूप में है। परन्तु वह सूक्ष्म अर्थ है। स्थूल अर्थ में भी हम देखते हैं कि सत्य का मंह पैसे से ढका रहता है। हम लोग कुछ न कुछ अर्थ लोभ रखते ही हैं। व्यक्तिगत ख्याल से न रखते हों, पर वह भी छोड़ देंगे तब सत्यनारायण के दर्शन होंगे।" —विनोबा

अपनी शान्ति यात्रा में विनोवाजी ने जगह जगह दरिद्रनारायण के दर्शन किये और देश की आर्थिक स्थिति पर गहराई से सोचा। उन्हें स्पष्ट रूप से दिखाई दिया कि आज सुखी जीवन का एक मात्र साधन पैसा है। वही हमारी सारी अर्थ व्यवस्था पर छागया है। रुपया बड़ा से बड़ा अनर्थ करवा देता है, अनीति को प्रोत्साहन देता है, सत्य का मुंह बन्द कर देता है और ग़रीबों के शोषण का तो मार्ग ही प्रशस्त कर देता है। इस पैसे के बोझ से, न्याय, नीति, सदाचार, सुख, शान्ति सब दवते चले जा रहे हैं। आज जितनी भी समस्याएँ हमारे सामने हैं उनमें से अधिकांश का मूल कारण वही है। स्वराज्य के पहले गांधीजी ने धनवानों का सहयोग लिया था और आश्रम जैसी संस्थाओं में भी उनके पैसे को निषिद्ध नहीं माना था। लेकिन अब स्थिति वदल गई थी। अब देश के सामने आर्थिक समस्या विकराल रूप में खड़ी थी और विनोवा जैसे युगप्रवर्तक ऋषि पुरानी लकीर को कैसे पीटते रह सकते थे। अब तो समय की स्थिति को देखते हुए नया मार्ग खोजना था। विनोवाजी को विचार करने पर यह बात स्पष्ट दिखाई देने लगी कि पैसे की इस माया से मुक्त होने के अलावा कोई अन्य रास्ता नहीं है। उन्होंने अनुभव किया कि जब तक हम किसी शाखा पर वैठे रहेंगे तब तक उसे

नहीं काट सकेंगे। यदि उसे काटना है तो वहां से हटना होगा तब कहीं हमारी चोट सफल होगी। यदि धनवानों से सत्य अहिंसा के प्रचार और प्रयोग के लिए पैसा लिया जाता है तो फिर जिस शोषण-व्यवस्था से वे पैसा पैदा करते हैं उसके ऊपर हम कैसे आघात कर सकते हैं ? उनके पैसे के बल पर सत्य अहिंसा की साधना और अहिंसक समाज की स्थापना आकाश कुसुम ही बने रहेंगे ! इस दिशा में विनोबाजी ने एक व्यवहारिक सुझाव राऊ सम्मेलन में दिया था। उन्होंने कहा था कि हमारी संस्थाओं में जो रुपया जमा रहता है उसे बेंकों में न रखकर संस्था के काम में ही लगा देना चाहिए। बेंक अपने पैसे को देश विघातक कामों में भी लगाता है अतः उससे दाता और संस्था दोनों के उद्देश्यों पर आघात होता है। अब तक उनका चिन्तन इस दिशा में काफ़ी आगे बढ़ चुका था।

विनोबाजी ने इस प्रश्न को किसी एक वर्ग या जाति के प्रश्न के रूप में नहीं देखा था। यह तो सारी मानव जाति का प्रश्न था। जो रुपया आज मनुष्य के सुख का साधन बन गया है उसका मूल्य हमेशा घटता बढ़ता रहता है और परिणाम स्वरूप सुख के साधन भी सुकर-दुष्कर बनते रहते हैं। अतः क्या ऐसा उपाय संभव नहीं है कि समाज रुपये के घटते बढ़ते मूल्य से बिना प्रभावित हुए जीवनयापन कर सके ? सरकार २०–२५ वर्ष पहले प्रति एकड़ जितना लगान लेती थी उतना ही आज भी ले रही है। यदि पहले २) प्रति एकड़ था तो आज भी वही है। जबकि आज रुपये का मूल्य काफ़ी घट गया है। परिणाम यह हो रहा है कि एक ओर सरकार कंगाल हो रही है, दूसरी ओर जनता का ध्यान उत्पादन पर नहीं है। सरकार भी अपना आधार पैसे को ही बनाए हुए है, अतः उसके राज्य में कोई चीज स्थायी नहीं है।

यदि इस दिशामें कुछ करना है तो प्रयत्न दोनों ओर से होने चाहिए। एक ओर सरकार लगान के रूपमें अनाज लेने लगे और दूसरी ओर जनता स्वावलम्बन एवं श्रम की प्रतिष्ठा समाज में स्थापित करे। विनो-

वाजी ने अपने भाषणों में सरकार से कहा कि उसे अनाज के रूप में लगान लेना प्रारंभ करना चाहिए। कुछ लोगों ने इस विचार को पसन्द किया लेकिन सरकार के लिए इतना वड़ा क़दम उठाना साहस का काम था। वह उसके लिए तैयार नहीं थी।

हैदरावाद के दौरे में विनोवाजी ने इस समस्या को और तीव्रता से अनुभव किया। वहां साम्यवाद अपना जाल फैला रहा था। वहां के साम्य-वादी इस आर्थिक समस्या को हिंसा से हल करने में लगे थे। जव समाज में प्रत्येक व्यक्ति शारीरिक श्रम से दूर भागने का प्रयत्न कर रहा हो और चाहता हो कि कम से कम परिश्रम में अधिक से अधिक लाभ मिल जाय तव सव लोगों का झुकाव यन्त्र चालित उद्योग, व्यापार या नौकरी की ओर ही होगा। उस स्थिति में यदि श्रम की प्रतिष्ठा विलकुल घट जाय, यहाँ तक कि किसान मज़दूर भी जितना श्रम करें वह विवशता से ही, तो इसमें आश्चर्य की क्या वात है? विनोवाजी को यह वात स्पष्ट रूपसे दिखाई दी कि शरीरश्रम से भागने की इस प्रवृति के कारण ही शोषक और शोषित नाम के दो वर्ग वन गये हैं और इसी से वर्ग विग्रह प्रारम्भ होता है। अतः विनोवाजी का हृदय इस वुरी व्यवस्था को मिटाने के लिए विकल होगया। उन्होंने कहा—"पैसे के प्रयोग से मेरा जी अव ऊव गया है। हमें अव लेना है तो श्रमदान ही लेना चाहिए और देना है तो श्रमदान ही देना चाहिए। इस विषय पर मैं अधिक चर्चा करना नहीं चाहूँगा। मेरी वृत्ति वहुत दिनों से ऐसी हो रही है कि जितना हम से हो सके शीघ्र से शीघ्र वित्त-पाश से मुक्त होना चाहिए। पाश तो और भी हैं और होते ही हैं पर वित्तपाश से हम मुक्त हो जाते हैं तो दूसरे पाशों से मुक्त होना आसान हो जाता है।"

इस प्रकार विनोवाजी के मस्तिष्क में शोषण विहीन स्वावलम्वी समाज की कल्पना स्पष्ट होती जा रही थी। लेकिन जव तक कोई उसे अपने जीवन से चरितार्थ करके नहीं दिखाता तथा सारे मानव समाज को उस ओर मोड़ने में जो वाधाऐं आती है उनका ठीक-ठीक हल

बताने का प्रयत्न नहीं करता तब तक लेख और व्याख्यान से क्या हो सकता था ? अतः इधर उधर यात्राएँ करते रहने का इरादा छोड़कर विनोबाजी ने परंधाम में ही बैठकर यह प्रयोग प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया। बाहर घूमने फिरने की संभावना को आगे मिटा देने के लिए उन्होंने यह निश्चय भी कर डाला कि वे अब सवारियों का उपयोग नहीं करेंगे। इस प्रकार अपनी 'मूले कुठारः' वाली नीति के अनुसार यात्राओं का बन्धन तोड़कर उन्होंने साम्ययोग की साधना में अपनी शक्ति लगा दी।

अपनी साम्ययोग की कल्पना को स्पष्ट करते हुए विनोबाजी ने कहा है—"यशोदा की अर्थ व्यवस्था का आधार पैसा था। उसमें मेरा विश्वास नहीं है। मैं तो कृष्ण की अर्थ व्यवस्था चाहता हूँ जिसका आधार वितरण है। कृष्ण को यह नहीं भाता था कि गांव के लोगों का और खासकर बालकों का भोज्य माखन पैसे के लोभ से शहर के बाजार में जाय। गांववाले अपनी कपास बेच देते हैं और बाहर से कपड़ा लाते हैं। तिल बेच देते हैं और तेल खरीदते हैं। शहद बेचकर शकर खरीदते हैं और अपना स्वास्थ्यप्रद मक्खन बेच कर वनस्पति घी ले आते हैं। सारांश यह कि वे अमृत बेचकर विष लेते हैं और यह सब सिर्फ़ पैसे के लिए। मुझे यह सब देखकर बड़ा दुःख होता है। मैं तो साम्ययोग चाहता हूँ जिसमें गांव वाले अपनी पैदा की हुई चीजें आपस में गांव वालों की ही आवश्यकतानुसार बांटते हों। यदि ऐसा हो सके तो स्वर्ग का सुख उतर आयगा।"

विनोबाजी ने इसका नाम साम्यवाद न रखकर साम्ययोग क्यों रखा है इसे उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा है:—"साम्यवाद को कम्यूनिस्ट लाये। वह बाहर की चीज को देखते है और सारी बाहर की चीज सब को समान हासिल हो ऐसा विचार रखते है। मुझे यह विचार ही अपूर्ण मालूम होता है। फिर उसके साथ साथ उसकी प्राप्ति के लिए वे हिंसा को भी सहन कर सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि हिंसा पर उनकी

श्रद्धा भी है। यह श्रद्धा भी मुझे अत्यन्त हानिकारक मालूम होती है। अतः जो काम मैं करने जारहा हूँ उसे साम्ययोग नाम दिया है। साम्य-योग में सबकी समानता अन्दर से होती है। आत्मा की समानता मान कर के साम्ययोग चलता है।"

सा ययोग की साधना पहली जनवरी सन् १९५० से प्रारम्भ हुई। विनोबाजी ने अपने आश्रमवासियों को इस सम्बन्ध में पहिले से ही तैयार कर रखा था। आश्रमवासियों का जीवन श्रमप्रधान, सादा और मितव्ययी तो था ही, विनोबाजी ने अपने कुछ साथियों को खेती वढ़ईगिरी आदि बातें भी सीखने की प्रेरणा देकर भूमिका तैयार कर ली थी। पहली दिसम्वर सन् १९४९ को उन्होंने अपने सब साथी कार्य-कर्ताओं को बुलाया और उनके सामने साम्ययोग रख कर उसका श्रीगणेश कर दिया। सबसे पहले साग सब्ज़ी बाहर से न मंगाने का निश्चय किया गया और पहली जनवरी से काञ्चन मुक्ति की प्रत्यक्ष साधना प्रारंभ होगई।

उस समय आश्रम के पास केवल पोन एकड़ ज़मीन थी। यह ज़मीन मकानों की थी। इसमें से अनेक मूर्तियां निकलीं थीं। कहा जाता है कि १५०० वर्ष पूर्व यहां वाकाटल की रानी द्वारा वनाया हुआ एक मन्दिर था। इस भूमि में एक कुंआ भी था। जिसकी गहराई ३९ फ़ीट है। आश्रम में १६-१७ व्यक्ति थे। इतने व्यक्तियों के लिए ही साग सब्ज़ी पैदा करनी थी। इतनी थोड़ी भूमि के लिए बैल नहीं रखे जासकते थे। अतः हाथ से ही खेती का काम प्रारंभ हुआ। सिचाई के लिए पानी निकालना भी कठिन था अतः रहट में सुधार किया गया। उसमें एक डंडे की जगह आठ डंडे लगाये गये और उनको ऊंचा उठाया गया। अब कुंए से पानी निकालने का काम काफ़ी सरल होगया और यह काम मनोरंजन और प्राणायाम का साधन बन गया। जहां पहिले २०-२५ चक्कर चलाना कठिन था वहां अब लगभग ७०० चक्कर चलाये जाने लगे और मैदान हरा भरा होगया। ज़मीन को अच्छा वनाने में काफ़ी श्रम

करना पड़ा। वह तीसरी श्रेणी की जमीन थी। उसमें से पत्थर ईंट आदि निकाले गये और एक वर्ष में १२५ मन सब्जी पैदा की गई। भूमि में भी काफ़ी सुधार हुआ। अब वह दूसरे दर्जे की भूमि मानी जाने लगी।

यह काम करते हुए और आगे बढ़ना था। सब्जी का स्वावलम्बन तो पहला क़दम था। अतः यह काम करते हुए आगे की योजनाएं भी बनाई जाने लगीं। यह सोचा गया कि अगले वर्ष १७½ एकड़ भूमि ली जाय। ८ अक्टूबर सन् १९५० को गांधी जयन्ती के अवसर पर एक कुंआ खोदना प्रारम्भ किया गया। कुंआ ३२'×१४' का था। प्रति दिन ५-६ घन्टे काम होता था और लगभग आठ महिनों तक कुंए का काम चलता रहा।

बरसात में खेती का काम प्रारम्भ हुआ। भूमि में खाद डाला जा चुका था और उसे हल चलाकर तैयार भी कर लिया गया था। अब बोनी प्रारम्भ हुई। दो एकड़ में हाथ से खेती करने का निश्चय किया गया और ज्वार कपास मूंगफली आदि आवश्यक अनाज बोया गया। घांस निकालना, सफाई करना तथा फसल की रखवाली करना सब कुछ कार्यकर्ताओं ने ही किया। बैलों की सहायता के बिना हाथ की जानेवाली इस खेती को विनोबाजी 'ऋषि खेती' कहते हैं। इसका नाम ऋषि खेती क्यों रखा गया है और इसके पीछे क्या कल्पना है इसे स्पष्ट करते हुए परंधाम आश्रम के व्यवस्थापक तथा साम्ययोग की साधना के एक प्रमुख साधक श्री द्वारकोजी ने लिखा है—"प्राच काल से ऋषियों ने समाज के स्थूल और सूक्ष्म विकास के लिए साधना की तथा वे समाज को मार्ग दिखाते आये। उन्हीं की तरह इस खेती के पीछे भी समाज विकास की कल्पना है। खेती आदि कामों में मनुष्य पशु का उपयोग करता रहा और अपनी श्रमशक्ति कुण्ठित करता गया। वह शक्ति फिर से जागृत करके उसका विकास करना, आत्माश्रयी—स्व-आश्रयी—बनाने का भान पैदा करना, यह हुआ

की कल्पना की प्रगति करना ही इस खेती का मुख्य उद्देश्य है। और उसी को आज युगर्षि ने 'ऋषि खेती' के रूप में सबके सामने चित्रित किया है।"

लगभग १४ एकड़ भूमि में बैलों की सहायता से खेती की गई। अभ्यास और अनुभव दोनों के न होने पर भी इस काम में असफलता नहीं हुई। इस भूमि में १३५ मन ज्वार, ८६३⁄४ सेर तिल, दस मन सत्ताईस सेर मूंगफली और सवा छः मन अरहर हुई। साम्ययोग की यह साधना करते हुए जिस गीतामय जीवन की पवित्र साधना का आनन्द कार्यकर्ताओं को मिला उसका वर्णन द्वारकोजी ने किसान के जीवन के ज्ञान कर्म और उपासनामय जीवन का चित्र खींच कर इस प्रकार किया है—"वह अपना पसीना बहाकर खाता है। शोषण रहित स्वावलम्बी जीवन बिताता है, इसलिए मनमें मस्त रहता हुआ हर दिन क़ुदरत के भरोसे प्रकृति की गोद में रहता है। उसका पूरा समय प्रकृति के साथ बीतता है। उसका जीवन ही प्रकृति पर निर्भर है। इसलिए वह भक्तिमय है और पहरा देते समय, काम करते समय, वह ज्ञान का भी उपार्जन करता रहता है। इस तरह ज्ञान कर्म और भक्ति के वातारण में वह रहता है। उसका जीवन ही गीतामय हो जाता है।"

वस्त्र के सम्बन्ध में तो आश्रमवासी स्वावलम्बी थे ही। इस वर्ष १६४८ गुण्डियां काती गईं। उससे जो कपड़ा बना उतना ही काम में लिया गया। लेकिन वस्त्र स्वावलम्बन का यह कार्य एक नये ढंग से प्रारम्भ हुआ। प्रातः कालीन तथा सांयकालीन प्रार्थनाओं के समय कताई का काम होता रहा। 'चित्तीं नाम हाथीं काम' के अनुसार प्रार्थना के साथ साथ कताई का काम भी हुआ। कुछ दिन बाद और प्रगति हुई। अब रहट चलाते चलाते प्रार्थना करने का क्रम प्रारम्भ किया गया। साल भर में ३९७६ सेर सब्जी, २४ सेर सोयाबीन, ६० सेर कपास और ६३⁄४ सेर तिल पैदा हुआ। खाने की अन्य वस्तुओं तथा

दूसरी कुछ आवश्यकताओं के लिए भी कुछ पैसे की आवश्यकता होती थी अतः उसे कार्यकर्ताओं ने ग्रामसेवा मण्डल में मजदूरी करके पूरा किया। इस प्रकार साम्ययोग की साधना बहुत अंशों में सफलता के निकट पहुँच गई और उसने कार्यकर्ताओं में आत्मविश्वास पैदा कर दिया। साथ ही अगले वर्ष और अधिक सफलता प्राप्त करने की प्रेरणा और स्फूर्ति भी मिली।

विनोबाजी गणितज्ञ हैं। हर काम को नाप तौल कर करते हैं और उसका ठीक ठीक हिसाब लगाते हैं। साम्ययोग की साधना में कितने घंटे काम हुआ, कितना उत्पादन हुआ, उससे प्रतिघंटा क्या मजदूरी पड़ी, इस सब का सही हिसाब रखा गया है जो सर्वोदय में प्रकाशित हुआ है। इस अनुभव के आधार पर एक परिवार के स्वावलम्बन के लिए कितनी भूमि की आवश्यकता होती है और उसे कितने घण्टे काम करना चाहिए आदि बातें भी निकाली गई हैं।

विनोबाजी की प्रेरणा से गोपुरी में भी ग्रामसेवा मण्डल के कार्यकर्ताओं ने इस दिशा में क़दम बढ़ाया है। उन्होंने भी फल और तरकारियां बाहर से न मंगाने का निश्चय किया। वस्त्र स्वावलम्बन भी पूरी तरह साधने का निश्चय किया। और अनाज के बारे में भी प्रयत्न प्रारंभ किया। 'दीपक से दीपक जलता है' के अनुसार इस साधना के प्रकाश में कुछ अन्य आश्रमों में भी कार्य प्रारंभ हुआ जिसमें सेलडोह और महाकाल का काम उल्लेखनीय है। सेलडोह में श्री जे. सी. कुमारप्पा तथा महाकाल में प्रोफ़ेसर ठाकुरदास बंग की देखरेख में ये काम हो रहे हैं।

यदि समूचे भारत की दृष्टि से देखा जाय तो यह काम समुद्र में बूंद की तरह हैं लेकिन जिस उच्च भावना और अटल निष्ठा से यह कार्य किया गया है उससे यह महान बन गया है। यह एक क्रान्तिकारी प्रयोग है। पैसे की माया में उलझा हुआ संसार आज भले ही इसका महत्व न समझ सके लेकिन यदि उसे सच्चे सुख और शान्ति की आवश्यकता है तो एक न एक दिन इस ओर आना ही पड़ेगा।

सर्वोदय यात्रा

"आचार्य विनोबा भावे ने जंगल के कानून को तो ठुकरा दिया। उन्होंने असेम्बली के कानून तक का सहारा नहीं लिया। बल्कि प्रेम के कानून के ऊपर अपनी श्रद्धा आधारित की है और यह प्रेम का ही सबसे ऊंचा कानून है।" —सर्वपल्ली राधाकृष्णन्

सर्वोदय समाज के एक सम्मेलन में तो विनोवाजी उपस्थित थे लेकिन उसके बाद अनुगुल सम्मेलन में जो उड़ीसा में हुआ था वे उपस्थित नहीं हो सके। कांचनमुक्ति योग में वे इस प्रकार लग गये थे कि उन्होंने वहाँ जाने का विचार तक नहीं किया। उनकी इस अनुपस्थिति से लोगों ने सम्मेलन में सूनापन अनुभव किया। अतः जब आगामी वर्ष शिवरामपल्ली (हैदराबाद) में सर्वोदय सम्मेलन करने का निश्चय हुआ तो उसके संयोजकों ने विनोवाजी को वहाँ बुलाने का विचार किया। वे लोग विनोवाजी के पास सम्मेलन का निमन्त्रण देने आये। लेकिन विनोवाजी तो अपने सामने के काम को ही सबसे ज्यादा महत्व देते हैं अतः उन्होंने स्पष्ट रूपसे कह दिया कि वे नहीं जा सकेंगे। सम्मेलन के संयोजक कुछ निराश हुए लेकिन हिम्मत नहीं हारी। उन्होंने अपनी क्षुब्धता विनोवाजी पर प्रकट की। विनोवाजी चुपचाप सब कुछ सुनते रहे। फिर उन्होंने कार्यकर्ताओं से पूछा कि हैदराबाद कितनी दूर है ? उत्तर मिला—३०० मील। उन्होंने स्वीकृति दे दी। सम्मेलन के संयोजक प्रसन्न मन से लौट गये। लेकिन विनोवाजी की इस स्वीकृति के पीछे एक कड़ा निश्चय था। उन्होंने कहा—"सर्वोदय सम्मेलन में जिस रीति से सभी जा सकते हैं उसी रीति से ही जाना अच्छा है। जिनके लिए यह संभव नहीं वे रेलगाड़ी से भी जायेंगे तो उसमें दोष नहीं है

परन्तु यदि संभव हो तो पैदल जाना चाहिए। उससे देश का दर्शन होता है, जनता के साथ सम्पर्क होता है और सर्वोदय का सन्देश पहुँचाया जा सकता है।"

पैदल यात्रा का यह निश्चय नया या असाधारण नहीं था। फिर भी आज के इस युग में जिन विनोबा के इशारे पर तेज से तेज वाहन प्राप्त हो सकते हैं, उनका यह निश्चय अवश्य ही साधारण से भिन्न था। इतिहास में पैदल यात्रा के अनेक उदाहरण मिलते हैं। मार्कोपोलो ने चीन का भ्रमण पैदल किया था और हुएनत्सांग फाहयान आदि ने भारत का। महावीर स्वामी और महात्मा बुद्ध ने पैदल यात्रा करके ही देश की जनता को अहिंसा का संदेश सुनाया था। शंकराचार्य के देश व्यापी भ्रमण को कौन नहीं जानता? गांधीजी की डाण्डी यात्रा और बंगाल का पैदल भ्रमण तो अभी की बातें हैं। पैदल यात्रा का निश्चय करते समय विनोबाजी के मन में यही विचार था कि सत्य अहिंसा के सन्देश अर्थात सर्वोदय के आदर्श को लोगों तक पहुँचाने तथा फैलाने में वे साधन भी उपयोग में नहीं लाये जाने चाहिए जिनका अस्तित्व समाज में फैली हुई हिंसा और असत्य पर आधारित है। आज यातायात के साधन पैसे के उस अर्थशास्त्र पर निर्भर हैं जो समाज के मोजूदा शोषणक्रम का मूलभूत कारण हैं तथा उस सारी शोषण कारी व्यवस्था को जमाये हुए है। अतः ऐसे साधनों का बहिष्कार स्वाभाविक ही था। दूसरी बात जो विनोबाजी के मन में थी वह यह कि ऐसे साधनों से शहरों के लोगों तक ही पहुँचा जा सकता है। लेकिन सच्चा भारत तो ग्रामों में है। ग्रामों के भ्रमण से ही जनता के साथ सम्पर्क स्थापित किया जा सकता है, उसके हृदय को स्पर्श किया जा सकता है तथा उस तक शान्ति और प्रेम का संदेश पहुँचाया जा सकता है।

जब जाने का निश्चय होगया तो फिर देर कैसे होती? उन्होंने नकशा मंगाया, यात्रा के स्थान तय किये और ८ मार्च १९५१ को चल पड़ने का निश्चय कर लिया। पहला मुकाम था वायगांव। वहां धूप तेज

होने के पहले ही पहुँच जाना था। अतः उसदिन सुवह ३-४५ के वजाय सव लोग ३-१५ पर जगे। शौच आदि से निवृत होकर प्रार्थना की। विदाई पहले दिन ही सव लोगों से ले ली गई थी। यात्रा प्रारम्भ करने के पहले वे भरतराम मन्दिर में गये। यह मन्दिर आश्रम में प्रवेश करते ही सामने दिखाई देता है। एक सादीसी झोंपड़ी में यहाँ वनवास के वाद अयोध्या लौटने पर भरत और राम की जो भेट हुई थी उसी प्रसंग को वतानेवाली एक मूर्ति थी। विनोवाजी को यह मूर्ति परंधाम आश्रम के खेत में से मिली थी। इस मूर्ति पर उनकी वड़ी श्रद्धा है। वे कहते हैं—"वैसे मैं मूर्ति-पूजा का आग्रही नहीं हूँ। लेकिन यदि भगवान स्वयं मेरे यहाँ आजांय तो क्या उसे निकाल दूं? यह मूर्ति उन्हें सन् १९४०–४१ में खेत खोदते समय मिली थी। मूर्ति को प्रणाम करके ठीक ४–१५ पर विनोवाजी निकल पड़े। उनके साथ महादेवी ताई, श्रीमती मदालसा देवी, दामोदरदासजी मूंदड़ा तथा कुछ अन्य कार्यकर्ता थे।

विनोवाजी वर्धा आये। यहाँ लक्ष्मीनारायण मन्दिर में उन्हें विदाई देने के लिए एक वड़ी भीड़ इकट्ठी होगई थी। अतः वे यहाँ कुछ देर रूके। महिलाश्रम की वालिकाओं ने रामधुन और भजन गाये। विनोवाजी ने एक छोटा सा भाषण देकर वर्धावासियों से विदाई ली। वायगांव पहुँच कर उन्होंने ग्राम का निरीक्षण किया, लोगों से वहां की जानकारी प्राप्त की और संध्या समय प्रार्थना में प्रवचन दिया। अव वे एक ग्राम के वाद दूसरा ग्राम पार करते हुए आगे वढ़ने लगे। सभी जगह वे ग्रामवासियों से मिलते थे, उनकी स्थिति का अध्ययन करते थे और उनके दुःखी हृदय को सान्त्वना देते थे। इस प्रकार चलते-चलते वे सर्वोदय सम्मेलन के अवसर पर शिवरामपल्ली पहुँच गये। सम्मेलन में उनकी उपस्थिति ने मानो जान डाल दी। वड़ी अच्छी तरह सम्मेलन की कार्रवाही पूरी हुई।

सन् १९४९ में जब उन्होंने हैदरावाद की यात्रा साम्प्रदायिकता

की आग को शान्त करने के उद्देश्य से की थी तब तेलंगाना की यात्रा का विचार उनके मन में आया था। लेकिन योग नहीं आया। इस बीच वहां की स्थिति और अधिक विगड़ गई थी। इस विगड़ी हुई स्थिति को देखकर विनोवाजी आंख कैसे मूंद सकते थे ? अतः सम्मेलन समाप्त होते ही उन्होंने १५ अप्रेल को तेलंगाना यात्रा की घोषणा कर दी। इस दिन रामनवमी थी। उन्होंने हैदराबाद जेल में कम्यूनिस्ट बन्दियों से २ घन्टे तक बातचीत की। संध्या समय प्रार्थना सभा में कहा:—

"आप जानते हैं कि मैं सर्वोदय समाज का सेवक हूं। सर्वोदय का नाम मेरे लिए भगवान का नाम है। सर्वोदय में सब की चिन्ता आती है तो कम्यूनिस्ट भाई भी मेरी चिन्ता के विषय हैं ही।.......भगवान् की जो इच्छा होगी वही होगा। कोई अहंकार हमारे पास हम नहीं रख सकते। लेकिन हमारा कुछ फर्ज है। मैं तो अपना फर्ज समझता हूं कि हर एक के साथ दिली परिचय कर दूं। हर एक के साथ एक-रूप होने की कोशिश करूं। हरएक की तरफ उसी निगाह से देखूं जिस निगाह से वह खुद अपनी तरफ देखता है। अपनी निगाह से दूसरों को देखना तो न देखने के बराबर ही है। उस मनुष्य की अपने लिए जो दृष्टि होती है उस दृष्टि को पहिचान कर, उसके साथ एकरूप बन कर सोचने की दृष्टि ही सच्ची दृष्टि है।"

कम्यूनिस्टों के साथ इस प्रकार की गहरी सहानुभूति रखकर विनोवाजी ने तेलंगाना की यात्रा प्रारम्भ की। अंग्रेजी शासन के दिनों में नेताओं को हैदराबाद जाने ही नहीं दिया जाता था। वे बल्हारशा तक अपना प्रचार कर सकते थे और फिर बेजवाड़ा में। बीच का प्रदेश तो मानों रनिवास था जिसमें पुरुषों को जाने की इजाज़त नहीं थी। आज़ादी के बाद स्थिति बदली। सबसे पहिले योगीराज भंसाली इस प्रदेश में गये और उन्होंने मानों दूसरे लोगों के लिए भी रास्ता खोल दिया। निज़ाम का शासन समाप्त होने के बाद तो सारी बाधाएं

समाप्त हो गईं। जिन गांवों में सदियों से कोई राष्ट्रीय नेता नहीं पहुँच था, वहां सबसे पहिले विनोबाजी पहुँचे।

तेलंगाना के इस प्रदेश की यात्रा पर सबसे अधिक ज़ोर श्री मृदुलाबहन साराभाई ने दिया था। श्री मृदुलाबहन ने देखा था कि कम्यूनिस्ट उपद्रव के कारण कोई कार्यकर्ता वहां जाने का साहस ही नहीं कर पाता था। सरकारी आफ़िसर भी वहां जाते हुए डरते थे। तेलंगाना के ग्रामों में प्रवेश करते ही विनोबा ने वहां की भीषण बेकारी, दरिद्रता, ताड़ीपान आदि का दर्शन किया। एक ओर वे लोग थे जिनके पास हज़ारों एकड़ जमीन थी और दूसरी ओर वे थे जिनके पास न तो एक एकड़ जमीन थी न कोई कमाई के अन्य साधन।

वहां की स्थिति बड़ी खराब देखकर वे स्वयं कह उठे —"अहिंसा में मेरी अविचल श्रद्धा होने के कारण ही मैं अपना काम वहां करता रहा अन्यथा मैं कम्यूनिस्टों में दाखिल हुआ दिखाई देता। ऐसी वहां की परिस्थिति है।" इस परिस्थिति को सुधारने का प्रयत्न कम्यूनिस्टों और सरकार ने अपने अपने ढंग से किया था लेकिन कोई सुधार नहीं हुआ और असन्तोष की आग उसी तरह जलती रही। विनोबाजी अहिंसा के द्वारा इस समस्या का हल ढूंढना चाहते थे। कम्यूनिस्ट कारनामों के लिए नलगुण्डा और वारंगल ज़िले प्रसिद्ध थे। विनोबाजी ने १८ अप्रेल के दिन नलगुण्डा ज़िले में प्रवेश किया। यहीं से सच्चा दण्डकारण्य प्रारंभ होता था। मार्ग में अनेक स्वागत-समारोहों को स्वीकार करते हुए वे साड़े सात बजे पोचमपल्ली पहुँचे। लोग मार्ग के दोनों ओर दो कतारों में रामधुन गाते हुए खड़े थे। सबसे प्रेमपूर्वक मिलकर विनोबाजी अपने स्थान पर पहुँचे। उन्होंने ग्राम की स्थिति का अध्ययन किया। वहां ३००० व्यक्ति थे, जिनमें २००० भूमिहीन थे। यह ग्राम कम्यूनिस्टों का केन्द्र माना जाता था। इसमें तथा इसके आसपास पिछले दो वर्षों में लगभग २० हत्याएं हो चुकी थीं। कम्यूनिस्टों का बड़ा आतंक था। उन्होंने कह रखा था कि जो लोग उनके बारे में

पुलिस या कांग्रेसवालों को थोड़ीसी भी जानकारी देंगे उन्हें गोली से उड़ा दिया जायगा। यहां १०-१२ कम्यूनिस्ट थे। उन्हीं की खोज के लिए हथियारबन्द पुलिस का डेरा पड़ा था। विनोबाजी साढ़े नौ बजे ग्राम प्रदक्षिणा के लिए निकले। हरिजन बस्ती देखी। हरिजनों ने कहा—"हमें अपने बच्चों के लिए अलग स्कूल चाहिए।" विनोबाजी ने समझाया कि गांव के स्कूल में ही उनके बच्चों को भी जाना चाहिए। यही उचित और हितकर है। अब दूसरा किन्तु मुख्य प्रश्न सामने आया। लोगों ने कहा—"न पूरा काम है न ज़मीन, पेट कैसे भरें ?" गांव में कुल २५०० एकड़ ज़मीन थी। बेचारे हरिजन ज़मीनवालों के यहां मज़दूरी करते थे और इसके बदले वर्ष भर में पैदा हुए अनाज का केवल २०वां हिस्सा, एक कम्बल तथा एक जोड़ी जूता उन्हें मिलता था। उन्होंने कहा—"हमें खेती के लिए ज़मीन चाहिए।"

विनोबाजी बोले—"कितनी ज़मीन चाहिए ?"

आपस में विचार करके मुखिया ने जवाब दिया—"८० एकड़ काफ़ी होगी। ४० एकड़ तरी और ४० एकड़ खुश्की।"

"इतनी से काम चल जायगा ?"

"जी, हम और भी कुछ काम कर लेते हैं।"

"यदि हम आपको ज़मीन दिलवादें तो आप सब मिलकर खेती करेंगे या अलग अलग ?"

थोड़ी देर विचार करके मुखिया ने कहा—"सब मिलकर।"

"तो एक अर्ज़ी लिखकर दे दीजिये। हम आपके लिए कोशिश करेंगे।"

गांववाले भी वहां आगये थे। विनोबा ने उनसे पूछा—"यदि सरकार की ओर से ज़मीन न मिल सके या मिलने में देर लगे तो उस हालत में गांववालों की ओर से कुछ किया जासकता है ?"

एक भाई श्री रामचन्द्र रेड्डी ने कहा—"मेरे स्वर्गीय पिताजी की कुछ ज़मीन इन भाइयों को दीजाय। मैं अपनी तथा अपने पांच

भाइयों की ओर से १०० एकड़ ज़मीन जिसमें ५० एकड़ खुश्की तथा ५० एकड़ तरी है, इन भाइयों को आपके द्वारा भेंट करता हूं।"

उस भाई के इस संकल्प ने मानो भूदान की गंगोत्री का सृजन कर दिया। विनोबाजी को स्वयं यह ख्याल नहीं था कि समस्या का हल इतनी जल्दी मिल जायगा। उन्होंने कहा—"समस्या का हल भी वहाँ सूझ जायगा ऐसा कोई अन्दाज़ पहले से मुझे नहीं था। लेकिन प्रवास के दरमियान शीघ्र ही जमीन का मसला मेरे सामने पेश हुआ। लोगों ने मुझसे ज़मीन मांगी और उनके लिए मुझे ज़मीन मिली। अक्सर ज़मीन मांगना और उसका ऐसे सहज मिल जाना आज तक भी नहीं हुआ।........लेकिन मैंने अत्यन्त विनय पूर्वक ज़मीन मांगना शुरु किया। मैं बयान नहीं कर सकता कि मैंने कितने विनय पूर्वक और भक्ति पूर्वक काम किया और दो माह में ही लोगों ने १२ हज़ार एकड़ ज़मीन दरिद्रनारायण के लिए मुझे देदी।"

उस दिन शाम की प्रार्थना में विनोबाजी ने श्री रामचन्द्र रेड्डी के दान की घोषणा करते हुए कहा:—

"अगर यह भाई वचनपालन नहीं करेंगे तो भगवान के गुनहगार होंगे। पर अगर यह ज़मीन देते हैं तो आप पर जुम्मेदारी है कि सारे के सारे प्रेमभाव से रहें और ज़मीन की सामुदायिक व अच्छी कास्त करें। अगर सब गांव में ऐसे सज्जन मिलते हैं तो कम्यूनिस्टों का मसला ही हल होजाता है।"

अब तो दान की गंगा तेजी से वह निकली। जहां जहां विनोबाजी गये भूमिदान मांगते गये और वह मिलता गया। अपनी यात्रा में उन्होंने भूमिदान के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया। २१ अप्रेल के दिन वाविलापल्ली नामक ग्राम में उन्होंने अपने को वामन अवतार के रूप में प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा—"कम्यूनिस्टों के काम के पीछे उनका जो विचार है उसका सारभूत अंश ग्रहण करने और उस पर अमल करने की दृष्टि से सोचते हुए मुझे वामन अवतार की बात सूझी।

ब्राह्मण तो मैं था ही। वामनावतार मैंने लेलिया और भूमिदान मांगना शुरु कर दिया। पहले पहल ऐसा लगता था कि इसका असर वातावरण पर क्या होगा ? थोड़े से अमृत बिन्दुओं से सारा समुद्र मीठा किस तरह होगा ? पर धीरे धीरे विचार बढ़ता गया। परमेश्वर ने मेरे शब्दों में कुछ शक्ति भरदी। लोग समझ गये कि यह जो काम चल रहा है शान्ति का है और सरकार की शक्ति के परे है। क्योंकि सरकार ने शान्ति क़ायम करने के लिए वहां जो फ़ौज भेज रखी थी उस पर पांच करोड़ रुपया सालाना खर्च होता था। लेकिन ऐसे मसले फ़ौज से हल नहीं हो सकते। जहाँ सिर्फ़ शेरों का शिकार करने का सवाल हो वहां फ़ौज काम कर सकती हैं लेकिन जहां विचार का मुक़ाबला करना हो, वहां विचार से ही वह काम हो सकता है।

वास्तव में तेलंगाना की स्थिति बड़ी खतरनाक थी। सरकार पूरी फ़ौजी शक्ति और रुपया खर्च करके भी स्थिति पर काबू नहीं पासकी थी। जनता त्रस्त थी। दिन में पुलिस तंग करती थी, रात में कम्यूनिस्ट। ग़रीबी और भूखमरी का चारों ओर अखण्ड राज था। किसी को कोई रास्ता नहीं सूझ रहा था। लेकिन विनोबा की सूक्ष्म दृष्टि से मूल बात छिपी न रह सकी। उन्होंने कहा था—"तेलगाना में कम्यूनिस्टों को जो यश मिला उसके कारणों की खोज करने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा कि इस युग का मुख्य सवाल भूमि का ही है। तेलगाना में आज जो समस्या खड़ी हुई है वह कल सारे भारत में उपस्थित हुए बिना न रहेगी। हम सबको उसका मुक़ाबला करना होगा। और इसलिए अहिंसक दल की तैयारी में मैं प्रवृत्त हुआ।" उन्होंने इस प्रश्न के महत्व को समझाते हुए और स्पष्ट रूप से कहा था—"अगर ऐसा होता कि यहां कोई भूख की या चन्द लोगों के संकट निवारण की समस्या होती और मैं दान मांगता, तो थोड़ा थोड़ा देने से भी काम चल जाता परन्तु यहां तो एक राजकीय समस्या हल करनी है, एक सामाजिक समस्या सुलझानी है जो न केवल तेलंगाना की है, न केवल हिन्दुस्तान की है

बल्कि पूरी दुनिया की है और जहां ऐसी राजनैतिक व सामाजिक क्रान्ति करने की बात है, वहाँ तो मनोवृत्ति ही बदल देने की ज़रूरत होती है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि तेलंगाना में एक समस्या सहज रूप में विनोबाजी के सामने आई और उसका अचूक इलाज भी उन्हें सहज ही सूझा। इस सहज सूझे हुए हल ने उनको यह विश्वास करा दिया कि यदि इसी तरीके से देश की समस्या सुलझाई जासके तो वह एक महान अहिंसक क्रान्ति ही होगी। अपनी अविचलित श्रद्धा और दृढ़ विश्वास के बल वे काम करते रहे और प्रेम तथा दान का एक पवित्र वातावरण बनाकर वहां की सारी स्थिति ही बदल दी। ग़रीब, अमीर, विद्वान, निरक्षर सब इस यज्ञ में शामिल हुए और सबने उसे सफल बनाने में जी जान से प्रयत्न किया। इसी को देखकर विनोबा ने कहा था—"मुझे वहां मानवता का साक्षात्कार हुआ।" कई बिछड़े हुए हृदय मिले, लोगों को आत्म-परिचय हुआ और पारस्परिक सद्भावना, प्रेम, सहानुभूति और एकता का दिव्य वातावरण तैयार हुआ।

तेलंगाना में लगभग सवादो महीने तक विनोबाजी ने भ्रमण किया। उनको वहाँ लगभग तेरह हज़ार एकड़ ज़मीन दान में मिली। उनके बाद भी भूदान का काम वहां चलता रहा और ज़मीन मिलती रही।

तेलंगाना से लौटकर विनोबाजी अपने उसी कांचनमुक्ति योग में लग गये। तेलंगाना का भूमिदान यज्ञ इस कांचनमुक्ति योग का ही आगे बढ़ा हुआ क़दम था। यद्यपि तरीके भिन्न थे तथापि दोनों का लक्ष्य एक था अहिंसक समाज की रचना। वे कहते हैं कि भूमिदान का श्रेय इसी साम्ययोग की साधना को है। तेलंगाना से लौटने पर परंधाम में उन्होंने कहा था—"यदि परंधाम में चलने वाला साम्ययोग का प्रयोग सफल होता है तो इस समस्या का हल हमें मिल जाता है। इसलिए भूदान से भी अधिक महत्व के इस काम में मुझे अब लग जाना है। तेलंगाना की यात्रा के पहिले भी मेरा यह प्रयोग जारी था और तेलंगाना में जो कुछ काम हो सका वह इस प्रयोग के कारण ही हो सका।"

:: २० ::

उत्तर भारत की यात्रा

"मेरी यह यात्रा परमेश्वर ने मुझे सुझाई है ऐसा ही मुझे मानना पड़ता है। छः मास पहले मुझे खुद को ऐसा ख्याल नहीं था कि जिस काम के लिए मैं आज गाँव-गाँव द्वार द्वार घूम रहा हूं वह कार्य मुझे करना होगा, उसे परमेश्वर मुझे निमित्त बनाएगा।" —विनोबा

"यह आन्दोलन बुनियादी तौर पर क्रान्तिकारी है—गुल गपाड़े के अर्थ में नहीं बल्कि इस अर्थ में कि यह समाज के अन्दर बुनियादी तब्दीलियां ला रहा है और ऐसी हवा पैदा कर रहा है जिससे हिन्दुस्तान के सबसे बड़े सवाल का हल मुमकिन है। यह वह तरीक़ा है जिसे विद्वान् अर्थशास्त्री शायद समझ ही नहीं सकते।"

—पं० जवाहरलाल नेहरू

तेलंगाना की यात्रा में विनोबाजी ने यह अनुभव किया था कि दुनिया में अब यदि किन्हीं दो शक्तियों का मुकाबला होने वाला है तो वह साम्यवाद और सर्वोदय की विचारधारा का। लेकिन साम्यवाद की विचारधारा तो काफ़ी व्यापक बन चुकी है जबकि सर्वोदय की विचार धारा क्षितिज पर उदय ही हो रही है। उसे शक्तिशाली और व्यापक बनाने के लिए काफ़ी काम करना होगा। केवल उस पर लिखते रहने या चिन्तन करने से काम नहीं चल सकता। उसे सफल बनाने के लिए भगीरथ प्रयत्न करना होगा। कांचनमुक्ति योग के रूपमें विनोबाजी ने उसका श्रीगणेश तो कर दिया था और तेलंगाना में जो कुछ सफलता मिली उसकी बुनियाद भी वे इसी काम को मानते थे लेकिन कांचनमुक्ति स्पर्धा रहित समाज की रचना का स्वप्न तो तभी पूरा हो सकता था जबकि अहिंसा की शक्ति पूरी तरह प्रकट हो। अतः विनोबाजी ने आश्रम में आते ही कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन किये।

अब तक आश्रमवासी शरीर-श्रम के द्वारा जो कुछ उत्पादन करते थे उसी से निर्वाह करते थे लेकिन विकास योजनाओं के लिए बाहर से भी रुपये की सहायता ले लेना बुरा नहीं समझा जाता था। विनोबाजी ने इस परावलम्बन के मूल पर भी आघात किया। उन्होंने कहा कि आगामी अक्टूबर मास में गांधी जयन्ती के दिन (दो अक्टूबर) से विकास योजनाओं के लिए भी बाहर से पैसा नहीं मंगवाया जायगा। दूसरी महत्वपूर्ण बात थी ब्रह्मचर्य की प्रतिज्ञा। स्वावलम्बी साम्ययोग की साधना के लिए सभी साथी सर्वस्व समर्पण की भावना से तो काम कर ही रहे थे उसे और शक्तिशाली बनाने के लिए उन्होंने यह निश्चय किया कि वे सब आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करेंगे। इस निश्चय के द्वारा माना उन्होंने कार्यकर्ताओं को एक अजेय कवच पहना दिया। इस प्रकार के आगे बढ़े हुए कुछ परिवर्तन उन्होंने गोपुरी और सेवाग्राम में भी किये और वहाँ के प्रयोगों को अधिक प्रखर एवं शक्तिशाली बना दिया।

इसी बीच पंचवर्षीय योजना का स्वरूप सामने आया। योजना समिति के एक सदस्य श्री पाटिल विनोबाजी से मिलने आये और उन्होंने योजना के सम्बन्ध में विस्तार पूर्वक बातचीत की। बहुत सी बातों में विनोबाजी का मतभेद था अतः उन्होंने योजना की तीव्र आलोचना की। इसी बातचीत के बाद एक दिन उन्होंने कार्यकर्ताओं की एक सभा में कहा था—"हमारे विचारों और नेशनल प्लानिंग की योजना में ऐसा मामूली मतभेद नहीं है कि दस पांच लकीरें इधर उधर करने से निभ जाय। हमारे विचारों को यदि वे मानें तो उन्हें सारी योजना ही बदलनी होगी।" उनकी इस आलोचना ने एक हलचल पैदा कर दी। पं० नेहरू ने उन्हें देहली आकर अपने विचार योजना-समिति के सामने रखने का निमन्त्रण दिया। यद्यपि अभी साम्ययोग के काम को ऐसा ही छोड़कर कहीं जाने का विचार विनोबाजी के मस्तिष्क में नहीं था तथापि इस निमन्त्रण ने देहली जाने का प्रश्न उपस्थित कर दिया।

कार्यकर्ताओं की एक सभा में उन्होंने इस निमन्त्रण के सम्बन्ध में कहा—"जाना या न जाना मैंने अभी तय नहीं किया है। शायद जाऊं भी। सम्भव है दिल्ली जाने से विशेष लाभ हो या न हो परन्तु हमारा दृष्टिकोण क्या है यह तो एक बार संयोजन समिति के सदस्यों को मालूम हो जायगा। हमने अपनी बात समझाई नहीं, ऐसा दोष हम पर नहीं रहेगा।"

विनोबा के इस कथन में देहली जाने की संभावना का संकेत था लेकिन उनके आस-पास के लोग यह समझ रहे थे कि जिस तल्लीनता के साथ वे साम्ययोग के काम में लगे हुए हैं उसे देखते हुए ऐसा लगता है कि वे यदि देहली गये तो वहां से शीघ्र ही लौट आवेंगे। छः और ७ सितम्बर के दिन सेवाग्राम में आस-पास के प्रमुख कार्यकर्ताओं की एक सभा हुई। विनोबाजी भी गये। वर्धा के आसपास के ग्रामों में साम्ययोग की दृष्टि से कोई ठोस कार्य करने का विचार था। वे भी अब यह अनुभव करने लगे थे कि जब तक कोई ठोस कार्य नहीं होगा, सर्वोदय की विचार धारा का बल प्रकट नहीं होगा। वह ठोस कार्य इस समय साम्ययोग के विचार को कार्यान्वित करने के अतिरिक्त और क्या हो सकता था। अतः उन्होंने यह तय किया कि २०—२५ ग्रामों में सारी शक्ति लगाकर काम किया जाय। विनोबा तो यही चाहते थे अतः उन्होंने सारी चर्चा में बड़ी दिलचस्पी ली और उस कार्य का मार्ग-दर्शन करना स्वीकार कर लिया। श्री किशोरलाल मश्रूवाला, श्री मन्नारायण अग्रवाल, श्रीधर हरिवत्ते, मनोहर दीवाण आदि वर्धा के प्रमुख व्यक्ति इसमें जुटने को तैयार थे। ऐसा लग रहा था कि विनोबाजी इस काम को गति देने में ही जुट जायंगे और कहीं बाहर जाने का विचार नहीं करेंगे। लेकिन सभा समाप्त होने के बाद ही विनोबाजी ने देहली जाने का निश्चय प्रकट कर दिया। उन्होंने वाहन का परित्याग हमेशा के लिए तो किया नहीं था अतः ख्याल था कि वे पैदल जाने का आग्रह न रखेंगे लेकिन दूसरे दिन प्रातःकाल उन्होंने

वल्लभस्वामी से कहा कि वे पैदल यात्रा करना ही निश्चित कर चुके हैं। दिन भी तय होगया है और वह है १२ सितम्बर। साथियों में हलचल मच गई। उन्होंने आग्रह किया कि वाहन का उपयोग कर लेना चाहिए लेकिन विनोबा के निश्चय कब बदलते हैं? उन्होंने कहा—"आज जवाहरलाल बुलाते हैं इसलिए वाहन (सवारी) का उपयोग कर लें। कल और कोई बुलावेगा और उसका काम भी मुमकिन है उसकी दृष्टि से महत्वपूर्ण हो फिर उसे ना कैसे कहा जाय।" कार्यकर्ता चुप होगये। उन्होंने आगे कहा—"मुझे प्रवास के लिए निकलना तो था ही पंडितजी के पत्र से केवल दिशा तय होगई।"

साथियों ने कहा नये काम को संगठित करने की दृष्टि से उन्हें कम से कम सात आठ दिन तो यहाँ रहना ही चाहिए। लेकिन ११ सितम्बर को विनोबाजी का जन्म दिवस था। इस दिन वे ५७ वें वर्ष में पदार्पण कर रहे थे। उन्होंने कहा—"११ सितम्बर को नया वर्ष लग रहा है नये वर्ष पर नया संकल्प करना चाहिए।" सेवाग्राम से स्नेह भीनी विदाई लेकर विनोबाजी परंधाम आये। दो तीन दिन बाद ही उत्तर भारत की यात्रा प्रारम्भ करना था। अतः यात्रा प्रारंभ करने के पहले वे अपने लाड़ले सुरगांव गये और वहाँ आधा घन्टा ठहर कर लोगों से मिले। लोगों के हृदय से स्नेह उमड़ रहा था। उन्होंने उसी समय साठ एकड़ जमीन भेंट की। इधर वर्धा में भी भूमिदान की चर्चा प्रारंभ हुई। वहां के कार्यकर्ता भी विनोबाजी को खाली हाथ नहीं जाने देना चाहते थे। एक खोजा भाई अपनी ६५ एकड़ जमीन बेचने निकला था जब उसे मालूम हुआ कि विनोबाजी भूमिदान स्वीकार करते हैं तो वह पवनार आया और उसने अपनी सारी भूमि दान कर दी। गोपुरी में दत्तोबा दास्ताने ने अपनी सारी भूमि १९ एकड़ विनोबाजी को समर्पित कर दी। वर्धावालों ने ६०० एकड़ जमीन एकत्र करके दी और इस प्रकार उन्होंने सादगी और पवित्रता के वातावरण में विनोबा की वर्षगांठ मनाकर उन्हें विदाई दी।

दूसरे दिन १२ सितम्बर को प्रातः कालीन प्रार्थना के बाद विनोबाजी ने प्रस्थान किया। सबसे पहले वे अपने उसी भरत राम मन्दिर में गये। "धर्म जागो निवृतिचा" वाला अपना प्रिय गीत उन्होंने गाया और रामधुन के साथ क़दम बढ़ा दिये। वर्धा से सेल्डोह जाते हुए सेलू में कुछ मिनिट रुके। यहां ३० एकड़ जमीन मिली। सेल्डोह में ४० एकड़। अब तो भूमिदान का कार्यक्रम अखण्ड रूप से चालू हो गया। जहां जहां पहुँचे पावस की बूंदों की तरह भूमिदान बरसने लगा। २½ मास तक वर्धा में बठकर विनोबाजी ने ऐसा अनुकूल वातावरण तैयार कर लिया था कि लोगों का यह तथाकथित भ्रम दूर होगया कि विनोबाजा को तेलंगाना में जो ज़मीन मिली वह केवल कम्यूनिस्टों के दबाव से या परिस्थिति की विवशता से। भूदान तो मिलने ही लगा, वातावरण भी बदलने लगा। प्रारंभ के सात दिनों में उन्होंने १११ मील की यात्रा की और इसमें २००० एकड़ जमीन प्राप्त हुई। तेलंगाना में प्रतिदिन का औसत २०० एकड़ था लेकिन अब वह बढ़ता हुआ दिखाई देरहा था। इस यात्रा में एक और विशेषता थी। तेलंगाना की यात्रा के समय ग्रीष्म ऋतु थी। चारों ओर भूरे पर्वत दिखाई देते थे लेकिन अब वर्षा ऋतु थी और चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई दे रही थी। बड़ा ही सुन्दर दृष्य था। तेलंगाना में रचनात्मक कार्य कुछ भी नहीं हुआ था लेकिन मध्यप्रदेश तो इस दृष्टि से काफ़ी आगे था। पहिले ही पहिले कुमारप्पाजी का सेल्डोह आश्रम आया फिर टाकली में योगीराज भनसालीजी के दर्शन हुए और आगे भी ऐसे आश्रम मिलते रहे। इस पवित्र और सुन्दर वातावरण में भूदान की गंगा उत्तरोत्तर विकसित होने लगी। सागर में ६५० एकड़ ज़मीन मिली। भारत के फ़ूड कमिश्नर श्री आर. के. पाटिल ने अपनी २२५ एकड़ ज़मीन भेंट की। यह जमीन उनकी सर्वस्व थी। मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध ज़मींदार श्री किल्लेदार ने २५ एकड़ ज़मीन दी। इस ज़मीन के बारे में उनका दावा था कि इसमें उनसे ज्यादा उपज कोई नहीं दे सकता

उसके एक एकड़ की कीमत एक डेढ़ हज़ार रुपया थी। लेकिन इससे भी अधिक आनन्द और आश्चर्य तब होता था जब ग़रीब किसान स्त्री पुरुषों के झुण्ड के झुण्ड आते थे और अपनी दो दो चार चार बीघा ज़मीन की छोटीसी पूंजी में से भी एक एक दो दो एकड़ भूमि दान कर के अपने को कृतार्थ मानते थे और प्रसन्न मन से लौट जाते थे।

मध्यप्रदेश में भूदान के काम को आगे बढ़ाने का उत्तरदायित्व वहां की प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष सेठ गोविन्ददास ने अपने ऊपर लिया और उसके लिए एक योजना बनाई। इसके बाद जब वे मध्यभारत की सीमा में पहुँचे तो वहां भी भूमिदान की हलचल प्रारंभ हुई। राजस्थान और विन्ध्यप्रदेश के कुछ भाग में होते हुए वे उत्तरप्रदेश की सीमा में पहुँचे। मथुरा में उत्तरप्रदेश के सैंकड़ों कार्यकर्ता आगये थे। सबने मिलकर पांच लाख एकड़ ज़मीन पहली किश्त के रूप में देने का संकल्प किया। बाबा राघवदास और आचार्य कृपलानी जैसे बड़े बड़े नेता भी उपस्थित थे। उन्होंने अपने ऊपर उस कार्य का उत्तरदायित्व लिया।

पूरे दो मास की यात्रा के बाद १३ नवम्बर को विनोबाजी देहली पहुँचे। देहली के अनेक प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने सात मील पैदल चलकर सीमा पर विनोबाजी का स्वागत किया। लगभग सवा सौ रचनात्मक कार्यकर्ताओं ने यहां विनोबाजी को सूत की गुण्डिया समर्पित करके उन का स्वागत किया। सबका अभिवादन एवं सूत की गुण्डियां स्वीकार कर के विनोबाजी आगे बढ़े। एक विशाल जन समूह उनके पीछे था और जय जयकार बोलकर वातावरण में उत्साह और पवित्रता भर रहा था। बड़ा ही सुन्दर दृष्य था। देहली में उनके दर्शन के लिए अपार जन समूह उमड़ पड़ा। विनोबाजी ने बड़े प्रेम से हाथ जोड़कर सबका अभिवादन स्वीकार किया और धीरे धीरे चलकर बापू की समाधि के पास राजघाट पहुँच गये। समाधि की परिक्रमा करके प्रणाम किया र ५-७ मिनिट तक चुपचाप खड़े रहे। लोग कुछ सुनना चाहते थे और विनोबा कुछ कहना भी चाहते थे लेकिन उनका हृदय इतना भर

आया था कि शब्द नहीं निकल सके। आँखों से आंसुओं की धारा वह निकली और सारी जनता मानो उन प्रेमाश्रुओं में वह गई। अनेक व्यक्तियों के हृदय भर आये। उनकी आँखों में भी आंसू झलक पड़े। जब आँसुओं का वेग रुका तो उन्होंने कहा—"अब जब मैं दिल्ली आ पहुँचा हूँ जहां हिन्दुस्तान की राजधानी है और जहां इस महापुरुष की समाधि है तो यहां सब लोग मुझे दिल खोलकर जमीन देंगे और दरिद्र-नारायण की झोली प्रेम से भर देंगे ऐसी मेरी आशा है।"

समाधि के निकट ही उनके रहने के लिए व्यवस्था की गई थी। उनके लिए एक कुटी बना दी गई थी और उनके साथियों के लिए तम्बू लगा दिये गये थे। दोपहर में पत्र प्रतिनिधियों से जब वे भेंट कर रहे थे तब राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद आये और उन्होंने भूमिदान किया। दूसरे दिन खाद्यमन्त्री श्री मुन्शी और पं० नेहरू आये। फिर ३-४ दिन तक योजना समिति के सदस्यों से बातचीत होती रही। उनके दो प्रमुख सुझाव थे—पहला यह कि सोच विचार एक अवधि तय कर ली जाय जिसके बाद बाहर से अनाज का एक भी दाना न मंगवाया जायगा और दूसरे यह कि प्रत्येक देशवासी को काम दिया जायगा। कोई भी बेकार नहीं रहेगा।

विनोबाजी ११ दिन तक दिल्ली में रहे। सुबह से लेकर शाम तक वे विभिन्न कार्यक्रमों में व्यस्त रहते। कभी महिला सम्मेलन, कभी हरिजन सेवक सम्मेलन, कभी विद्यार्थी सम्मेलन, कभी कांग्रेस कार्य-कर्ता सम्मेलन और कभी सम्वाददाता सम्मेलन होते रहे। विनोबाजी ने सबसे भूमिदान यज्ञ में जुट जाने की बात कही। उन्होंने ग्रामीण कार्यकर्ताओं से कहा कि उन्हें देहातों को स्वयं पूर्ण बनाने के काम में लग जाना चाहिए। विद्यार्थियों और महिलाओं से कहा यदि उनके पास ज़मीन नहीं है तो श्रमदान दें और लोगों में प्रेम और एकता का वातावरण तैयार करें। कांग्रेस के कार्यकर्ताओं से कहा कि जब तक कांग्रेस के सामने कोई त्याग और सेवा का काम नहीं आता तब तक

उसकी शुद्धि नहीं हो सकती। राष्ट्रभाषा प्रचार समिति के कार्यकर्ताओं से कहा कि राष्ट्रभाषा हिन्दी का प्रचार करना ठीक है। लेकिन उन्हें दक्षिण भारत की एक दो भाषा भी अवश्य सीखना चाहिए। १८ और १९ तारीख को वे किशनगंज की मजदूर वस्ती और वापूनगर की सांसी वस्ती में भी गये। विनोवाजी ने सरकार से आग्रह करके सांसियों पर लगे हुए प्रतिवन्धों को हटवा दिया। वहुत से सांसियों ने आगे से चोरी, डकैती आदि न करने की प्रतिज्ञा उनके सामने की।

२४ नवम्बर के दिन प्रातःकाल विनोवाजी प्रार्थना के वाद गांधीजी की समाधि को प्रणाम करके आगे वढ़ चले। कुछ लोगों ने कहा चुनाव के दिन हैं कुछ दिन रुक जाना चाहिए लेकिन विनोवाजी कहां रुकने वाले थे। जव सूर्य निरन्तर चलता रहता है, हवा निरन्तर वहती रहती है और गंगा यमुना विना रुके वहती रहती है तव विनोवा की यात्रा कैसे रुक सकती थी। वे आगे वढ़ गये और उत्तर प्रदेश में भी उसी प्रकार सफलता मिलने लगी। एक दिन चलते हुए एक साइकल वाले से धक्का लग गया। वड़ी चोट लगी। संदेह हुआ कि कहीं यात्रा स्थगित न करनी पड़े लेकिन विनोवाजी के अपूर्व मनोवल के कारण एक दिन भी यात्रा स्थगित नहीं हुई। वे ज़ख्मी पैर से ही चलते रहे। जव चलना असंभव होगया तो भक्तों और साथियों ने उन्हें कुर्सी पर वैठाकर अपने कन्धों पर उठाया और यात्रा चालू रखी। भारत सरकार के उपमन्त्री श्री महावीर त्यागी ने भी बड़े उत्साह से इसमें सहयोग दिया।

उत्तर प्रदेश की यात्रा करते करते ११ अप्रेल को वे काशी पहुँचे। अव प्राप्त भूमि का योग ८८ हज़ार तक पहुँच गया था। आगामी दो दिनों में वह पूरा एक लाख होगया। इन दिनों सेवापुरी में सर्वोदय सम्मेलन हुआ। सम्मेलन के पहिले तक जो एक लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का लक्ष निश्चित हुआ था वह पूरा होगया था। सम्मेलन में आगे के लिए कार्यक्रम वना और उत्साह से कार्य प्रारंभ होगया। सेवापुरी के पहिले

तक जहां एक लाख एकड़ भूमि मिली थी वहां उसके वाद ढाई महिनों में ढाई लाख एकड़ भूमि मिली। इस ढाई मास की यात्रा के वाद जव विनोवाजी काशी पहुँचे तो वहां एक विजयी लोकनेता की तरह उनका स्वागत वड़ी धूमधाम से हुआ। ऐसा प्रतीत होता था मानो सारे देश की ओर से उन्हें श्रद्धाञ्जलि अर्पित की जा रही है।

आगामी ढाई मास तक काशी ही निवास करना था। क्योंकि वर्षा के कारण यात्रा करना वड़ा कठिन हो रहा था। अपने काशी निवास के दिनों में उन्होंने 'स्वच्छ काशी आन्दोलन' प्रारम्भ किया और लगभग पांच हज़ार व्यक्तियों ने काशी की सफ़ाई के कार्यक्रम में भाग लिया। ११ सितम्वर के दिन विनोवाजी को उत्तर प्रदेश ने विदाई दी गई। अव वे विहार की ओर चल पड़े। यही दिन उनकी वर्षगांठ का दिन था। ठीक इसी दिन एक वर्ष पहले वे पवनार से दिल्ली के लिए रवाना हुए थे। उनको श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने के लिए प्रान्त के लगभग साढ़े पांच सौ कार्यकर्ता एकत्र हुए थे। विनोवा ने अपना यह निश्चय प्रकट किया कि जव तक भूमि की समस्या हल नहीं होगी वे आश्रम में नहीं लौटेंगे। इस निश्चय ने मानों भूदानयज्ञ की हलचल को चौगुनी गति प्रदान करदी।

विहार में भूमिदान का काम तेज़ी से प्रारम्भ हुआ। सन् १९५३ के अप्रेल मास में चाण्डिल में सर्वोदय सम्मेलन हुआ। वहां विनोवाजी ने जो भाषण दिया वह सर्वोदय के घोषणा-पत्र के नाम से प्रसिद्ध हो गया है। देश के वातावरण पर उसका अनोखा असर हुआ। जो लोग कल तक भूमिदान आन्दोलन की मज़ाक उड़ाते थे वे सव श्रद्धा से अपना सिर हिलाने लगे। देश के सव राजनैतिक दलों के रुख में परिवर्तन हो गया। कांग्रेस दल की ओर से दिल्ली में उपराष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में एक सभा हुई जिसमें पं० जवाहरलाल नेहरू ने भूमिदान के आन्दोलन की प्रशंसा की और कहा कि देश के सव लोगों को इसमें सहयोग देना चाहिए। प्रजा समाजवादी दल के

नेता जयप्रकाश बाबू तो अन्य काम छोड़कर भूदान में ही पूरी तरह जुट गये। साम्यवादी भी सोचने के लिए विवश हुए। अब हज़ारों एकड़ ज़मीन प्रतिदिन मिलने लगी थी। इतना ही नहीं उत्तरप्रदेश का मंगरोठ और बिहार का सियाडीह जैसा ग्राम पूरा का पूरा मिल गया था। ऐसी स्थिति में वे सोचने लगे कि इस आन्दोलन में कुछ दम अवश्य है। दूसरी ओर डा० जे० सी० कुमारप्पा तथा मीरां बहन ने बताया कि वे आन्दोलन से अलग क्यों हैं? उन्होंने अपनी अपनी शंकाएं रखीं और उनका निराकरण हुआ। श्री शंकरराव देव, जय प्रकाश बाबू, गोपबन्धु, दादा धर्माधिकारी, सेठ गोविंददास, रविशंकरजी महाराज, बाबा राघवदास, तथा अन्य अनेक कार्यकर्ता जगह जगह भूमिदान के काम में जुट गये। उन्होंने देश में जगह जगह पैदल यात्रा प्रारम्भ की और चारों ओर से भूमिदान की वर्षा होने लग गई।

तेलंगाना में जब विनोबाजी को थोड़ी थोड़ी ज़मीन मिल रही थी तब प्रजासमाजवादी दल के एक नेता डा० राम मनोहर लोहिया ने कहा था कि यदि इस तरह विनोबाजी तीन सौ वर्ष तक घूमते रहेंगे तब कहीं सब भूमिहीनों को भूमि मिलेगी। लेकिन स्थिति तेज़ी से बदली। अप्रैल १९५२ तक एक लाख एकड़ भूमि मिल गई और मार्च १९५३ तक आठ लाख। जून में यह संख्या १४ लाख एकड़ तक पहुँच गई और बाद के इन तीन चार महीनों में २५ लाख एकड़ से ऊपर, पहुँच गई है। इससे स्पष्ट है कि यह संख्या गणित के हिसाब से नहीं बढ़ रही है। इसीलिए विनोबाजी कहते है कि सन् ५७ के अन्त तक ५ करोड़ एकड़ ज़मीन मिलनी चाहिए। जिस गति से काम आगे बढ़ता जारहा है उसे देखते हुए ऐसा लगता है कि जिसे कल स्वप्न कहा जा रहा था वह पूरा होकर ही रहेगा। तेलंगाना में प्रतिदिन २०० एकड़ की औसत थी, उत्तर प्रदेश में वह हज़ार से ऊपर पहुँच गई और अब बिहार में वह लाख पर पहुँचती दिखाई देती है। ऐसे दिन अक्सर आते हैं जब एक लाख एकड़ भूमि भी मिल जाती है। जादू

वही है जो सिर पर चढ़कर बोले। विनोबा का जादू अब सिर पर चढ़कर बोलने लगा है।

भूदान का यह आन्दोलन विनोबा के ही जीवन की तरह सतत विकासशील है। उसका प्रारम्भ भूमि मांगने से हुआ लेकिन जिस तरह नदी अपने उद्गम स्थान पर छोटी होती है और धीरे धीरे बढ़ती जाती है उसी तरह भूदान आन्दोलन भी प्रतिदिन व्यापक, विशाल और शक्तिशाली बनता जा रहा है। बैलदान, हलदान, कूपदान, श्रमदान धीरे धीरे उसके साथ जुड़ते गये और अब तो वे सम्पत्तिदान और बुद्धिदान की भी मांग कर रहे हैं। अपनी प्रतिदिन की यात्रा में खेतों में काम करने के लिए भी वे समय निकाल लेते हैं और गांव के लोगों के साथ वहां शरीरश्रम भी करते हैं। 'सबै भूमि गोपाल की' कह कर वे अब 'सम्पत्ति सब रघुपति के आही' कह रहे हैं।

भूमिदान आन्दोलन को समझने के लिये विनोबाजी द्वारा की हुई व्याख्या को समझना होगा। दान शब्द की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा है—"भूमिदान में 'दान' शब्द आता है। उससे परहेज करने की जरूरत नहीं है। "दानम् सविभागः" दान याने सम्यक् विभाजन। यह है शंकराचार्य जी की दान की व्याख्या। उसी अर्थ में हम इस शब्द का प्रयोग करते हैं। जिसको जमीन मिलेगी वह मुफ्त खाने वाला नहीं है। वह जमीन पर मेहनत मशक्कत करेगा, अपना पसीना उसमें मिलायगा। तब खा सकेगा। इसलिए उसे दीन बनाने का कारण नहीं है। उसका अपना अधिकार हम उसे दिला रहे हैं।"

विनोबाजी का भूमि मांगने का तरीका बड़ा हृदयग्राही है। वे विनय से, प्रेम से और वस्तुस्थिति समझा कर जमीनमांगते हैं। इस सम्बन्ध में उनके तीन सूत्र हैं:—

"(१) हमारा विचार समझने पर अगर कोई नहीं देता है तो उससे हम दुःखी नहीं होते हैं क्योंकि हम मानते हैं कि जो आज

नहीं देता है, वह कल देनेवाला है। विचार बीज उगे बिना नहीं रहता ।

(२) हमारा विचार समझकर अगर कोई देता है।तो उससे हमें आनन्द होता है क्योंकि उससे सब दूर सद्भावना पैदा होती है ।

(३) हमारा विचार समझे बगैर किसी दबाव के कारण अगर कोई देगा तो उससे हमें दुःख होगा । हमें किसी तरह ज़मीन बटोरना नहीं है । बल्कि साम्ययोग और सर्वोदय की वृत्ति निर्माण करनी है ।"

वे लोगों से कहते हैं:—"तुम्हारी एक सन्तान होती तो तुम उसका पालन पोषण करते या नहीं ? इसलिए मुझे अपनी एक सन्तान मान लो । तुम्हारे चार बच्चे हों तो मुझे पांचवां मानलो और मेरा अधिकार मुझे देदो । मेरा किसी पर कोई दबाव नहीं है और न ज़मीन देकर कोई किसी पर एहसान ही करता है । यह तो हक की बात है ।"

"जहाँ मैं दान लेता हूँ वहां हृदय परिवर्तन, भ्रातृ-वात्सल्य, मातृ-भावना, मैत्री और ग़रीबों के लिये प्रेम की आशा करता हूँ। जहां दूसरों के फ़िक्र की भावना जागती रहती है वहां समत्व बुद्धि प्रकट होती है, वहां वैरभाव टिक नहीं सकता....। यह भूदान-यज्ञ अहिंसा का एक प्रयोग है । मैं तो निमित्त मात्र हूँ ।........मैं ज़मीन मांगता फिरता हूँ । किसी रोज़ कम मिलती है तो मुझे यह नहीं लगता कि कम मिली । मुझे यह लगता है कि जो भी मुझे मिलता है केवल प्रसादरूप है । आगे तो भगवान् खुद अपने हाथों से भर भर कर देने वाला है और जब वह अनन्त हाथों से देने लगेगा तब मेरे ये दो हाथ निकम्मे और अपूर्ण सिद्ध होंगे ।" सचमुच आज ईश्वर उन्हें अनन्त हाथों से देना प्रारंभ कर रहा है ।

विनोबाजी की मान्यता है कि जिस तरह हवा पानी आदि पर किसी का अधिकार नहीं है, प्रकृति ने उन्हें सबके लिए समान रूप से बनाया है उसी प्रकार भूमि पर भी हज़ारों लाखों लोगों को वंचित कर के किसी एक का स्वामित्व क्यों हो ?

विनोबा की यह अपील लोगों के दिलों को छू लेती है। उनके व्यक्तित्व में तपस्या का इतना बल है, वाणी में इतनी ओजस्विता है कि कोई उनका विरोध कर ही नहीं पाता। जब वे बोलते हैं तो ऐसा लगता है मानो कोई पुण्य पुरातन ऋषि बोल रहा है। उनकी वाणी में वर्तमान समस्या का हल तो मिलता ही है, वेदों, उपनिषदों और सन्तों के ऐसे पवित्र वचन सुनने को मिलते हैं जो अपनी धारा में बहाये बिना नहीं रहते। माता के प्रेम के साथ साथ आध्यात्मिकता का ऐसा अपूर्व मिश्रण उनके शब्दों में होता है कि जन समुदाय मन्त्र मुग्ध सा हो जाता है। ग़रीबों और दरिद्रनारायण के इस प्रतिनिधि के पहुंचते ही ग्राम में भी हज़ारों लोगों की भीड़ एकट्ठी हो जाती है। लोगों को ऐसा लगता है मानों उनका मुक्तिदाता—मसीहा ही आगया है। इन ग़रीबों और शोषितों के प्रतिनिधि बनकर ही ये घर घर अलख जगाते फिर रहे हैं।

:: २१ ::

सेवापुरी और चाण्डिल सम्मेलन

"अब तक कार्यकर्ता इतना ही समझते थे कि भूदान एक नया काम आया और उनके कामों में एक काम की वृद्धि हुई लेकिन चाण्डिल सम्मेलन में जो चर्चा हुई उससे यह बात स्पष्ट होगई कि हमारे चालू कामों में से जितने काम हम समेट सकते हैं उतने समेट कर भूदानयज्ञ में कूदना पड़ेगा। सिर्फ अनेक कामों में एक की वृद्धि नहीं हुई है बल्कि अनेक कामों को उदर में समाजने वाला काम उपस्थित हुआ है।"

—विनोबा

सेवापुरी और चाण्डिल के सम्मेलन अहिंसक क्रान्ति के इतिहास में

महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। तेलंगाना में जिस भूमिदान यज्ञ का प्रारम्भ हुआ वह अब तक विनोबाजी तक ही सीमित था। वे जहाँ जाते वहाँ लोगों से अपील करते और उन्हें भूमि मिलती थी। उत्तर भारत की यात्रा के समय भिन्न भिन्न स्थानों पर उस प्रान्त या ज़िले के कार्यकर्ता एकत्र हुए और उन्होंने इस काम को आगे बढ़ाने के लिए योजनाएं बनाईं। लेकिन उनका यह काम प्रायः इतना ही होता था कि विनोबाजी जिन ग्रामों मे जायं, वहाँ दो चार दिन पहले पहुँचकर उसकी भूमिका तैयार करें और कुछ अधिक भूमि दान करवा दें। उन्होंने इन ग्रामों में भूदान के प्रति रुचि और उत्साह पैदा करने वाला वातावरण बनाया। उनके इस काम से भूदान के काम को गति अवश्य मिली। अब पहले से प्रति-दिन का औसत काफ़ी बढ़ गया लेकिन भूदान का काम विनोबाजी तक ही सीमित रहा। किसी अन्य व्यक्ति ने उनकी भाँति यात्रा करके भूदान के काम में जुटने का प्रयत्न नहीं किया।

सेवापुरी के सर्वोदय सम्मेलन में यह कमी दूर हुई। अब उसने एक देशव्यापी आन्दोलन का रूपग्रहण किया और चाण्डिल का सम्मेलन तो और भी आगे बढ़ गया। उसने तो सारे रचनात्मक कामों को पीछे छोड़ दिया। उसने रचनात्मक कार्य में लगे हुए लोगों को यह विश्वास करा दिया कि 'चालू कामों में से जितने कामों को वे समेट सकते हैं, उन सब को समेट कर भूदानयज्ञ में कूद पड़ें।' अब भूदान आन्दोलन आगे बढ़कर सारे देश का स्वर बन गया, सारे देश पर छागया।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि तेलंगाना में जो बीज बोया गया था, उत्तर भारत की यात्रा में उसमें कोपलें फूटीं और वह पुष्पित और पल्लवित होता हुआ दिखाई दिया। सेवापुरी में उसकी सौरभ सारे देश में फैली और चारों ओर उसके प्रति आकर्षण का वातावरण तैयार हुआ लेकिन चाण्डिल में तो वह इतना विशाल और व्यापक होता हुआ दिखाई दिया कि समूचे देश पर ही छागया, सभी उसकी छाया की शीतलता और सौरभ की मधुरता अनुभव करने लगे।

विनोवाजी की वाणी में भी अब हमें नवीन शक्ति दिखाई देने लगी। जैसे उसमें नवीन ओज, नवीन आकर्षण और नवीन उद्बोधन का बल आ गया है। उनका क्रान्तिकारी रूप निखर रहा था और उसमें सभी वादों, सभी पक्षों और सभी वर्गों के लोगों को आकर्षित करने की शक्ति आ गई थी। अब वे प्रत्येक बात को अधिकार के साथ कहने लगे थे। ऐसा प्रतीत होता था मानो कोई युग पुरुष बोल रहा है। प्रत्येक प्रश्न पर वे असंदिग्ध भाषा में अपना हल पेश करने लगे थे इसीलिए तो प्रजासमाजवादी दल के नेता जयप्रकाश बाबू ने पं० जवाहरलाल नेहरू को अपने एक पत्र में लिखा था—"हम सब पर गांधीजी का बहुत गहरा असर पड़ा है। मुझे तो यह कहने में भी कोई संकोच नहीं हो रहा है कि उनकी बातें अब फिर नये प्रकाश को लेकर मेरे चिन्तन-प्रदेश में प्रवेश करने लगी हैं। मैं तो यह मानता हूँ कि वे हमारे युग के अत्यन्त महान विचारकों में से थे। मुझे तो निश्चय है कि हमारी सरकार को और राजनैतिक पार्टियों को आज, अभी और कल के लिए भी उनसे बहुत कुछ सीखना समझना बाकी है। मेरा पक्का विश्वास है कि वह अगर जिन्दा रहते तो वे जिस प्रकार अपना लगातार विकास करते रहे और भी अधिक अवश्य करते और जिस लक्ष की तरफ़ हम सब मिलकर बढ़ना चाहते हैं, उसकी तरफ़ जाने की अपनी पद्धति की वह एक साफ़ तस्वीर हमारे सामने रखते। विनोबा को छोड़कर इस विकासशीलता तथा अन्तिम मूल्यों की अविरत खोज मुझे और कहीं दिखाई नहीं देती। देश के सबसे बड़े सवाल जमीन के बटवारे का गांधीजी के विचारानुकूल एक आश्चर्यजनक तरीक़ा उन्होंने ढूंढ निकाला है। मुझे लगता है कि गांधीवादियों और समाजवादियों दोनों को अपनी २ हथेलियां अलग रख कर उनके काम में लग जाना चाहिए।"

सेवापुरी का सर्वोदय सम्मेलन सन् १९५२ में १३-१४ और १५ अप्रेल को हुआ। यद्यपि यह पहले तय हो चुका था कि सर्वोदय का यह चौथा सम्मेलन सेवाग्राम में होगा लेकिन विनोबाजी इन दिनों

उत्तर भारत की यात्रा कर रहे थे और उन्होंने रेल की यात्रा करके सेवा-ग्राम जाने में अपनी असमर्थता प्रकट की। ऐसी स्थिति में यदि सम्मेलन सेवाग्राम में ही होता तो उसमें जैसे जान नहीं रहती अतः यह सम्मेलन विनोवा के मार्गदर्शन से लाभ उठाने की दृष्टि से सेवापुरी (काशी) में आयोजित किया गया। सम्मेलन में देश के कौने कौने से काफ़ी लोग आये। इनमें राजर्षि पुरषोत्तमदास टण्डन, आचार्य कृपलानी, श्री कृष्णदास जाजू, काका कालेलकर, धोत्रेजी, दादा धर्माधिकारी, रा० कृ० पाटिल, गुलजारीलालजी नन्दा, हरेकृष्ण मेहताव, नवकृष्ण चौधरी, वी० रामकृष्ण राव, पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, सम्पूर्णानन्दजी, लाल वहादुर शास्त्री, सन्त तुकोड़ाजी, डा० प्रफुल्लचन्द्र घोष आदि वड़े वड़े नेता, विचारक और सर्वोदय के काम में दिलचस्पी रखने वाले सभी प्रमुख व्यक्ति थे।

पहले दिन प्रातःकाल की सभा में वाहर से आये हुए व्यक्तियों ने अपनी अपनी कठिनाइयाँ और सुझाव रखे। आचार्य कृपलानी ने सम्मे-लन का उद्‌घाटन किया। उन्होंने अपने उद्‌घाटन भाषण में कहा—"रचनात्मक काम को करते समय तीन तरह के विचार हमारे दिमाग़ में हो सकते हैं। (१) कुछ लोग केवल अपनी आत्मशुद्धि के विचार से यह काम करते हैं। (२) कुछ केवल रूढ़िवादी हैं जो इसलिए यह काम करते जाते हैं कि अव तक उन्होंने वही काम किया है। और (३) कुछ इस निश्चय से यह काम करते हैं कि हमें एक ऐसा नया समाज वनाना है जो न तो पूंजीवाद के शिकंजे में फंसा हुआ हो और न कम्यूनिष्ट के वोझ के नीचे दवा हुआ हो। आपको अव यह सोचना है कि आप इनमें से किस उद्देश्य को लेकर यह काम करना चाहते हैं। मेरा अपना ज़ोर तो नया समाज वनाने पर ही है। और अगर आपको भी यह दृष्टि पसन्द हो तो आपको भी मेरी तरह इस वारे में सोचना होगा।"

विनोवाजी ने इसका वड़ा ही सुन्दर जवाव दिया। उन्होंने कहा—"हम तो मोदक प्रिय हैं, लड्डू प्रिय हैं। हमें शक्कर, खोया, घी, सव एक साथ

चाहिए। हम तीनों का मिश्रण करके खायंगे। केवल शक्कर, खोया या घी में हमारी रुचि नहीं। रचनात्मक काम में आध्यात्मिक, भौतिक और नैतिक तीनों दृष्टियां रहनी चाहिए।"

भूदान का इतिहास और विकास बताते हुए उन्होंने कहा—"इस आन्दोलन में हिन्दुओं के साथ मुसलमानों ने भी काफ़ी हिस्सा लिया है और कांग्रेसियों की तरह कृषक-मजदूर प्रजापार्टी, समाजवादी, साम्यवादी जनसंघी, इतना ही नहीं राष्ट्रीय स्वयंसेवकसंघ वालों ने भी इसमें सहायता दी है तथा सहानुभूति प्रकट की है। इस आन्दोलन की सफलता इसी में निहित है।"

भारत सरकार की पंचवर्षीय योजना समिति के सदस्य श्री रा० कृ० पाटिल ने भूदान यज्ञ के आन्दोलन का समर्थन करते हुए अपनी कुछ शंकाएँ प्रकट कीं। उन्होंने कहा कि उसमें ज़मीन के छोटे छोटे टुकड़े हो जायंगे जिन्हें फिर से एकत्रित करना मुश्किल होगा। दूसरी ओर इससे पैदावार भी घटेगी। इसका उत्तर देते हुए विनोबाजी ने कहा—"आज भारत के किसान को ज़मीन की भूख लगी है। उस भूख को तृप्त करना हमारा प्रधान कर्तव्य है। जब यह भूख कुछ कम हो जायगी यानी सबको थोड़ी थोड़ी ज़मीन मिल जायगी तब लोग स्वयं ही एक दूसरे के साथ सहयोग करके या तो सामूहिक खेती करेंगे या सहकारी ढंग से। आज ही उन पर यह शर्त लादना मूर्खता होगी। इसका एक दूसरा खराब असर यह भी होगा कि अगर इस शर्त पर ज़मीन दी गई तो ज़मीन के मालिक भी उसमें शरीक होकर अपने स्वामित्व की भावना का पोषण करते रहेंगे। उनकी स्वामित्व भावना का सम्पूर्ण लोप करने के लिए भी यह ज़रूरी है कि ज़मीनें बिना किसी शर्त के ली और दी जाय। फिर यह भी सोचने की बात है कि अगर ऐसी शर्त लगादी गई तो एक आध एकड़ भूमि का दान हम कैसे ले सकेंगे?"

भूमि के टुकड़े होने की शंका का उत्तर विहार के प्रसिद्ध रचनात्मक

कार्यकर्ता श्री लक्ष्मी बाबू तथा वर्धा के आचार्य श्री मन्नारायण अग्रवाल ने भी दिया। श्री लक्ष्मीबाबू ने विहार के आंकड़ों के द्वारा सिद्ध किया कि छोटे छोटे टुकड़ों से पैदावार घटने के बजाय बढ़ी है। आचार्य श्री मन्नारायणजी ने जापान की मिसाल देते हुए यह बताया कि वहाँ ज़मीन के बहुत छोटे छोटे टुकड़े रहने पर भी वहाँ का किसान हमारे देश की अपेक्षा बहुत ज़्यादा पैदा कर लेता है।

श्री पाटिल ने एक आपत्ति यह उठाई कि यदि देहात के सब लोग खेती करने लगेंगे तो उद्योगों के लिए कोई बचेगा ही नहीं और खेती पर बहुत अधिक बोझ पड़ेगा। विनोबाजी ने इसका भी उत्तर दिया और कहा कि ज़मीन उन्हीं लोगों को दी जायगी जिनके पास निर्वाह का दूसरा साधन नहीं है। इतना ही नहीं उद्योग धन्धों पर भी ज़ोर दिया जायगा और देखा जायगा कि सब कारीगरों को अच्छा काम मिलता है और ग्रामोद्योग सुचारु रूप से चल रहे हैं। पं० सुन्दरलालजी ने जो अभी चीन से लौटे थे बताया कि किस प्रकार थोड़े से ही समय में वहाँ सब को ज़मीन बांट दी गई है। चीन के सम्बन्ध में उनके द्वारा दी गई जानकारी लोगों को इतनी आकर्षक लगी कि उसपर रात्रि के समय उनका एक अलग व्याख्यान रखा गया।

इस तरह भूदान यज्ञ के हर पहलू पर खुलकर चर्चा हुई। इसने कार्यकर्ताओं के मन की शंकाओं को दूर करने में बड़ी मदद की। सम्मेलन में यह तय हुआ कि आगामी दो वर्ष में २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाय। साथ ही यह भी तय कर लिया गया कि इस लक्ष पर पहुँचने के लिए किस प्रदेश में से कितनी भूमि प्राप्त की जाय और प्रत्येक प्रान्त के लिए अलग अलग भूदान समितियाँ बना दी गईं। तीन दिन के उत्साहवर्धक कार्यक्रम के बाद सब कार्यकर्ता नवीन प्रेरणा, नवीन उत्साह, और नवीन चेतना लेकर अपने-अपने घर लौटे।

सर्वोदय का पांचवां सम्मेलन चाण्डिल में जो कि विहार प्रान्त के

मानभूमि जिले में है सन् १९५३ के मार्च महीने में ७,८ और ९ ता० को हुआ। सम्मेलन में सम्मिलित होनेवाले विशिष्ट व्यक्तियों में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, श्री रंगनाथ दिवाकर, काका साहब कालेलकर श्री कृष्णदासजी जाजू, जयप्रकाश बाबू, डा० जे० सी० कुमारप्पा शंकररावदेव, दादा धर्माधिकारी, नवकृष्ण चौधरी, आशादेवी आर्य-नायकम के नाम उल्लेखनीय थे। सम्मेलन सर्वसेवासंघ के अध्यक्ष धीरेन्द्र भाई मजूमदार की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष श्री लक्ष्मीबाबू ने सबका स्वागत करते हुए विनम्रता और स्नेह से आर्द्र वाणी में कहा—"सर्वोदय समाज के मूल में एक परिवार-भावना है। तब कौन किसका स्वागत करे।" उन्होंने सम्मेलन को कुछ महत्व-पूर्ण बातों पर लोगों का ध्यान आकर्षित किया और अन्त में कहा कि इस अवसर पर एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया गया है। इसमें उस कार्य का दर्शन होता है जिसे भूदान यज्ञ में लगे हुए कार्यकर्ता कर रहे थे। उड़ीसा के अनुभवी कार्यकर्ता गोपबन्धु ने एक छोटे भाषण के बाद प्रदर्शिनी का उद्घाटन किया। अपने संक्षिप्त भाषण में धीरेन्द्र भाई ने कहा—"अगर जनता की आशा पूरी नहीं हुई तो यह हिंसक क्रान्ति हम सबको निगल जायगी।" अपने भाषण के अन्त में सम्मेलन का लक्ष्य बताते हुए उन्होंने कहा—"जनता की इस आशा को पूरा करने के रास्ते और उपाय खोजना इस सम्मेलन का काम है।"

इसके बाद राजेन्द्रबाबू का भाषण हुआ। भाषण यद्यपि संक्षिप्त था तथापि उसमें हृदय को छूने की शक्ति थी। उन्होंने यह बात स्वीकार की कि स्वराज्य मिल जाने पर भी लोगों की आशाएँ पूरी नहीं हुई हैं। मैं नहीं कह सकता कि वे कब पूरी होंगी। जिनके हाथ में देश का शासन है उनमें इस वांच्छित ध्येय को प्राप्त करने का साहस नहीं है। तड़क भड़क और ठाट बाट से घिरे हुए वे लोग न तो अपने माने हुए आदर्श का पालन करते हैं और न उसमें श्रद्धा रखते हैं। व्यक्तिगत रूप से मेरा सर्वोदय के ऊंचे आदर्श में आज पहले से कहीं ज्यादा

मका विश्वास है लेकिन आज के वातावरण में मैं खो सा जाता हूँ, रास्ते में भटक जाता हूँ और उस आदर्श को जीवन में नहीं उतार पाता।"

इसके बाद आचार्य विनोबा का भाषण लगभग डेढ़ घंटे तक हुआ। उन्होंने तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला, सर्वोदय की कल्पना स्पष्ट की और बताया कि सर्वोदय के आधार पर समाज और राष्ट्र का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है। उन्होंने बताया कि इस ध्येय को प्राप्त करने के लिए हृदय-परिवर्तन या विचार-शासन और काम का विकेन्द्रीकरण ही सबसे अच्छी पद्धति है। इसके लिए उन्होंने चार तरह का कार्यक्रम बताया। (१) रचनात्मक काम करने वाली संस्थाओं को एक सुगठित संस्था का रूप देना (२) सन् १९५७ तक भूदान यज्ञ में पांच करोड़ एकड़ भूमि इकट्ठी करना। (३) सम्पत्तिदान यज्ञ (४) और सूताञ्जलि।

सम्मेलन में जयप्रकाश बाबू का भाषण बड़ा महत्वपूर्ण हुआ। उन्होंने अपने हृदय परिवर्तन की बात स्वीकार की और खुले दिल से भूदान यज्ञ का समर्थन करते हुए कहा—"स्वराज्य के बाद जो निराशा हमारे दिल में पैदा हुई थी वह विनोबाजी के इस यज्ञ ने दूर कर दी है।..........धरती सब की माता है और उसमें सबका भाग होना चाहिए। जो धरती पर काम करता है, वह उसी की होनी चाहिए।" अन्त में उन्होंने कहा कि हमें सब काम छोड़ कर कम से कम एक साल तक इसी में लग जाना चाहिए। उन्होंने विद्यार्थियों से खासतौर पर अपील करते हुए कहा कि वे भूदान यज्ञ के लिए एक वर्ष तक अपने स्कूल कालेज छोड़ दें और ज़मीन इकट्ठी करने में लग जायं।

८ तारीख के भाषणों में श्री सिद्धराज डड्ढा, मुहम्मद शफी, काका कालेलकर तथा अरुण चन्द्र घोष के भाषण महत्वपूर्ण थे। दोपहर को महिलाओं और तरुण संघ की दो अलग अलग सभाएँ हुईं। पहली में श्रीमती जानकीदेवी बजाज की प्रेरणा से एक नये दान का श्रीगणेश हुआ। वह था अलंकार दान। अनेक बहिनों ने अपने गहने विनोबा की

झोली में डाल दिये ।

अन्तिम दिन के भाषण में उन्होंने दो मुख्य बातों पर अपने विचार व्यक्त किये—(१) सरकारी योजनाओं और राजनैतिक पार्टियों के बारे में अपना रुख तथा (२) भूदान यज्ञ का काम करने वाले संगठन का स्वरूप । सरकारी योजनाओं के बारे में उन्होंने कहा कि मुख्य भेद रास्ते और दृष्टिकोण का है जिसमें दूसरे अनेक भेद समाये हुए हैं । यदि हम सिर्फ़ टीका करते रहे तो उससे हमारी शक्ति का अपव्यय होगा । अच्छी या उपयोगी बातों में सरकार के साथ सहयोग किया जासकता है लेकिन हमें उसमें उलझ नहीं जाना चाहिए । उन्होंने आगे कहा पश्चिम के जनतन्त्र दो पार्टियों और बहुमत के वोट पर आधार रखते हैं लेकिन हमारे देश में पंचों की सर्वमान्य आवाज़ ईश्वर की आवाज मानी जाती है । इसलिए यहाँ पार्टियों को सर्वमान्य कार्यक्रमों पर ही अमल करना चाहिए और जिनके बारे में मतभेद हों उन पर चर्चा करनी चाहिए ।

सम्मेलन में तीन प्रस्ताव पास हुए । पहले में सेवापुरी के निश्चय के अनुसार दो वर्ष के समय में २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने के लक्ष को दोहराया गया था और अब तक के काम पर सन्तोष व्यक्त किया गया था । साथ ही यह भी कहा गया था कि—अगले बारह महीनों में पूरी २५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने में अपनी कार्य सिद्धि न मानकर सन् १९५७ के पहले ५ करोड़ एकड़ भूमिदान में प्राप्त कर शोषण रहित और समतायुक्त समाज की स्थापना की भूमिका निर्माण करेंगे ।" दूसरा प्रस्ताव शराबबन्दी और तीसरा केन्द्रित उद्योगों के बहिष्कार के सम्बन्ध में था ।

अन्त में सभापति ने छोटे से भाषण के द्वारा सम्मेलन का उपसंहार किया और भूदान यज्ञ में लग जाने की अपील की । फिर विनोबा का आशीर्वादात्मक भाषण हुआ जिसमें उन्होंने लोगों को अन्तः परीक्षण करके अपनी कमियों और दोषों का दर्शन एवं उनका शोधन करने की प्रेरणा दी । इस प्रकार सम्मेलन में मुख्यतः भूमिदान यज्ञ की ही चर्चा

कि जिम्मेदार लोगों की अनुमति से यह काम होना चाहिए।

(३) कर्ज की इसमें गुंजायश नहीं है। कर्जदार से मुक्त होना उसका पहला काम होगा।

(४) सम्पत्ति का विनियोग मेरी सूचनानुसार करना है। इस सारी योजना का यह एक बहुत बड़ा संरक्षण है।

(५) सम्पत्तिदान में प्राप्त होनेवाली उस वर्ष की रकम उसी वर्ष में व्यय होगी। वाकी रहने का कारण नहीं। देश में इतना विशाल काम करना है कि कितवी भी सम्पत्ति मिले वह सारी उसमें सहज खर्च होने वाली है।

(६) सम्पत्ति का विनियोग फिलहाल मुख्यता तीन मदों पर करने का विचार है।

(अ) जिन भूमिहीन किसानों को ज़मीन दी जायगी उनको वीज, वैल, कुंआ आदि के रूप में मदद करना।

(अ) त्यागी सेवक वर्ग को अल्पतम सेवाधन देना।

(इ) सत्साहित्य का प्रचार करना।

(७) सम्पत्तिदान यज्ञ में हिस्सा देनेवाले के जीवन का परिचय मैं चाहता हूँ। उसके लिए इस यज्ञ में सम्मिलित होने की इच्छा रखने वाले को अपनी कुछ जानकारी मुझे भेजनी चाहिए। इस सम्वन्व में मैं समय समय पर कुछ न कुछ लिखता ही रहूंगा।

सम्पत्तिदान यज्ञ की कल्पना का आधार है अपरिग्रह का विचार। अपने इस विचार को समझाते हुए वे कहा करते हैं कि साधारणतः लोग अपरिग्रह के विचार को साधु सन्यासियों या गांधीजी जैसे वड़े लोगों के द्वारा ही अमल किया जा सकने वाला विचार कहते हैं प्रत्येक गृहस्थ यद्यपि अपरिग्रह को अपना अन्तिम लक्ष मानता रहा है तथापि व्यवहारिक रूप में वह मानता रहा है कि अपरिग्रह उसकी मर्यादा के वाहर है। इसीलिए वह वुद्धि को जंच कर भी व्यवहार में नहीं आसका। विनोवा इसी अपरिग्रह के विचार की स्थापन चाहते

हैं। वे कहते—"लेकिन जब आप एक धर्म विचार के ही ऐसे टुकड़े कर देते हैं कि वह कुछ खास लोगों के लिए सुरक्षित है तब उससे समाज का कल्याण नहीं हो सकता और ऐसा हुआ भी। गृहस्थ जीवन में अपरिग्रह को स्थान देने से कुछ भलाई तो हुई परन्तु कुछ लोगों ने परिग्रह को अपना हक मान लिया और जब कुछ लोगों ने परिग्रह को लाज़मी माना तो धर्म विचारकों ने भी लोभी लोगों के मुकाबले के लिए उसे जायज़ माना। देखते देखते निर्लोभी भी लोभी बन गये।"

परशुराम का उदाहरण देकर विनोबाजी ने इसे और स्पष्टता से समझाया है—"परशुराम ब्राह्मण थे परन्तु निःक्षत्रिय पृथ्वी करने के लिए स्वयं क्षत्रिय बन गये लेकिन अपने हाथों ही जिस चीज़ का बीज बोया वह कैसे मिट सकता था? आखिर क्षत्रियता बढ़ी, ब्राह्मणत्व घटता गया। परिणाम यह हुआ कि भगवान राम का अवतार हुआ और परशुरामजी को हटना पड़ा।

क्षत्रियत्व को मिटाने के लिए अगर ब्राह्मणत्व का विकास होता तो ऐसा नहीं होता। अपने ब्राह्मणत्व को बढ़ाने के बजाय परशुराम स्वयं क्षत्रिय बन गये। उससे समस्या कैसे हल हो सकती थी? लोभ का भी ऐसे ही हुआ और आज तो परिग्रह के इर्दगिर्द ऐसे क़ानून बन गये हैं कि वह जायज होगया है। चोरी को कानून से काबिल-सजा माना गया, लेकिन जिसने चोर को चोरी की प्रेरणा दी उसे रक्षण दिया गया। न केवल अपने लिए बल्कि अपने बाल बच्चों के भी लिए, और न केवल एक दिन या एक माह के लिए अपितु एक लम्बे अर्से के लिए। जो अपने पास संग्रह कर रखता है उसको कितनी सज़ा मिलनी चाहिए? उपनिषदों में कहा है कि जो लोग इस तरह परिग्रह करके कंजूस बन जाते हैं वे ही तो चोर के पिता हैं। वे चोर की तरह ही हैं। 'चोर की तरह' इसलिए कहा कि वे चोर के नाम से पहिचाने नहीं जाते हैं परन्तु होते चोर ही हैं। गीता ने भी उनको चोर माना और इसलिए दीन के जमाने में लोग गीता को घर में नहीं रखने देते थे, सन्यासियों को

मन्दिर में ही ठहराते थे। परिग्रह और अपरिग्रह के बीच इस तरह की दीवार खड़ी होगई और जो ज़्यादा परिग्रही बने जिन्होंने परिग्रहकी कोई मर्यादा ही नहीं मानी वे दुनिया के सिर पर सवार हो बैठे।"

परिग्रह के इस बढ़ते हुए तूफान को रोकने के लिए ही विनोबाजी ने सम्पत्तिदान का विचार हमारे सामने रखा है। वे फिर से उसी की स्थापना की प्रेरणा देते हुए कहते हैं:—"जिस तरह हम यज्ञ में आहुति देते समय कहते हैं 'इन्द्राय इदम् न मम्, वरुणाय इदम् न मम्।' उसी तरह आज हम जो भी उत्पादन करें चाहे वह खेती में करते हों चाहे फेक्टरी में हमें मानना चाहिए कि वह—'समाजाय इदं न मम्, राष्ट्राय इदं न मम्।' हर आदमी अपने मन से कहेगा कि तूं तो समाज के एक नौकर के रूप में काम करेगा और समाज तुझे जो देगा उसे तू स्वीकार करेगा। हर एक के दिल में यह भावना होनी चाहिए कि जो सम्पत्ति मेरे पास है, जो खेती मेरे पास है, जो अक्ल मेरे पास है, जो परिवार मेरा है वह सब समाज के लिए है। अगर हमें वैभव बढ़ाना है, सम्पत्ति और लक्ष्मी बढ़ानी है तो वह सब समाज की बढ़ानी है। समाज रूपी नारायण की ही लक्ष्मी होगी। हम तो उस नारायण के केवल सेवक मात्र हैं।"

अपरिग्रह का यह विचार केवल धनवानों के ही लिए अपनाने योग्य नहीं है। वे चाहते हैं कि जब ग़रीब से ग़रीब व्यक्ति भी इस विचार को अपनाएगा तब ऐसी स्थिति पैदा होजायगी कि हम एक निश्चिन्त वृत्ति की सरकार बना सकेंगे। वे कहते हैं:—"इसमें यह ग़लतफहमी नहीं होना चाहिए कि जिनके पास ज़्यादा परिग्रह है वे ही हिस्सा ले सकते हैं, आदमी के पास लंगोटी ही क्यों न हो उसमें भी उसकी आसक्ति रहती है। इसलिए हमें दान सबसे लेना है। फिर दाता के पास भूमि कितनी ही कम क्यों न हो, सम्पत्ति कितनी ही थोड़ी क्यों न हो। जब ऐसा होगा तो जितने घर हैं वे सब हिन्दुस्तान सरकार की बेंक बन जायंगे। हिन्दुस्तान सरकार को आज अमेरिका से दुर्भाग्य से जो लेना पड़ता है या नासिक के छापेखाने की शरण लेनी पड़ती है;

वह सब नहीं करना पड़ेगा। होना तो यह चाहिए कि जिस दिन भी सरकार को आवश्यकता हो लोग कहदें कि हमारे घर में जो कुछ भी है वह सारा सरकार का हैं। सरकार को इस तरह निश्चिन्त रह सकना चाहिए। ऐसी निश्चिन्त वृत्ति जिसमें हो ऐसी सरकार हम बनाना चाहते हैं और मैं कहना चाहता हूं कि ऐसी सरकार हम बना सकते हैं।"

विनोवाजी पुराने उच्चादर्शों को युग की मांग के अनुसार नया व्यवहारिक रूप देना चाहते हैं। दया धर्म का मूल बताया गया है लेकिन वह आज तक व्यक्तिगत गुण रहा है, विनोबा उसे सारे समाज का गुण बनाकर समत्व लाना चाहते है। उन्होंने कहा है:—"सम्पत्ति दान यज्ञ एक धर्म विचार है जिसे पूरी तरह समझकर हमें अमल करना है। पहले हमारे यहां रिवाज ही था कि बिना भूखे को भोजन कराये भोजन नहीं करते थे। इस गुण को अब हम सार्वजनिक बनाना चाहते हैं। अब तक दया एक व्यक्तिगत गुण रहा। आंखों से देखा नहीं जाता इसलिए दया करना मनुष्य धर्म माना गया। वैसा न करना पशुधर्म बन जाता। लेकिन अब हम दया को नित्य जीवन का एक अंग कर लेना चाहते हैं। किसी गुण का जब हम समाज में सर्वत्र अमल देखना चाहते हैं तो हमें उसे व्यापक करना चाहिए। व्यापक करने से गुण में समत्व आता है। दया को हम एक सार्वजनिक रूप देते हैं तो उसके द्वारा समत्व भी सधता है क्योंकि फिर हमें जो अत्यन्त दुखी हैं उन्हीं से अमल करना प्रारंभ करना होगा। और जब हम सबसे पहले अत्यन्त दुखी व्यक्ति को राहत पहुँचायंगे तो हमारी वृत्ति में समत्व आ ही जायगा।"

सम्पत्तिदान चित्त शुद्धि का मार्ग है। वे कहते हैं जो इस यज्ञ में भाग लेंगे उन्हें यह अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा कि कोई भी सम्पत्ति हमारे अपने पास पड़ी नहीं रहनी चाहिए। वह शीघ्र ही उस व्यक्ति के पास पहुँचनी चाहिए जिसे उसकी जरूरत है। यदि यह विचार संशोधन

होजाता है तो विनोवा का एक सुन्दर स्वप्न साकार होजाता है। उनका वह स्वप्न है:—"सम्पत्तिदान का आखरी स्वरूप यह होगा कि जिसके पास जो भी सम्पत्ति है उसे जो कोई उससे मांगने आवेगा वह दे ही देगा। लोग सहूलियत के लिए अलग अलग घरों में रहेंगे। जैसे कि आज अलग अलग कमरों में, परन्तु एक ही घर में रहते हैं। जरूरत की वस्तुएं हर किसी को जव वह चाहे मिल सकेगी। इसमें शक नहीं कि यह एक स्वप्न है परन्तु स्वप्न भी रमणीय है और इसका जितना अंश हम जाग्रति में लाना चाहेंगे, ला सकेंगे। इस तरह विचार करने वाले पागल भी समझे जायंगे। परन्तु भविष्य में लोग इन्हीं विचारों को मानेंगे।

विनोवाजी को पूरा विश्वास है कि उनके इस विचार का प्रचार और प्रसार हुए विना नहीं रहेगा। वे कहते हैं—"भूमि की तरह सम्पत्ति भी इतनी मिलने वाली है कि उसके खर्चे का निर्देश भी हम नहीं कर सकेंगे। इतना उसका व्यापक स्वरूप होगा।"

विनोवाजी सम्पत्तिदान में मिले हुए पैसे का फण्ड के रूप में एकत्र नहीं करना चाहते। उन्होंने उसका एक सुन्दर और क्रान्तिकारी रूप हमारे सामने रखा है। वे कहते हैं—"अगर मैं पैसा लूं तो खत्म होजाऊंगा। मैं तो पैसे को निकम्मी चीज मानता हूँ। लोग तो अपना अपना घर संसार चलावें और हम फण्ड इकट्ठा करके उसका वोझ उठावें तो दोनों ही समान आसक्ति वाले वन जाते हैं और दुनिया हमको तो परोपकारी तथा उनको स्वार्थी मानती है। इसलिए मैंने सोचा कि सम्पत्ति को न लेना ही ठीक है। फण्ड में देने वाला छूटता है, लेने वाला वन्ध जाता है। परन्तु सम्पत्तिदान यज्ञ में देने वाला ही वन्ध जाता है और हम मुक्त हो रहते हैं, हम वादशाह वन जाते हैं। हम उसी से हिसाव पूछते हैं जवकि फण्ड में इसका उल्टा होता है।"

सम्पत्तिदान यज्ञ एक क्रान्तिकारी आन्दोलन है। वह समाज का स्वरूप ही वदल देना चाहता है। वह जीवन के नवीन मूल्यों की स्थापना करता है। भूमिदान यज्ञ के पीछे भी उसका एक क्रान्तिकारी

संकेत था। वह संकेत था—उत्पादकों को भूमि दिलाना। उन्होंने भूमि के समान बटवारे पर अधिक ध्यान न देकर इसी बात पर ज्यादा ध्यान दिया था कि उत्पादन के साधन उत्पादकों के हाथ में पहुंच जायं। भूमिदान का आन्दोलन श्रम की सत्ता स्थापित करने का आन्दोलन है। सम्पत्तिदान इसी दिशा में दूसरा क्रान्तिकारी क़दम है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है दान में मिली हुई सम्पत्ति का विनियोग विनोबाजी के निर्देश के अनुसार होगा। वे दाता की राय अवश्य पूछेंगे कि वह अपनी सम्पत्ति को किस कार्य में खर्च करना चाहता है लेकिन अन्तिम निर्णय करना उनके अपने हाथ में होगा। यह अन्तिम निर्णय अपने हाथ में रखने में विनोबाजी का एक बड़ा हेतु है। यदि कोई बड़े कारखाने का मालिक अपनी सम्पत्ति का छठा हिस्सा दान करता है तो वे उससे कह सकते हैं कि वह उस रुपये का कारखाने के मजदूरों की आर्थिक या स्वास्थ्य सम्बन्धी विकास कार्यों में खर्च कर दे। इस से आगे बढ़ते बढ़ते वे यह भी कह सकते हैं कि वह अपना कारखाना ही मजदूरों को सौंपदे। साहूकार से कह सकते हैं कि तुम उत्पादन के अमुक साधन या अमुक औजार मजदूरों के लिए खरीद दो और इसके बाद वे आगे बढ़कर यह भी कह सकते हैं कि भाई तुम्हारा यह कमाने का तरीका ही ठीक नहीं है, यह पापमय है अतः इन रोजगारों को धीरे धीरे बन्द करदो।

इस प्रकार सम्पत्तिदान सारे समाज में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन करना चाहता है। उसका प्रारम्भ प्रायश्चित के रूप में होता है शोषण करनेवाला या किसी बुरे काम में लगा हुआ व्यक्ति भी उसमें अपना हविर्भाग डाल सकता है। लेकिन इसका यह मतलब कदापि नहीं होगा कि ⅙ के देने के बाद उसका ⅚ सुरक्षित या न्यायोचित बन गया और उसे अपने कामों को करने की स्वीकृति मिलगई। उसका छठा हिस्सा प्रारंभ में प्रायश्चित के रूपमें रहेगा। धीरे धीरे दान का यह रूप विकास करेगा और उसका अंत होगा उस पापमय धंधे से ही मुक्त हो जाने के रूप में।

:: २३ ::

अग्नि परीक्षा

"भगवान को मुझ से काम लेना होगा तो वह इस शरीर को नष्ट नहीं होने देगा और यदि यह शरीर इस समय नष्ट हो जाता है तो हमें वह भगवान की इच्छा ही माननी चाहिए।" —विनोबा

साधना का मार्ग अनेक कठिनाइयों से भरा पड़ा है। उसमें पग-पग पर बाधाएँ हैं, उलझनें हैं। ये बाधाएँ कभी शारीरिक व्याधि के रूपमें आती हैं, और कभी व्यक्तिगत या सामाजिक विरोध के रूपमें। उस समय उनका रूप एक बड़े तूफ़ान की तरह होता है। यदि साधक में कोई कमज़ोरी हुई तो यह तूफ़ान उसके पैर उखाड़ देता है, पथभ्रष्ट कर देता है लेकिन यदि साधक में निष्ठा होती है तो यही तूफ़ान उसके व्यक्तित्व को अधिक निखार देता है, उसे अधिक दिव्य और तेजस्वी बना देता है। बिहार में यात्रा करते समय विनोबाजी और उनके साथियों को इसी प्रकार के एक तूफ़ान का सामना करना पड़ा। सन् १६५२ के दिसम्बर मास की बात है। १२ तारीख को विनोबाजी को बुखार आया। यह स्थान ही ऐसा था जहाँ मलेरिया का बड़ा ज़ोर रहता है। यात्रा में पहले भी विनोबाजी को बुखार आया था लेकिन वह प्रायः तीन दिन के बाद अपने आप ही चला गया था। इसलिए जब इस बार बुखार आया तो उसकी कोई विशेष चिन्ता नहीं की गई और यात्रा का क्रम उसी प्रकार चलता रहा। लेकिन बुखार बढ़ता गया और स्थिति इतनी बिगड़ी कि यात्रा का क्रम स्थगित करना पड़ा।

जिस प्रकार पूर्वी बङ्गाल के दंगों के समय वहाँ शान्ति और सद्भावना स्थापित करने के लिए गांधीजी ने अपने साथियों को भिन्न २ स्थानों की यात्रा करने के लिए भेज दिया था उसी प्रकार विनोबाजी ने

भी अपने कुछ साथियों को अलग अलग ग्रामों में भूमिदान यज्ञ का संदेश देने के लिए भेज दिया था। जब बुखार बढ़ता गया और उसकी खबर साथियों को मिली तो उनमें से कुछ डरते डरते चांडिल पहुंचे। डरते डरते इसलिए कि विनोबा कभी यह पसन्द नहीं करते कि कोई अपने काम को अधूरा छोड़कर उनके पास इसीलिए दौड़ा आवे कि वे बीमार हैं। १५ तारीख को बुखार बढ़ते बढ़ते १०५° तक पहुंच गया और सब लोग बड़े चिन्तित हो गये। डाक्टर लोग आगये थे। उन्होंने स्पंज करने की सलाह दी। स्पंजिंग किया गया और बुखार १०२ डिग्री पर आगया। लेकिन आधे घन्टे बाद ही वह फिर १०५ डिग्री से भी अधिक होगया। शाम तक ऐसा ही रहा। पिछले दो दिनों से डाक्टर रक्त की परीक्षा करने के लिए रक्त की स्लाइड लेने की स्वीकृति चाह रहे थे लेकिन विनोबाजी टाल रहे थे। अपने सेक्रेट्री दामोदरदासजी मूंदड़ा के आग्रह पर आज उन्होंने रक्त की स्लाइड देना स्वीकार कर लिया। स्लाइड टाटा नगर ले जाई गई और रात को ही यह रिपोर्ट आई कि मैलिग्नंट (हठी मलेरिया) है।

बीमारी के समाचार से देश के हजारों लाखों लोग चिन्ता ग्रस्त होगये। सब ईश्वर से प्रार्थना करने लगे कि वह इस कठिन समय में विनोबा को न छीन ले। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, नेहरूजी, राज्यपाल रंगनाथजी दिवाकर तथा अन्य अनेक व्यक्तियों की ओर से आग्रह भरे तार और संदेश आने लगे। सबका यह ख्याल था कि मलेरिया के विषैले जन्तु दवा लिए बिना नष्ट नहीं होंगे अतः विनोबाजी दवा लेना स्वीकार करलें। बिहार के मुख्यमन्त्री श्री श्रीकृष्णसिंह आ पहुंचे। वे अपने साथ पटना के अच्छे अच्छे डाक्टर भी लाये थे। डाक्टरों और मुख्यमन्त्रीजी ने काफ़ी आग्रह किया लेकिन विनोबा ने एक ही बात कही—"मैं तो ईश्वर के हाथ में हूं, वही मुझे संभालेगा।"

अब तक अन्य स्थानों के भी कुछ साथी, शिष्य और मित्र आगये थे। सभी चिन्तित थे। सबने मिलकर यह तय किया कि विनोबाजी के

पास अपना एक प्रतिनिधि मण्डल भेजकर दवाई लेने का आग्रह किया जाय। डेपूटेशन पहुँचा। विनोबा ने शान्त चित्त से उसकी बात सुनी और बोले—"ईश्वर या तो मुझे इस देह से मुक्त करना चाहता है या इस देह को शुद्ध करके उससे अधिक सेवा लेना चाहता है। अगर वह इस देह को रखना-चाहता है तो दवाई के बिना भी रखने की सामर्थ्य उसमें है। अगर वह उठाना चाहता है तो किसी में शक्ति नहीं कि उसे रोके और अगर दवाई लेनी भी पड़ी तो उसका यह अर्थ नहीं कि दवाई के कारण शरीर रहा। मैं तो यही मानूंगा कि परमेश्वर ने चाहा, इसलिए शरीर रहा।" पंडितजी, राजेन्द्र बाबू आदि के आग्रह भरे संदेशों का जिक्र करते हुए उन्होंने कहा—"मित्रों के इस आग्रह के बारे में मेरा कर्तव्य क्या है? मेरा धर्म स्पष्ट है। दवाई का सवाल ही नहीं उठता।"

किसी ने कहा—"हमारे सन्तोष के लिए ही दवाई ले लीजिये"

विनोबा ने कहा—"आपको सन्तोष मानना चाहिए कि दवाई लेकर न तो मैंने शरीर को बिगाड़ा और न विचार को। रोग से कौन बचा है? रामकृष्ण परमहंस और योगीराज अरविन्द जैसों को भी रोग का शिकार होना पड़ा।" फिर सन्त ज्ञानेश्वर का स्मरण करके बोले—"हाँ, जब उन्होंने देखा कि अपना जीवन कार्य समाप्त हुआ है, तब स्वस्थ अवस्था में ही समाधि लेली।"

फिर कुछ रुककर कहा—"ज्ञानेश्वर ने ठीक ही कहा है कि जो जीवन भर जनता की सेवा करता है अन्त में भगवान स्वयं उसकी सेवा करते हैं।" विनोबाजी की श्रद्धा अविचलित थी लेकिन शिष्यों और मित्रों को समाधान नहीं होरहा था। उन्होंने गांधीजी का आधार लेकर फिर आग्रह किया। विनोबाजी बोले—"बापू महान थे। मैं तो उनका चरण सेवक हूं। पांव की पन्हैया को अपनी मर्यादा में ही रहना चाहिए।" बापू का जिक्र करते करते उनका कण्ठ भर आया। प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्य चुप होगये। अब अधिक कहने के लिए गुंजाइश ही नहीं थी।

इधर रोग बढ़ता जा रहा था। बेहोशी रहने लगी। डाक्टर परेशान थे कि बेहोशी की हालत में क्या करें? लेकिन कोई रास्ता नहीं था। पहले दो दिन विनोबाजी ने दूध, फलों का रस, शहद, पानी आदि लिया था लेकिन तीसरे दिन केवल शहद पानी लिया और इसके बाद तो केवल पानी ही उनका आहार रह गया। पिछले दिनों से गङ्गाजल को औषधि और नारायण को वैद्य मानने का उनका क्रम चल ही रहा था। अब भी वही चालू था। इससे काफ़ी कमज़ोरी बढ़ गई थी अतः सब ने फलों का रस लेने का आग्रह किया। विनोबाजी ने इसे मान लिया और थोड़ा सा मोसंबी का रस लेने लगे।

लेकिन जैसे जैसे समय बीतता जा रहा था, स्थिति विषम होती जा रही थी। अन्दर ही अन्दर कीटाणुओं का परिवार बढ़ रहा था। यह प्रदेश इस बीमारी के लिए बुरी तरह बदनाम था। डाक्टरों का कहना था कि इस रोग से पीड़ित ८० प्रतिशत व्यक्ति चल बसते हैं। साढ़े सत्रह प्रतिशत हमेशा के लिए पंगू या गूंगे बहरे हो जाते है और केवल ढ़ाई प्रतिशत व्यक्ति बच पाते हैं।

चारों ओर उदासी और चिन्ता छागई। मुख्यमन्त्री श्री बाबू ने साहस करके स्थान परिवर्तन की बात कही। वे बोले—"महाराज, यहाँ की प्रजा तो हमारा बात मान लेती है और औषधिका सेवन कर लेती है, क्या आप औषधि भी नहीं लीजियेगा और स्थान परिवर्तन भी नहीं कीजियेगा?" श्री बाबू के शब्दों में बड़ी मार्मिकता थी। वे बड़ी आशा से विनोबाजी को देखने लगे। विनोबाजी ने मुस्कराकर कहा—"भगवान ने सहज ही जिन लोगों के बीच भेज दिया उनके पास ही रहना अच्छा लगता है।"

२१ तारीख के दिन तो हालत काफ़ी खराब होगई। शक्ति तो बिलकुल थी ही नहीं, अब बातचीत करने की शक्ति भी नहीं रही। पहले बुखार उतर आता था लेकिन अब वह उतर ही नहीं रहा था। नागपुर से श्री पु० य० देशपाण्डे आये। दामोदरदासजी ने कान के पास

जाकर उनके आने की सूचना दी। कुछ समय बाद विनोबाजी ने आखें खोली और उनकी ओर देखकर कहा-"नाटक का आखरी अंक चल रहा है।"

स्थिति सचमुच ऐसी ही हो रही थी। डाक्टर पिछले तीन चार दिनों से यही बात कह रहे थे लेकिन किसका बस था। नेहरूजी और राष्ट्रपति का संदेश लेकर श्री मन्नारायणजी अग्रवाल आये। विनोबा उनका प्रेमपूर्ण संदेश सुनकर गद्‌गद् होगये लेकिन दवाई लेने की प्रेरणा नहीं हुई। सबके चेहरों पर उदासी थी। दवा न लेने का निश्चय सुनकर राष्ट्रपति स्वयं आने को तैयार हुए। लोगों में कुछ आशा पैदा हुई कि शायद उनका कहना मानलें। इधर बुखार काफ़ी तेज़ था, सारा शरीर जल रहा था। श्री बाबू तक की आँखों में आँसू थे। दामोदरदासजी ने साहस करके एक बार और दवाई लेने की प्रार्थना करने का निश्चय किया। उन्होंने श्री बाबू को अपने साथ चलने के लिए कहा लेकिन वे अपना साहस बटोर न सके। दामोदरदासजी उनकी ओर से कृष्ण-वल्लभ बाबू को ले गये। विनोबाजी बेहोश थे। दामोदरजी ने कान के पास जाकर कहा—"बाबा, कृष्णवल्लभ बाबू आये हैं कुछ कहना चाहते हैं।" थोड़ी देर बाद उन्होंने आँख खोली। कृष्णवल्लभ बाबू ने दोनों हाथ जोड़कर कातर वाणी में कहा "श्री बाबू और हम सबकी प्रार्थना है कि दवाई का प्रयोग किया जाय।" कृष्णवल्लभ बाबू के इस स्वर में मानो सारा देश बोल रहा था। मानो समूचे देश की व्यग्रता और करूणा ही उनके कंठ में समागई थी।

विनोबाजी ने कहा—"यह तो एक मोह चक्र ही हैं।"

"लेकिन प्रयोग किया जाय।"

विनोबाजी कुछ देर रुककर बोले—"लेकिन दामोदर क्या कहता है?" बेचारे दामोदरदासजी इस उत्तर के लिए तैयार नहीं थे। एक ओर विनोबाजी की जीवन निष्ठा थी दूसरी ओर उनका अपना मोह तथा करोड़ों देशवासियों की भावना, लेकिन जल्दी ही उत्तर देना था। बोले—"सबके मुखसे भगवान ही बोलते हैं बाबा! कुनेन लेलिया जाय।"

विनोबाजी ने क्षीण स्वर में कहा—"लेकिन क्या दवाई लेने से देह रह जाने की गारंटी है ?" "आपके विचारों की कसौटी पर सोच कर भी लगता है कि क्विनाइन लेना चाहिए।" फिर वल्लभस्वामी भी कुछ बोले। विनोबाने आँखें मूंदली, अन्तर्मुख होगये। थोड़ी देर बाद आँख खोलकर उन्होंने आस-पास देखा, सबकी आँखों में जबरदस्त चिन्ता और व्यग्रता थी ! कुछ देर रुक कर बोले—"सज्जन सुहृदजन, सबकी चिन्ता को, उन्हें होने वाले मानसिक क्लेशों को, कम करना अहिंसा की मर्यादा का विचार है।" लोगों के मनमें आशा का उदय हुआ फिर धीरे से बोले—"ठीक है।" सबकी आँखें आनन्दाश्रुओं से गीली होगई।

सवा बजे दवा दी गई। बड़ी तेजी से असर हुआ। वे थोड़े से ही समय में रोगमुक्त होगये। इतनी तेज़ी से उन्हें स्वास्थ्य लाभ करते देख डाक्टर भी चकित थे।

उनके स्वास्थ्यलाभ के समाचार से चिन्ता के सागर में डूबते उत-राते हुए देश को एक बड़ा भारी सहारा मिला। सारे देश में प्रसन्नता की लहर फैल गई। कुछ अधिक गहराई में जाकर सोचने वाले लोगों को उनके दवा लेने के निश्चय से ऐसा भी लगा मानो उनकी निष्ठा हिल गई है, उनका विश्वास ईश्वर से हट गया है। बीमारी के बाद उनके पास ऐसे अनेक पत्र पहुँचे जिनमें दवाई लेने के निश्चय पर प्रसन्नता प्रकट की गई थी लेकिन थोड़े ऐसे भी पत्र थे जिनसे ऐसी ध्वनि निकलती थी कि उनका यह निश्चय ठीक नहीं हुआ। इसके ऊपर प्रकाश डालते हुए उन्होंने 'सेवक' में दो छोर (किनारे) के दो पत्रों के नमूने देकर लिखा था—"एक के मत से मैंने बड़ा पुण्य कार्य किया है, दूसरे की राय में मुझसे महा पाप हुआ है। तीसरा यह भी पक्ष है कि हुआ तो दोष ही है परन्तु वह लोकसेवा की भावना से हुआ इसलिए माफ़ किया जा सकता है। मुझे गीता का निम्न श्लोक याद आता है:—

"अनिष्ट मिष्टं मिश्रंच त्रिविधं कर्मणःफलम्।
भवत्य त्यागिनां प्रेत्य न तु सन्यासिनां क्वचित् ॥"

[अनिष्ट, इष्ट और मिश्रित तीन प्रकार का कर्मफल अत्यागियों (जो त्यागी नहीं हैं) को प्राप्त होता है, सन्यासियों को कदापि नहीं।]

अब यह त्रिविध कर्मफल मेरे सिर भी चढ़ने वाला है या नहीं में नहीं जानता और जानने की मुझे उत्सुकता भी नहीं है। भगवान ने जो कुछ कराया वह हुआ ऐसी इस विषय में मेरी भूमिका है इसलिए मैं निश्चिन्त हूं।"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि बीमारी का यह समय कसौटी का प्रसंग था—अग्नि परीक्षा थी। विनोबाजी की ईश्वरनिष्ठा अविचलित है। अंत तक वे दवा लेने के पक्ष में नहीं थे लेकिन जब उन्होंने देखा कि चारों ओर चिन्ता और व्यग्रता है, सभी दुःखी और परेशान हैं तो लोगों के स्नेह का उन पर असर हुआ। उन्हें ऐसा लगा मानो इतने निरपेक्ष हृदयों के द्वारा ईश्वर का ही सन्देश प्रकट होरहा है। धर्म की गति गहन है अतः उन्होंने लोक हृदय के प्रतिनिधियों के सामने अपना सिर झुका दिया।

विनोबाजी ने दवालेने से इनकार कर दिया था लेकिन उनके इस इनकार का यह मतलब नहीं था कि रोग के प्रतिकार का कोई प्रयत्न ही नहीं किया जाय। प्राकृतिक चिकित्सा में उनका विश्वास है लेकिन वह भी तो चिकित्सा की एक प्रणाली ही है। प्रश्न यही था कि जब प्राकृतिक चिकित्सा पर उनका विश्वास था तब उन्होंने दूसरी प्रणाली क्यों अपनाई ?

प्राकृतिक चिकित्सा में विनोबाजी की निष्ठा है। लेकिन इस चिकित्सा प्रणाली में उनकी जो निष्ठा है वह व्यवहारिक है, मूलभूत नहीं। भूदान यज्ञ की तरह वह समाज में आध्यात्मिक मूल्यों की स्थापना का साक्षात् साधन नहीं है। भूदान यज्ञ का संकल्प करने के बाद उसे बराबर जारी रखने का व्रत विनोबाजी ने ले लिया है। उनके सामने यह धर्म संकट आया कि भूदान यज्ञ और प्राकृतिक चिकित्सा में से किसे श्रेष्ठ स्थान दें ? स्पष्ट है कि भूदान यज्ञ को ही श्रेष्ठ स्थान दिया जा

सकता है। लेकिन यह प्रश्न भी तब उठता है जब प्राकृतिक चिकित्सा में किसी भी प्रकार की भी दवाई का निषेध हो। इसलिए विनोबाजी ने ठीक ही कहा कि अगर मैं दवा से भी बच गया तो भी मैं यह ही कहूँगा कि मुझे भगवान ने ही बचाया। दवा लेने के बाद भी डाक्टरों को यह विश्वास नहीं था कि विनोबा बचालिये जायंगे। इसलिए जब दवाका परिणाम हुआ तो डाक्टर चकित रह गये।

:: २४ ::

क्रान्ति प्रवर्तन

"इसके ज़रिये पूरी क्रान्ति होगी या नहीं इस बारे में दो अभिप्राय हो सकते हैं परन्तु यह आन्दोलन जहांतक जायगा, कल्याण ही करेगा यह सबने मान लिया है।" —विनोबा

"महात्माजी ने राष्ट्रीय क्रान्ति का अहिंसक रूप जग को दिखाया। विनोबा आर्थिक क्रान्ति का अहिंसक रूप हमारे सामने पेश कर रहे हैं। स्वराज्य की लड़ाई के ज़माने में जिस प्रकार बहुत से क्रान्तिकारी इसी विवाद में फँसे रहे कि अहिंसा से भी कहीं आज़ादी हांसिल की जा सकती है उसी प्रकार आज भी वही विवाद आर्थिक क्रान्ति के सम्बन्ध में चल रहा है और इन अन्धे क्रान्तिकारियों के सामने क्रान्ति अपनी पताका खोलती जारही है।" —जयप्रकाशनारायण

इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज विनोबाजी हमारे सामाजिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक जीवन की एक जबरदस्त शक्ति है। गांधीजी की तरह वे जिधर अपने दो पैर बढ़ा देते हैं, उधर करोड़ों पैर उनके पीछे पीछे चलने लग जाते हैं और जिधर उनकी दृष्टि पड़ती है

उधर करोड़ों आंखें देखने लग जाती हैं। एक युग पुरुष की तरह वे जिधर क़दम बढ़ाते हैं नवीन विचारों का, नई क्रान्ति का उद्भव होता हुआ दिखाई देता है। उनकी ईश्वर पर अचल श्रद्धा, सामाजिकक्रान्ति के पूर्व मानवी मन में क्रान्ति करने की बलवती आकांक्षा, ज्ञान और तप का अपार वैभव, निष्पक्ष और निष्काम भाव से विचार करने की शक्ति अन्यत्र ढूंढने से भी नहीं मिलेगी। इन सब विशेषताओं के कारण उनका क्रान्तिकारी रूप काफ़ी निखर गया।

श्रद्धालु भारतीय जनता बहुत प्राचीन काल से ही अपने सन्तों, ऋषि मुनियों, वीर विजेताओं तथा कवि और कलाकारों की जयजयकार मुक्त कण्ठ से कर रही है। आज विनोबाजी की भी जयकार चारों ओर सुनाई देती है। लेकिन इस जयजयकार में सस्तापन या उथलापन नहीं है। यह जयजयकार जनता के हृदय की गहराई में से निकलती है। यही विनोवा के गुरुत्व और महत्व की सूचक है। जब उन्होंने भूमिदान का श्रीगणेश किया, अनेक व्यक्ति उसे शंका की दृष्टि से देखते थे। उन्हें उसमें अव्यवहारिकता की गंध आरही थी। लेकिन अचल और अकम्प विनोवा अपने मार्ग पर चलते रहे और उन्होंने थोड़े से ही समय में दिखा दिया कि जिसे लोग अव्यवहारिक समझते हैं वह व्यवहारिक बन रहा है और जिसे वे असंभव कह रहे हैं, वह संभव हो रहा है। आज भूमिदान के साथ सम्पत्तिदान, बुद्धिदान, कूपदान, हलदान, बैलदान आदि अनेक जुड़ गये हैं और उसने एक देशव्यापी आन्दोलन का रूप लेलिया है। प्रान्त प्रान्त में कार्यकर्ताओं और नेताओं की पैदल यात्राएं होरही हैं और दान में मिली हुई भूमि, सम्पत्ति, हल, बैल, कुंए सब कुछ सर्वहारा व्यक्तियों में वितरित किये जारहे हैं।

आज सभी विचारशील व्यक्ति यह अनुभव करने लगे हैं कि राजनैतिक आज़ादी के बाद हमारे क़दम सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति की ओर बढ़ने चाहिए। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो हमारी राजनैतिक स्वतन्त्रता का कोई मूल्य नहीं रहता। पिछले कई वर्षों से

हमारा देश उद्योग धन्धों में पिछड़कर पूंजीपतियों के फ़ौलादी पंजों में फंस गया है। उसे इस शोषण और उत्पीड़न से मुक्त कराने के लिए पहला क़दम भूमि के पुनर्वितरण के रूप में उठना चाहिये। पिछले दिनों रूस और चीन में जो क्रान्तियां हुई, उन्हें भूमि के पुनर्वितरण ने ही पुष्ट बनाया है इतना ही नहीं जापान और मिश्र की फ़ौजी हुकूमत ने भी जमीन के पुनर्वितरण के महत्व को समझा और उसे अपने यहां व्यवहारिक रूप देने की दिशा में क़दम बढ़ाया था। हमारे देश में भी इस ओर जननायकों का ध्यान गया। कांग्रेस सरकार ने ज़मींदारी प्रथा नष्ट करने का क़ानून बनाकर इसे हल करना चाहा और साम्य-वादियों ने लूटमार करके। लेकिन ज़मींदारों ने क़ानूनी प्रश्न खड़े किये और साम्यवादियों की लूटमार के कारण जनता में परेशानी बढ़ी। दोनों ही तरीके ऐसे नहीं थे जिनका चारों ओर स्वागत हुआ हो। इसी समय विनोवाजी ने तेलंगाना की पैदल यात्रा प्रारम्भ की और यह क्रान्तिकारी क़दम उठाया। ऐसा करके मानो उन्होंने गांधीवाद की क्षीण होती हुई आवाज को फिर बुलन्द और तेजस्वी बना दिया। चाण्डिल सम्मेलन में श्री जयप्रकाशनारायण ने ठीक ही कहा था—"गांधीजी के बाद चारों ओर अंधेरा छा गया था। मैं ऐसा मानता हूं कि अगर विनोवाजी ने भूमिदान यज्ञ प्रारंभ न किया होता तो गांधीवाद और सर्वोदय को हम भूल जाते, गांधीजी की बातों पर से हमारा विश्वास उठ जाता, सर्वोदय का मार्ग रुक जाता। भूदान यज्ञ के कार्य-क्रम को सामने रखकर विनोवाजी ने हमें नई जान दी है। नहीं तो रचनात्मक काम करने वाले अपने अपने काम करते रहते। उससे देश को अवश्य कुछ लाभ होता परन्तु यह जो आशा जनता की थी कि गांधीजी के लोग देश को नया बनाने का उद्योग करेंगे, वह नहीं रहती और देश में खूनी जंग होते। उससे दूसरा ही नतीजा निकलता।"

विनोवाजी सच्चे अर्थ में क्रान्तिकारी हैं। उन्होंने गहन अध्ययन एवं कठिन साधना के द्वारा देश और समाज की बीमारी का पूरा पता

लगा लिया है। वे रोग के मूल पर आघात करके उसे पूरी तरह समाप्त कर देना चाहते हैं। आज शोषण और अपहरण की लहर सारी दुनिया को ढ़कती दिखाई देती है। इसके विरुद्ध आवाज़ भी उठ रही है, प्रयत्न भी होरहे हैं लेकिन दुनिया के अधिकांश लोग इस आग को आग से ही बुझाना चाहते हैं, लोभ को लोभ से ही मिटाना चाहते हैं। अतः समस्या का ठीक ठीक हल नहीं दिखाई देरहा है। विनोबाजी ने इस अपहरण के विरुद्ध अपरिग्रह की आवाज़ बुलन्द की है। वे कहते हैं कि आज की समस्या केवल कुछ अधिक सम्पत्तिवालों की सम्पत्ति ज़ब्त कर लेने से हल नहीं होगी। उसके लिए तो सम्पत्तिवान और सम्पत्तिहीन दोनों के मानस को बदलना होगा। उनके भूमिदान यज्ञ का अर्थ केवल भूमिहीनों को भूमि देना नहीं है। यदि केवल यही अर्थ रखा जाय तो अर्थ संग्रह की यह बुद्धिहीन प्रतियोगिता कभी रुक नहीं सकती। इसीलिए वे कहते हैं—"केवल भूमि के वितरण में ही मेरी दिलचस्पी नहीं है। मेरी दिलचस्पी है आध्यात्मिक क्रान्ति में। मैं इस प्रक्रिया में से गुज़रने वाले लोगों के जीवन और हृदय के परिवर्तन को इस आन्दोलन की सबसे बड़ी सफलता समझता हूँ। फिर चाहे ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम ही क्यों हो।"

विनोबाजी हृदय-परिवर्तन चाहते हैं। वे लोक मानस ही बदल देना चाहते हैं। इसलिए तो वे पूंजीपती ही नहीं, ग़रीब के भी हृदय परिवर्तन पर ज़ोर देते हैं। उनका कहना है कि सम्पत्ति का लोभ दोनों जगह है अतः दोनों ही उससे मुक्त होने चाहिए। तभी समतावादी समाज की दृढ़ नींव पड़ सकेगी। यदि संग्रह के प्रति थोड़ा भी झुकाव शेष रहता है तो उससे संघर्ष और असमानता फैले बिना न रहेंगे और आदमी बुराई के विषैले घेरे से नहीं निकल सकेगा।

लोक मानस को स्पर्श करने और उसे बदलने के लिए विनोबाजी ने विचार प्रवर्तन प्रारंभ किया है। जब उनसे यह पूछा गया कि भूमि के पुनर्वितरण का काम तो सरकार क़ानून के द्वारा अच्छी तरह कर

सकती है फिर आप उससे यह काम क्यों नहीं करवाते तो उन्होंने कहा था—"क्रान्तिकारी विचार को फैलाने का काम सरकार नहीं कर सकती। जब विचार लोकमान्य होगा तभी सरकार यह काम करेगी और उसको यह करना होगा। अगर वह ऐसा नहीं करेगी तो बदल जायगी। जहां लोकसत्ता चलती है वहां सरकार नौकर होती है। अगर आपको कोई बात समझानी होती है तो आप नौकर को समझाते हैं या मालिक को? मालिक को समझाने पर यदि बात उसको जंच गई तो वह अपने मुनीम को हुक्म देगा कि दान पत्र तैयार करो। इसी लिए मैं मालिक को याने आपको समझा रहा हूँ। मालिक आप है। मेरा विचार अगर आपको जंचेगा तो आप अपने नौकर से काम लेंगे अगर वह काम नहीं करेगा तो आप उसे हटा देंगे और तब दूसरा नौकर आएगा।........जो सरकार के जरिये काम करने की बात कहते हैं वे जानते ही नहीं कि विचार प्रवर्तन कैसे होता है। बुद्ध भगवान ने लात मारकर राज्य छोड़ दिया था और ज्ञान प्राप्ति के बाद उन्होंने पहली दीक्षा एक राजा को याने अपने पिता को दी। फिर सम्राट अशोक आये और उसके बाद हिन्दुस्तान में एक राज्यक्रान्ति हुई। जिन राजाओं ने उस विचार को नहीं माना, वे गिर पड़े। जो लोग अपने को कम्यूनिस्ट कहते हैं उनसे मैं पूछना चाहता हूँ कि मार्क्स के हाथ में कौनसी राज्य सत्ता थी? केवल उसके विचारों से ही तो क्रान्ति हुई। विचार का बीज जब लोक-हृदय की गहराई में पहुँच जाता है तब सरकार उस पर अमल करती है और अगर वह न करे तो गिर जाती है।" कौन नहीं जानता कि विचार का यह बीज जहां जहां बोया गया है, वहां वहां वह उगने लग गया है। आज तो उसमें हरे हरे पत्ते फूटने लगे हैं। वह दिन दूर नहीं है जब उसमें फूल और फल भी निकलने लगेंगे।

लोक मानस को बदलने के लिए दूसरा महत्व का काम है जीवन के मूल्यों को बदल देना। लेकिन जीवन के नये मूल्यों की स्थापना

साधारण काम नहीं है। वह न तो लम्बे भाषणों से हो सकता है न बड़े बड़े ग्रन्थों से। उसके लिए जनता की भावना को समझना होगा, उसके हृदय को स्पर्श करना होगा। जब तक ऐसा नहीं होता बुद्धि ग्राह्य होने पर भी वह तत्व जीवन में नहीं आ सकता, क्रियात्मक रूप ग्रहण नहीं कर सकता। विनोबाजी लोगों के हृदय को स्पर्श करने के लिए ही, जीवन के नये मूल्यों की स्थापना करने के लिए ही ग्राम ग्राम में पैदल यात्रा कर रहे हैं। जो विनोबाजी की पैदल यात्रा में उनके साथ रहे हैं, वे जानते हैं कि विनोबाजी को इस काम में कितनी जबरदस्त सफलता मिल रही है। कितने व्यक्ति अपनी सारी भूमि श्रद्धा से विनोबाजी के चरणों में अर्पित कर जाते हैं। स्त्रियाँ गहने दे डालती हैं और बच्चे तक इस काम में योग देते हैं। वे जिधर जाते हैं, उधर नया वातावरण बनता हुआ दिखाई देता है। ग्राम के ग्राम अपनी पूरी ज़मीन भूमिदान यज्ञ के लिए दे देते हैं और चारों ओर ग़रीब-अमीर, विद्वान्-निरक्षर तथा ब्राह्मण और शुद्र में सद्भावना एवं प्रेम बढ़ता हुआ दिखाई देता है। यही क्रान्ति है।

सन् १९५२ के अन्त तक की बात है। जयप्रकाश बाबू प्रजा-समाजवादी दल की रैली में सम्मिलित होने बेदोल (बिहार) गये थे। इस समय वे भूदान के काम में पूरी तरह जुट गये थे। अतः वहां भी दिन भर भूमिदान का ही काम होता रहा। रात्रि के समय सभा में एक सज्जन ने चिढ़ कर कहा—'सुबह से अब तक हमें भूदान के सिवाय और कुछ सुनने को नहीं मिला। हमने समझा था कि रैली में दल के आगामी कार्यक्रम की सूचना मिलेगी, कार्य की दिशा समझाई जायगी लेकिन यहां तो भूदान ही भूदान है। स्वयं प्रतिक्रियावादी बनकर दूसरों को आध्यात्मिक उपदेश देने का काम हो रहा है। आर्थिक क्रान्ति की योजना के सम्बन्ध में एक शब्द भी नहीं।" इसपर जयप्रकाश बाबू मुस्कराकर शान्ति से बोले—"भाई, क्या 'क्रान्ति क्रान्ति' चिल्लाने से क्रान्ति होगी? तुम्हारी आँखों के सामने अमीरों की जमीन ग़रीबों को

बांटी जा रही है, क्या यह क्रान्ति नहीं हैं ? यहाँ वर्ग संघर्ष के विना क्रान्ति हो रही है। लेकिन तुम्हारे साम्यवाद के ग्रन्थों में ऐसा लिखा नहीं है। इसलिए तुम इस प्रत्यक्ष अनुभूति को स्वीकार नहीं कर रहे हो। आँखें मूंद कर सिद्धान्त रटते बैठे हो। क्रान्ति के लिए जो आग उस फ़कीर के हृदय में लगी हुई है उस ज्वाला की यदि एक चिनगारी भी हमारे हृदय में जल उठेगी तो हम सब पावन होजायंगे, क्रान्तिकारी शब्द के पात्र बनेंगे !" जयप्रकाश बाबू ने उस क्रान्ति के दर्शन किये हैं। इसीलिए तो वे भूमिदान यज्ञ में इतनी तत्परता से जुट गये हैं।

लोक मानस को बदलने का काम पैदल यात्रा के विना हो ही नहीं सकता। शंकराचार्य, बुद्ध, ईसा सभी धर्म प्रवर्तकों ने पैदल यात्राएं की थीं और लोक मानस को स्पर्श करके उसे बदल दिया था। इस हवाई जहाज, रेडियो और टेलीविजन के युग में मनुष्य तो हवा में उड़ते ही हैं, दुर्भाग्य से उनके विचार भी हवा में उड़ते हैं। बेचारे ग़रीब ग्रामीणों की पहुँच वहां तक कैसे हो सकती है ? यही कारण है कि इतनी वैज्ञानिक प्रगति के बाद भी ग्रामीण उसी जगह खड़े हैं, उसी तरह पिछड़े हुए हैं। नवीन विचारों की धारा उन तक पहुंच ही नहीं पाती। विनोबाजी की पैदल यात्रा ने सब का ध्यान ग्रामों की ओर आकर्षित कर दिया है और लोग इस तथ्य को तीव्रता से अनुभव करने लगे हैं कि सच्चा भारत ग्रामों में ही है। ग्रामों को स्वावलम्बी बनाये विना—ग्राम राज्य की स्थापना किये विना, देश की समस्या हल नहीं हो सकती।

भूमिदान आन्दोलन लोक मानस को बदलने और जीवन के नये मूल्य स्थापित करने का आन्दोलन है। आज नैतिक दृष्टि से हम लोग काफ़ी गिर गये हैं। साधारण व्यक्ति की बात छोड़िये, बड़े बड़े लोक नेताओं के जीवन में भी जहां स्वराज्य के पहले त्याग, उदारता और स्नेह थे वहां स्वराज्य के बाद उनमें भोग, अनुदारता और शिथिलता दिखाई देते हैं। सब ज़्यादा से ज़्यादा सुख अपने लिए प्राप्त करने की

दौड़ में लगे हैं। जीवन जैसे जड़ बन गया है उसमें न स्नेह है, न श्रद्धा है न परोपकार। हम जैसे भूल ही गये हैं कि हम सामाजिक प्राणी हैं। सबके हित में ही हमारा हित निहित है और सबके सहयोग से ही हमारी समस्याएं सुलझ सकती हैं। विनोबा इसी वृत्ति का निर्माण करना चाहते हैं। वे जहां जहां जाते हैं प्रेम, उदारता, त्याग, विनयशीलता, सहानुभूति और सहयोग का सागर उमड़ पड़ता है। व्यक्ति, अपने हितों को भूल कर समष्टि के हितों में उन्हें विलय करता हुआ दिखाई देता है। इसीलिए उन्होंने एक बार अपने प्रवचन में कहा था—"भूदानयज्ञ के द्वारा वातावरण तैयार होरहा है, लोगों को नैतिक मूल्यों का अनुभव होरहा है, सामाजिक अन्याय असह्य प्रतीत होरहा है और उससे मुक्त होने की भावना का निर्माण होरहा है। लोगों के ध्यान में यह बात भी आरही है कि जो लोग सबसे ज़्यादा पिछड़े हुए हैं उन्हीं पर हमें सबसे ज़्यादा ध्यान देना चाहिए। मैं इसी को प्रजासूय यज्ञ कहता हूँ। इसी को धर्मचक्रप्रवर्तन के नाम से पुकारता हूँ और इसी को मैंने किसान मज़दूरों का राज्य कहा है। इन सब बातों से तुलना करते हुए केवल ज़मीन का प्रश्न हल करना मुझे विशेष महत्वपूर्ण कार्य नहीं मालूम होता। आज जो वातावरण तैयार हो रहा है और इस आन्दोलन में जो जीवन तत्व है यदि उसका स्पर्श सबको होने लगेगा तो ज़मीन का प्रश्न तो हल होगा ही दूसरे सारे प्रश्न भी हल होजायंगे क्योंकि मानव के सामने जो जो प्रश्न हमेशा उपस्थित हुए हैं और उनके मूल में जो दुर्बुद्धि और कुप्रवृति होती है, इसके द्वारा उस पर प्रहार हो रहा है।"

विनोबाजी आज जो क्रान्ति कर रहे हैं वह मनुष्य के बुनियादी प्रश्नों को हल कर रही है। वह जीवन में नैतिक मूल्यों की स्थापना कर रही है। वह द्वेष की जगह स्नेह, संकुचितता की जगह उदारता, अन्याय की जगह न्यायं, स्वार्थ की जगह त्याग तथा असहयोग की जगह सहयोग की स्थापना कर रही है। इस क्रान्ति की उत्तरोत्तर तीन

सीढ़ियां हैं—(१) हृदय परिवर्तन (२) जीवन परिवर्तन (३) समाज परिवर्तन। यही है विनोबा की क्रान्ति का राज मार्ग। कौन कह सकता है कि इस पर चलकर मानव समाज कल्याण की ओर नहीं बढ़ेगा।

:: २५ ::

विनोबा का व्यक्तित्व

"हमारा देश राजाओं को नहीं पूजता लेकिन हमारी बहनें भी संतों को जानती हैं! विनोबाजी ज्ञानेश्वर, तुकाराम आदि सन्तों की परम्परा के हैं।

—मैथिलीशरण गुप्त

"गांधीजी से तो मैंने भरभर कर पाया है। लेकिन उनके अलावा औरों से भी पाया है। जहां जहां से जो मिला वह मैंने मेरा कर लिया। अब वह सारी पूंजी मेरी होगई है। उसमें गांधीजी की दी हुई कितनी है और दूसरों की दी हुई कितनी है उसका अलग अलग हिसाब मेरे पास नहीं है। जो विचार मैंने सुना वह अगर मुझे जंच गया और उसे मैंने हज़म कर लिया तो वह मेरा ही होगया। वह अलग कैसे रहेगा? मैंने केले खाये और हज़म किये उनका मांस मेरे शरीर पर चढ़ा। अब वे केले कहां रहे? वे तो मेरा जिस्म बन गये। इसी तरह मैंने जो विचार अपनाया वह मेरा ही होगया।"

—विनोबा

घुटनों तक धोती, पैर में चप्पल, शरीर पर चद्दर और आंखों पर चश्मा—यह है सन्त विनोबा की वेषभूषा। इस सीधी-साधी वेशभूषा और कृष शरीर में उनके लम्बे हाथ, उन्नत भाल और तेजस्वी मुख छिपाये नहीं छिपते। वे सादगी और सरलता के अवतार हैं। आठ दस महीनों तक उनके दाढ़ी और सिर के बाल बढ़ते रहते हैं और फिर जब

जी में आता है तब उन्हें कटवा देते हैं। जो लोग उनकी बढ़ी हुई दाढ़ी देख चुके होते हैं वे इस परिवर्तन को देखकर उन्हें सहसा पहिचान नहीं पाते। लेकिन वे ऐसा इसलिए करते हैं कि न तो उन्हें बढ़े हुए बालों से मोह है न उन्हें रोज़ रोज़ कटवाना ही पसन्द है। दाढ़ी रखवाने वाले प्राय: किसी विशिष्ट उद्देश्य से दाढ़ी रखते हैं। कोई रोबदाब के लिए दाढ़ी रखते हैं तो कोई धार्मिक भावना से अभिभूत होकर। लेकिन विनोबाजी की दाढ़ी के पीछे ऐसी कोई भावना नहीं है। दाढ़ी तो क्या वे अपने शरीर के ही प्रति अनासक्त हैं। शरीर उनके लिए सेवा का साधन है—धर्म की साधना का माध्यम है। हृष्टपुष्ट बनने या शरीर को सजाने की, कल्पना ही कभी उनके मस्तिष्क में नहीं आई। जिन लोगों को उनसे मिलने का मौक़ा मिला है, वे जानते हैं कि इस सीधी साधी वेशभूषा और विनम्र व्यवहार में कितना बड़ा सन्त और तपस्वी छिपा हुआ है।

विनोबा प्राचीन सन्त परम्परा की एक लड़ी हैं। वे तुलसी, कबीर, नानक, दादू, तुकाराम, ज्ञानदेव, नामदेव और समर्थ रामदास की कोटि के सन्त हैं, शंकराचार्य की कोटि के आचार्य हैं तथा दधीचि और शुकदेव की कोटि के तपस्वी हैं। उनके व्यक्तित्व में सन्त, आचार्य और तपस्वी का सुन्दर समन्वय होगया है। उनमें गीता के कर्मयोगी, स्थित प्रज्ञ एवं भक्त तीनों के एक साथ दर्शन होते हैं। उनके प्रशान्त गम्भीर मुख मण्डल, सीधी साधी वेशभूषा, तेजस्वी ललाट, स्वप्नदृष्टा लोचन, एवं प्रभावशाली व्यक्तित्व को देखकर, मन श्रद्धा से उनके चरणों में झुक जाता है।

वे एक उच्च कोटि के साधक और तपस्वी हैं। उनकी आत्मचिन्तन और आत्मोपलब्धि की साधना काफ़ी ऊंचे स्तर पर पहुंच गई है। गीता का कर्म सन्यास उन्हें सहज सिद्ध होगया है और आज वे जीवन्मुक्त बन गये हैं। लेकिन जिस तरह गांधीजी ने कभी हिमालय में जाकर एकान्त साधना और आत्मचिन्तन की बात नहीं सोची उसी तरह विनोबा की

जीवन-गङ्गा भी आस-पास के गड़े भरे बिना आगे बढ़ना नहीं जानती। जनसेवा ही उनकी पूजा है। दरिद्रनारायण की उपासना करते हुए ही वे गांव गांव धूल छानते फिर रहे हैं। जब तक आस-पास दरिद्रता, अशिक्षा, अनैतिकता, असमानता और अनाचार का राज्य है वे उसकी उपेक्षा कैसे कर सकते हैं? वे किस तरह परंधाम या हिमालय जाकर आत्मचिन्तन में लीन हो सकते हैं? इसीलिए वे अपना सनातन, अभिनव संदेश देते हुए घूम रहे हैं और जगह जगह उन्हें आत्म साक्षात्कार होता है, व्यक्ति व्यक्ति में परमेश्वर का दर्शन होता है। आत्मचिन्तन और लोकसेवा उनके लिए एक और अभिन्न बन गये हैं।

विनोबा की दृष्टि बड़ी पैनी है। वे प्रत्येक बात की गहराई में जाते हैं और सभी दृष्टियों से उस पर विचार करते हैं। गणित में प्रारम्भ से ही उनकी रुचि रही है। अतः बिना सोचे समझे—बिना हिसाब लगाये वे किसी भी काम को नहीं उठाते और जिसे उठाते हैं उसे पूरा करने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं। अपनी इस पैनी दृष्टि और हिसाब लगाकर योजनापूर्वक बढ़ने की वृत्ति के कारण ही उन्होंने रचनात्मक कार्यों को गति दी है। काका कालेलकर ने उनके बारे में लिखा है—"विनोबा गणिती हैं। हिसाब लगाये बिना न कुछ पढ़ते हैं न कुछ सोचते हैं, न कोई काम हाथ में लेते हैं। बचपन में जिसने किस्म-किस्म की शरारतें की हैं, उसे दुनिया की पहिचान हो ही जाती है। कोई ऐसा न समझे कि विरक्त और अलिप्त विनोबा दुनिया का व्यवहार नहीं समझते। दुनियवी लोगों के व्यवहार से इन्होंने अपना व्यवहार अलग भले ही रखा है लेकिन नापतोल कभी नहीं छोड़ा है।

"गणिती होने के कारण वे अच्छे अध्यापक बने, गणिती होने के कारण ही उन्होंने खादीशास्त्र को वेग दिया, गणित बुद्धि ने ही उनसे स्वराज्यशास्त्र लिखवाया। गणित बुद्धि का विकास होकर ही उनमें दार्शनिकता आगई है। दुनियवी व्यवहार के प्रति उनमें जो उदासीनता दिखाई देता है वह भी गणित बुद्धि से ही फलित हुई है।

"धीरज भी इनमें इसी गणित निष्ठा से ही आया है। 'पकने के पहले वेचना नहीं चाहिए' यह इनका एक जीवन सूत्र है। 'आंच लगने से जब तक धुंआ ही धुंआ निकलता है तव तक दुनिया के सामने मत खड़े रहो। आँच वढ़ने पर जव धुंए की ज्वाला वन जायगी तव दुनिया स्वयं उसे देख लेगी।' यह भी विनोवा का एक जीवन सूत्र है।"

एक वार विनोवा रेल में यात्रा कर रहे थे। कताई का समय आया तो वे चर्खा खोलकर सूत कातने लग गये। कातते समय उनका सूत वहुत कम टूटता है और यदि टूटता है तो वे उसे जोड़े विना आगे नहीं वढ़ते। गाड़ी के धक्के से सूत टूटने लगा। जव जव सूत टूटा उन्होंने उसे जोड़ा और थोड़ा सा भी व्यर्थ नहीं जाने दिया। उनके पास ही एक वी. ए.जी. उपाधि प्राप्त युवक वैठा हुआ था। तीन चार वार सूत टूटने और उसे जोड़ने की वात देखकर वोला—"टूटे हुए सूत को ज़ोड़ने में जो समय लगता है क्या उस समय में ज़्यादा सूत नहीं काता जा सकता?"

"लेकिन इन धागों को व्यर्थ तो नहीं फेंकना चाहिए।" विनो-वाजी ने कहा।

"प्रत्येक उद्योग में कुछ न कुछ तो वेस्ट होता ही है।"

"आप प्रतिशत कितना वेस्ट वुरा नहीं समझते?"

"पांच प्रतिशत तो मानना ही चाहिए।"

"यदि पांच प्रति सैंकड़ा वेस्ट मानलें तो वड़ा अनर्थ हो जायगा। क्या आप जीवन के पांच वर्ष व्यर्थ खोने के लिए तैयार हैं? क्या भारत की खेती की भूमि में से ५ प्रतिशत भूमि छोड़ देने के लिए आप तैयार हो जायंगे? हिन्दुस्तान के चालीस करोड़ व्यक्तियों में से यदि ५ प्रति-शत के हिसाव से दो करोड़ व्यक्ति मर जाते हैं तो क्या कोई हर्ज नहीं? अरे भाई हमको तो यह प्रयत्न करना चाहिए कि कुछ भी व्यर्थ न जाने पावे। हाँ, मजवूरी के कारण कुछ चीज़ व्यर्थ जाती हो तो भले ही जाय।" युवक पर इस उत्तर का असर हुए विना न रहा।

विनोवाजी को वोलने का व्यसन नहीं है, हालांकि वे वहुत अच्छा

बोलते हैं। आप उनके पास जाइये और बातचीत कीजिये। वे आपकी बात अधिक सुनेंगे अपनी बात बहुत कम कहेंगे। घन्टे भर की बातचीत में वे मुश्किल से ५-७ मिनिट बोलेंगे। वे जितना बोलते हैं उतना नपातुला और संयत होता है। बोलने की अपेक्षा काम करने में ही उनकी दिलचस्पी अधिक है। वे पहले काम करके दिखाते हैं, उसके बाद बहुत थोड़ा बोलते हैं। वर्षों तक मेहतर का काम करके उन्होंने मेहतर भाइयों को उपदेश देने का अधिकार अर्जित कर लिया है लेकिन अपने उस अधिकार का प्रयोग वे बहुत कम करते हैं। साम्ययोग का प्रयोग करके उन्होंने किसान भाइयों को तथा कताई-बुनाई का काम करके उसमें दिलचस्पी रखने वाले अध्यापक, बालकों तथा अन्य लोगों को भी कहने का अधिकार प्राप्त कर लिया है लेकिन अपने इस अधिकार का प्रयोग भी वे बहुत संयत ढंग से करते हैं। अधिक काम और कम बात करने से उनके शब्दों में ज़बरदस्त शक्ति आगई है। वे थोड़े से शब्दों में बड़ी बात कह देते हैं। एक बार जब वे जेल से लौटे तो एक व्यक्ति ने उनसे पूछा—"जेल का जीवन कैसा है?" विनोवा ने कहा—"आपने सर्कस देखा है?" "हाँ।" "तो बस ठीक है। जेल को उससे बिलकुल उल्टा समझो। सर्कस में आदमी पशु पर शासन करता है, जेल में पशु आदमी पर।" इन नपे तुले शब्दों में मानों विनोवाजी ने गागर में सागर भर दिया था।

विनोवाजी के उत्तर भी इसी तरह के पैने और सारगर्भित होते हैं। एक बार एक कम्यूनिस्ट भाई ने विनोवाजी से कहा—"यह ठीक है कि खादी से लोगों को दो पैसे मिल जाते हैं, उनकी भूख कुछ शान्त हो जाती है लेकिन क्या उससे उनकी स्वातन्त्र्य प्राप्ति की इच्छा घटने न लगेगी?" विनोवाजी ने कहा—"आप दोनों समय पेट भर भोजन करते हैं इससे क्या आपकी भूख घट जाती है? खादी से लोगों को कुछ रोटी मिलती है लेकिन वह केवल रोटी नहीं होती। खादी बोलती है, प्रचार करती है। कांग्रेस क्या है, गांधीजी कौन हैं, स्वराज्य किसे कहते

हैं, आन्दोलन क्या है, ये सब बातें सोचने, विचारने और समझने का अवसर मिलता है। अतः वह स्वतन्त्रता की प्यास को और बढ़ाती है, स्वाधीनता की भावना जागृत करती है और नवीन विचार एवं चेतना प्रदान करती है।" इस उत्तर से कम्युनिस्ट भाई चुप हो गये।

इसी प्रकार की एक और बात है। एक बार धूलिया की सभा में एक वकील साहब ने पूछा—"अमुक व्यक्ति को क्या हमें केवल इसलिए वोट देना चाहिए कि वह हरिजन है ? क्या हमें योग्यता-अयोग्यता का विचार बिलकुल नहीं करना चाहिए?" विनोबाजी ने कहा—"मैं आपको महाभारत की एक कथा सुनाता हूँ। जब पाण्डव वनवास कर रहे थे तब एक दिन धर्मराज को प्यास लगी। उन्होंने पानी लाने के लिए कहा। अर्जुन दौड़ते हुए एक सरोवर के किनारे पहुँचे, वहाँ उनको एक यक्ष मिला। उसने कहा—'पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो इसके बाद ही पानी ले जा सकते हो।' अर्जुन ने उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं दिया और पानी ले जाने लगे। बस, वे वहीं गिर कर मर गये। जब देर होगई तो भीम आये। उनसे भी यक्ष ने वही बात कही और जब वे भी नहीं माने तो उनका भी वही हाल हुआ। यही हाल नकुल और सहदेव का भी हुआ। अन्त में स्वयं धर्मराज आये। जब उनसे भी यक्ष ने वही बात कही तो वे बोले—"पूछो।" यक्षने प्रश्न पूछे और धर्मराज ने उनके ठीक ठीक उत्तर दे दिये। यक्ष प्रसन्न होगया। बोला—'क्या चाहते हो, वर मांगो।' धर्मराज ने कहा—'मेरे सबसे छोटे भाई सहदेव को जीवित कर दीजिये।' यक्ष हंसा और बोला—"भीम अर्जुन तुम्हारे सगे भाई हैं और पराक्रमी भी हैं। उनको छोड़कर तुम सहदेव के लिए प्राणदान क्यों मांगते हो !" धर्मराज ने कहा—"सबसे छोटे को ही सबसे पहले प्राणदान दीजिये।" यक्ष बड़ा खुश हुआ और बोला—"मैं सभी को प्राणदान देता हूँ।" इसी प्रकार हमें भी उन्हें आगे आने का अवसर देना चाहिए जो सबसे पीछे हैं। जो पिछड़े हैं, उन्हें पहले उठाइये। आप इस काम में उनकी सहायता कीजिये अपना ज्ञान और अनुभव

उन्हें दीजिये और उन्हें सारा कामकाज संभालने दीजिये। जब हम सब भाई भाई हैं तो उन्हें यह अवसर क्यों नहीं मिलना चाहिए।"

विनोबाजी बहुत कम बोलते है लेकिन प्रवचन प्रारम्भ करते हैं तब उनकी वाणी गंगा के प्रवाह की तरह लगातार बहती रहती है। उसमें ताज़गी, निर्मलता और अद्‌भुत जीवनदायिनी शक्ति होती है। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई प्राचीन ऋषि आज की नवीनतम समस्याओं का अध्ययनपूर्ण, शास्त्रसम्मत, सत्य, सरल एवं अचूक हल देता जा रहा है। उनके ये हल पूर्व परम्परा से आज की समस्याओं की कड़ी मिला देते हैं और पुरातन के आलोक में भविष्य का पथ स्पष्ट होता दिखाई देने लगता है। भूदान-यज्ञ के सम्बन्ध में उन्होंने इतने पहलुओं से कहा है कि उनके प्रत्येक प्रवचन में नवीनता लगती है। उनके शब्द हृदय की गहराई में से निकलते हैं और वे सीधे हृदय को स्पर्श करते हैं। गांधीजी, तिलक, ज्ञानेश्वर, तुकाराम, रामदास तुलसीदास जैसे सन्तों का स्मरण करके किसी सन्तभूमि में पहुँचकर या राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध, महावीर मुहम्मदसाहब जैसे महापुरुषों का ध्यान करके विनोबा गद्‌गद् हो जाते हैं, उनकी आंखों से आंसू उमड़ पड़ते हैं और कण्ठावरोध हो जाता है। ऐसे अनेक अवसरों पर लोगों ने उन्हें अश्रुगंगा में नहाते हुए देखा है। भूदान-यज्ञ के सिलसिले में जब वे अयोध्या से गुज़रे तो सारी रामायण मानो उनकी कल्पना में साकार होगई। राम और भरत के पवित्र चरित्र रोमाञ्चित करने लगे और जब वे तुलसीचौरा पर पहुँचे तो भावनाओं का वेग इतना उमड़ा कि आंसुओं को रोकना कठिन होगया। फिर क्या था, अश्रुगंगा बही और वह अपने प्रवाह में सारे उपस्थित जन समूह को भी बहाये बिना न रही। तुलसीदासजी के लिए उनके मन में बड़ी ज़बरदस्त श्रद्धा है। रामायण और विनयपत्रिका उनके प्रिय ग्रन्थों में से हैं और वे अक्सर इन ग्रन्थों का स्वाध्याय करते रहते हैं।

लेकिन विनोबा कोरे भावभीने और कोमल हृदय भक्त नहीं है।

उनकी भक्ति केवल रामायण रटने जैसी निष्क्रिय भक्ति नहीं है। जन सेवा और लोक कल्याण की भावना से अभिभूत होकर उनकी भक्ति सक्रिय साकार होगई है। दरिद्रनारायण की उपासना ही उनकी पूजा, अर्चा, भक्ति सब कुछ बन गई है। इसीलिए तो वे अपनी पैदल यात्रा के सिलसिले में चित्रकूट के पास शिवरामपुर पहुँचकर भी चित्रकूट देखने नहीं गये और लोगों के कहने पर बोले:—"मैं रामजी का ही काम कर रहा हूँ। एक मिनिट के लिए भी मैं उसे नहीं छोड़ सकता, यह उन्हीं की सेवा है।"

विनोबा की वाणी इतनी पवित्र, निर्मल और उदार होगई है कि उसमें रागद्वेष अथवा काम-क्रोध की थोड़ीसी भी गन्ध आपको नहीं मिलेगी। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि वे बड़ी से बड़ी बुराई को देखकर भी चुप और निष्क्रिय बने रह सकते हैं। ऐसे अवसरों पर एक सात्विक आवेश उनके चहरे पर दिखाई देने लगता है और आवाज़ तेज़ होजाती है। सन् १९५१ के मध्य में एक ऐसा ही अवसर आगया। संभवतः अगस्त का महीना था। पंचवर्षीय योजना के सम्बन्ध में बात करने के लिए योजना समिति के एक सदस्य श्री. आर. के. पाटिल विनोबाजी के पास आये। बातचीत प्रारम्भ हुई। सरकार द्वारा अस्थिर और अनिश्चित नीति अपनाने, खादी और ग्रामोद्योगों की उपेक्षा करने, अन्न स्वावलम्बन की प्रतिज्ञा भङ्ग करने, सन्तति नियमन के लिए कृत्रिम साधनों की सिफ़ारिश करने तथा इसी प्रकार की अन्य बातों को लेकर उन्होंने पाटिल साहब को ऐसा लताड़ा कि पास बैठे हुए व्यक्ति उनका यह सात्विक संताप देखकर हैरान रह गये। उन्हें कल्पना न थी कि भक्ति भावना में मस्त होकर अश्रु गंगा में नहानेवाले विनोबा कभी रुद्रावतार भी होसकते हैं।

गहरे चिन्तन, स्वाध्याय और भक्ति भावना में मग्न रहने वाले विनोबा यद्यपि आकाश में विचरण करते हैं तथापि उनके पैर हमेशा भूमि पर ही रहते हैं। गांधीजी की तरह बड़ी बड़ी बातों में लगे रहने पर

भी वे छोटी छोटी बातों को कभी नहीं भूलते हैं। भूदानयज्ञ के सिलसिले में जब वे फ़ैज़ाबाद पहुँचे और वहाँ प्रार्थनासभा में प्रतिदिन के अनुसार उनकी चादर मंच पर बिछी हुई नहीं देखी तो बोले—"नहीं, वही नित्य बिछाया जाने वाला कपड़ा लाइये, यह बूंदोंबूंदों वाला कपड़ा नहीं चलेगा।" दौड़ धूप मची। चादर कहीं भूल से इधर उधर रखा गई थी। महादेवी ताई तथा अन्य लोगों ने कहा आज इसी से काम चलने दीजिये, कल तक वह मिल जायगी। लेकिन वे नहीं माने। चरखा लेकर मंच से नीचे आगये और सबके साथ कातने लग गये। इसी बीच चादर मिल गई। वह मंच पर बिछाई गई तब कहीं वे मंच पर आकर बैठे।

समय की पाबन्दी करना विनोवाजी का अनुकरणीय गुण है। साबरमती आश्रम में रहते हुए एक वर्ष की छुट्टी लेकर जब वे आश्रम से गये और एक वर्ष बाद जब ठीक उसी समय आश्रम में लौटे तो गांधी जी ने उनकी इस बात की बड़ी प्रशंसा की थी। वे अपने समय की तो कीमत करते ही हैं, दूसरों के समय का भी सम्मान करते हैं। जहां कहीं उनको जाना होता है वे ठीक समय पर पहुँचते हैं और निश्चित समय पर कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। श्री बनारसीदासजी चतुर्वेदी ने इस सम्बन्ध में अपना एक संस्मरण इस प्रकार लिखा है:—

"विनोवाजी के साथियों के द्वारा हमको यह सन्देश मिल चुका था कि कुण्डेश्वर पहुँचकर वे उसी स्थल पर कलेवा करेंगे। उनको सूचना १८ घंटे पूर्व आ चुकी थी। पर हम लोगों के प्रमाद से पाच सात मिनिट का विलम्ब हो ही गया। विनोवाजी तथा उनकी पार्टी ने जो अल्प आहार सामग्री उनके पास थी उसी का उपयोग ठीक समय पर प्रारंभ कर दिया। जब हमारे यहां की सामग्री आई तो साथी संगियों ने उसको ग्रहण किया पर विनोवाजी ने अपने पास की अत्यल्प सामग्री से ही काम चलाया। उनका वह कृत्य मानो हम लोगों को एक उपदेश था कि प्रत्येक कार्य समय पर ही किया जाना चाहिए। अपने लेखों और

भाषणों के द्वारा वे जो चीज़ हम लोगों को नहीं समझा पाते, वह उन्होंने अपने मौन कार्य द्वारा समझादी। इस देश में हम लोग दूसरों से कितनी अधिक प्रतीक्षा कराते हैं ? कोई लीडर मोटर में आरहा है, घन्टों तक उसका इन्तज़ार करना पड़ता है, जनता ऊब कर उबासी लेने लगती है और सबका धैर्य छूटने लगता है लेकिन विनोबाजी इस प्रकार के लीडर नहीं हैं। यदि हम लोग उनसे समय की पाबन्दी ही सीख जांय तो देश का कल्याण होजाय।"

विनोबाजी तपस्वी हैं। उन्होंने अनेक कठिन साधानाएं की हैं। और तपस्या की इस अग्नि ने उनके व्यक्तित्व को उत्तरोत्तर अधिक तेजस्वी, अधिक प्रखर बना दिया है। उन्होंने भोजन, कताई, बुनाई, कृषि, तथा अन्य रचनात्मक कार्यों के सम्बन्ध में अनेक प्रयोग किये हैं। जहां अन्य लोगों की गति रुक जाती है वहां विनोबा की गति अधिक तीव्र हो जाती है। कताई के बारे में एक बार गांधीजीने कहा था— "आठ घन्टे काम करने के बाद तो पेटभर भोजन मिलना ही चाहिए। लेकिन पेट भर भोजन का मतलब है १५) मासिक। अर्थात् आठ आने प्रतिदिन। यदि कोई आठ घन्टे तक कताई करता रहता है तो उसे आठ आने देना ही चाहिए।" लेकिन प्रश्न यह हुआ कि इस तरह का प्रयोग करे कौन ? यदि खादी महंगी होगई तो कौन उसे खरीदेगा ? महात्माजी ने कहा—"दूसरों का शोषण करने के बजाय यदि खादी मर जाती है तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।" विनोबाजी ने यह प्रयोग प्रारम्भ किया। प्रतिदिन आठ घन्टे कताई करने लगे। जब दाहिना हाथ थक जाता तो वे बायें हाथ से कातने लगते। कुछ ही दिनों में उन्होंने दिखा दिया कि सात आने मजदूरी प्रतिदिन मिल सकती है और यदि सूत का नम्बर अधिक हो तो यह मज़दूरी और बढ़ सकती है। यह काम वे कितने ही दिनों तक करते रहे और इतना ही नहीं इससे जितना मिलता था उतने में ही अपना खर्च चलाते रहे। तकली से कताई करने में तो उन्होंने क्रान्ति ही कर दी थी। उन्होंने उसका एक

नया शास्त्र ही बना डाला। अब तकली से भी चर्खे के बराबर सूत निकालना संभव हो गया और भाऊपानसे, सत्यन् आदि विनोबाजी के शिष्य एक घन्टे तकली से ४०० तार कातने लग गये। दूध न लेने का प्रयोग तो उन्होंने कितने ही दिन तक जारी रखा और उसके लिए स्वास्थ्य की भी परवाह नहीं की। हरिजन सेवा के लिए भी उन्होंने काफ़ी कष्ट सहन किया है। वर्षों तक पाखाना सफाई करना, एक हरिजन बालक (श्री सत्यन्) को अपने साथ रखना, जहां हरिजन का प्रवेश नहीं हो ऐसे मन्दिर में न जाना, इस तरह के कुंओं पर नहीं जाना आदि कई कड़े नियम बनाकर उन्होंने उनका पालन किया है। उन्होंने ६-६ और ८-८ घन्टे तक कड़ा शरीरश्रम किया है। भोजन के सम्बन्ध में अनेक बन्धन रखे हैं, कम से कम कपड़ों का उपयोग किया है, वर्षों तक नंगे पैर रहे हैं और इसी प्रकार के अन्य बहुत से नियमों में बंध कर अपने को काफ़ी कसा है।

विनोबाजी में हृदय और बुद्धि का सुन्दर समन्वय है। श्री गोपालराव काले ने इस सम्बन्ध में लिखा है—"विनोबाजी से परिचय होने के पहिले मैंने स्वामी विवेकानन्द का एक वाक्य पढ़ा था—'मनुष्य को शंकराचार्य जैसी बुद्धि और भगवान बुद्ध जैसा हृदय मिलना चाहिए।' विनोबाजी को देखने के बाद मुझे उस वाक्य को याद कुछ अंशों में आती है। इतनी तेज़ बुद्धि पर हृदय ने जो विजय पाई है उसे देखकर आश्चर्य होता है। सूक्ष्म तर्क के साथ मार्मिक रसिकता और गणित के साथ ऊंचे दर्जे के काव्य का संयोग विनोबा में दिखाई देता है। गीता के सातवें अध्याय में 'ज्ञानी ही परम भक्त' तथा १८ वें अध्याय में 'भक्ति के द्वारा वह मुझे पहचानता है' कहे गये इन वाक्यों में जो समन्वय है वह विनोबा को देखने से जल्दी ही समझ में आजाता है। बुद्धि और हृदय का यह समन्वय शायद ही कहीं देखने में आता हो। हस्तमुद्रिका पर मेरी ही भांति विनोबाजी को भी विश्वास नहीं है और विनोबाजी अपना हाथ किसी को देखने भी नहीं देते हैं फिर भी मेरे

निकट परिचय के कारण उनका हाथ मुझे अनायास देखने को मिल जाता है। मैंने देखा है कि उनके हाथ पर बुद्धि और हृदय की रेखा एक ही है।"

तपोधन विनोबा आज नवीन क्रान्ति का सन्देश देते हुए चल रहे हैं। जब तक देश की समस्या हल न होगी, उन्होंने इसी तरह चलते रहने का निश्चय किया है। श्री बालकृष्ण शर्मा नवीन ने अपने एक लेख में लिखा है—"वेदान्त को मानव धर्म की आधार शिला के रूपमें संसार के सामने रखने का जो प्रयत्न वर्तमान युग में विवेकानन्द, रामतीर्थ, केशवचन्द्र सेन, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, भगवानदास, राधाकृष्णन् प्रभृति सन्तों और विद्वज्जनों ने प्रारम्भ किया उसे एक डग और आगे ले जाने का काम विनोबा कर रहे हैं। भारत के अगणित ग्रामों में अगणित जनों के हृदय में रामनाम ध्वनि की पीयूष वर्षा 'अमल सजल घनश्याम वपु' विनोबा कर रहे हैं! और वे इस अमृतवर्षण के साथ ही जन गणों के जीवन क्षेत्र में वेदान्त विचारों के बीज भी बोते चले जारहे हैं। और ज्ञानी विनोबा जानते हैं कि 'भूखे भजन न होहि गुपाला।' वे 'अन्नं वै प्राणः' के उपनिषद् वाक्य की महिमा समझते हैं। इसलिए जनता को नवनव सनातन विचारों का दान देते समय विनोबा जन नारायण के निमित्त भूमि ले भी रहे हैं। इस प्रकार पुरातन वेदान्त दर्शन तपोधन विनोबा के द्वारा अभिनव जीवन दर्शन के रूप में प्रकट हो रहा है। भारतवर्ष के आकाश में वेदान्त केशरी का गर्जन सदा गूंजता रहा है। इस बार विनोबा के गम्भीर करुण कण्ठ से वेदान्तमाता की वत्सल लोरियां विनिसृत हो रही हैं।"

विनोबाजी के साथ उनका अपना वातावरण रहता है। वे जहां जाते हैं, ज्ञान, कर्म और भक्ति का सुन्दर वातावरण निर्माण होजाता है। मैंने उनको कई बार देखा है, कई बार उनके प्रवचन सुने हैं लेकिन हर समय मुझे उनसे नई स्फूर्ति, नई चेतना मिली है। सर्वोदय के राऊ सम्मेलन में जब एक दिन उन्होंने प्रवचन देने के बजाय केवल रामायण

की दो तीन चौपाई ही गाकर सुनाई तो वातावरण में इतनी शान्ति इतनी पवित्रता और दिव्यता थी कि उसे जीवन भर नहीं भुलाया जा सकेगा। वे चौपाइयां थीं—

सन्त असन्तन के अस करनी। जिमि कुठार चन्दन आचरनी।
काटे मलय परशु सुनु भाई। निज गुण देह सुगन्ध वसाई।"

उनके शब्दों में इतनी झंझनाहट थी, हृदयस्पर्श करने की इतनी शक्ति थी कि कल्पना के सामने सन्त और असन्त का चित्र खिंचता चला जारहा था और सन्त के चरण में श्रद्धा से सिर झुकता जारहा था। रामायण को अनेक वार पढ़कर भी सन्त और असन्त को मैं इस रूप में नहीं देख पाया था। जब वे पंक्तियां गाई जारहीं थीं, मैंने अपने साथ अन्य कई श्रोताओं की आंखों में अश्रु झलझलाते देखे थे।

इसी प्रकार एक दिन परंधाम की प्रार्थना सभा में जब वे तन्मय होकर गारहे थे—'साकर दिसे परि गोडी ना दिसे हे त्या परि जनार्दन' तो मैंने ऐसा अनुभव किया मानो विनोवा इस व्यक्तता के आवरण को चीरकर उसमें छिपे हुए अव्यक्त का दर्शन करा रहे हैं। मराठी अच्छी तरह समझने की क्षमता न रखते हुए भी मैंने उस भजन को अच्छी तरह समझ लिया था और विनोवा की भक्ति भावना देखकर मेरी आंखें गीली हुए बिना न रहीं थीं। जब मैंने उन्हें परंधाम में रहट चलाकर प्रार्थना करते हुए, घन्टों कुआ खोदते हुए, खेतों में काम करते हुए, कताई करते हुए या भूदान यज्ञ के सम्बन्ध में यात्रा करते हुए देखा तब भी मैंने इसी प्रकार रोमाञ्च अनुभव किया था। अपने पावन स्पर्श से किसी भी वस्तु को जगमगा देने की क्षमता उनमें स्पष्ट दिखाई देती है। भारतीय संस्कृति, तत्वज्ञान, सहित्य सब कुछ उनमें नवीन चेतना के साथ पुष्पित और पल्लवित होता हुआ दिखाई देता है। उनकी प्रत्येक वात में मौलिक चिन्तन के दर्शन होते हैं। भूदानयज्ञ पर उन्होंने वहुत कुछ कहा है लेकिन उनके किसी प्रवचन में आपको पिष्टपेपण नहीं मिलेगा। नवीनजी ने

उनकी मौलिकता के बारे में अपना एक संस्मरण इस प्रकार लिखा है:—"सन् १९३९ की पहली अगस्त को विनोबा लोकमान्य तिलक को अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करते हुए भारत की एकता का प्रसंग छेड़ बैठे। कहने लगे—'वाल्मीकि ने अपनी रामायण के प्रारंभिक श्लोकों में राम के गुणों का वर्णन किया है। राम का गुणगान करते हुए राम कैसे थे इसका वे यों वर्णन करते हैं कि 'समुद्र इव गांभीर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव' स्थिरता ऊपर वाले हिमालय जैसी और गांभीर्य पैरों के निकट वाले समुद्र जैसा। देखिये कैसी विशाल उपमा है! एक सांस में (आदि कवि ने) हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक के दर्शन करा दिये। पांच मील ऊंचा पर्वत और पांच मील नीचा सागर (दोनों) एक दम दिखाए। श्लोक के एक ही चरण में उत्तर भारत और दक्षिण भारत दोनों का समावेश कर दिया। कैसी विशाल और भव्य उपमा है। देखा आपने! ये हैं विनोबा। वाल्मीकि के एक अनुष्टुप के अर्धांश का इतना मौलिक, इतना चमत्कारी, इतना उदात्त, इतना हृदयग्राही इतना बुद्धि तर्क वैभव पूर्ण अर्थ विनोबा के सदृश महान मनीषी के अतिरिक्त और कौन कर सकता है। साहित्य के महान आलोचक भी यदि वे 'स्वयं धीराः पंडितं मान्य मानाः इन्द्रम्यमाना' नहीं है तो विनोबा के इस अर्थ को सुनकर उनके सामने नतमस्तक हो जायंगे। निश्चय ही इस आधे श्लोक में वाल्मीकि ने मानो राम के सम्पूर्ण चरित्र को उत्तर से लेकर दक्षिण तक राम के चरण चिन्हों द्वारा खचित आर्य संस्कृति रेखा को और इस प्रकार राम के जीवन की महती वन पर्यटन साधना को हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। और हम भारतवासी धन्य हैं कि विनोबा भगवान राम की, वही पर्यटन साधना हमारे बीच साध रहे हैं।"

जब तक वे एकान्त साधना में मग्न थे, लोग उनको बहुत कम जानते थे लेकिन जब से वे भूमिदान यज्ञ और सम्पत्तिदान यज्ञ का सन्देश सुनाते फिर रहे हैं तब से जनता के हृदय में इतना आदर का स्थान

प्राप्त कर चुके हैं जितना देश के किसी बड़े से बड़े नेता को भी प्राप्त नहीं है। उनके इस स्थान का मुकाबला करनेवाला आज देश विदेश में कोई नहीं है। उनको पाकर हमारा देश गांधीजी के अभाव को उतनी तीव्रता से अनुभव नहीं कर रहा। उनकी इन सब विशेषताओं और गुणों को देखकर ही तो गांधीजी ने कहा था—"पुत्र पिता से बढ़ गया है।"

:: २६ ::

नैष्ठिक ब्रह्मचारी

"मैंने अध्ययन के लिए ब्रह्मचर्य रखा। उसके बाद देश को सेवा करता रहा। वहाँ भी इन्द्रिय-निग्रह को आवश्यकता थी लेकिन बचपन से इन्द्रिय-निग्रह का अभ्यास हो चुका था इसलिए बाद में मुझे वह कठिन मालूम नहीं हुआ। मैं यह नहीं कहता कि ब्रह्मचर्य आसान चीज़ है। हाँ, विशाल कल्पना मन में रखोगे तो आसान है। अच्छा आदर्श सामने रखना और उसके लिए संयमी जीवन का आचरण करना इसी को मैं ब्रह्मचर्य कहता हूं।" —विनोबा

विनोबाजी ने १२ वर्ष की आयु में ही ब्रह्मचारी रहने का संकल्प किया था। ब्रह्मचारी रहने की प्रेरणा उन्हें कहां से मिली यह ठीक ठीक कहना कठिन है। लेकिन इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनके इस निश्चय के पीछे एक ओर मां का उपदेश तथा दूसरी ओर स्वामी रामदास और जगद्गुरु शंकराचार्य के उदाहरण अवश्य होंगे। इन सब में भी स्वामी रामदास का प्रभाव अधिक माना जा सकता है। बच्चों का भावुक मन बड़ा आदर्शप्रिय होता है। वह नई कल्पना, नये उत्साह और नये स्वप्नों से भरा रहता है। बच्चे बचपन में अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएँ करते हैं, नये नये नियम लेते हैं और भावी जीवन

के नये नये स्वप्न देखते हैं। लेकिन जव जीवन में कठोर प्रत्यक्षवाद का सामना करना पड़ता है, तव वे सारे हवाई महल जैसे गिर कर चूर-चूर हो जाते हैं। किन्तु विनोवा की प्रतिज्ञा ऐसी भावुकता में की हुई प्रतिज्ञा नहीं थी। उन्होंने एक वार जो निश्चय किया, उसपर जीवन भर निष्ठा पूर्वक डटे रहे। यही तो भीष्म प्रतिज्ञा है।

आजीवन ब्रह्मचारी रहने की प्रतिज्ञा विनोवाजी ने अपने चचेरे भाई महादेव के साथ की थी। आगे चलकर महादेव को तो अपने वड़े वूढ़ों की इच्छा के सामने झुकना पड़ा और उनका विवाह होगया लेकिन विनोवा ने एक वार जो संकल्प किया उसे पूरी तरह निभाया। जव तक वे घर रहे किसी को उनके सामने विवाह का प्रस्ताव रखने का साहस नहीं हुआ। इधर उधर वातें हुईं, माता पिता के दिमाग़ में भी विचार आये लेकिन विनोवाजी का रहन सहन इतना संयमी था कि स्पष्ट रूपमें उनके सामने यह प्रस्ताव नहीं रखा जासका और जव वे घर छोड़कर चले गये तव तो यह विवाह की वात जैसे समाप्त ही होगई।

विनोवाजी केवल इन्द्रिय-निग्रह को ब्रह्मचर्य नहीं मानते। इन्द्रिय-निग्रह तो ब्रह्मचर्य का शरीर है। उसकी आत्मा तो वह वृहत् कल्पना है, वह उच्च आदर्श है जो ब्रह्मचारी के सामने सदैव रहता है और जिसको पूरा करने में वह अपनी पूरी शक्ति और समय लगाता रहता है। केवल इन्द्रिय-निग्रह तो एक निषेधात्मक वात है। जव तक सामने कोई आदर्श नहीं होता, और विनोवा के शब्दों में जव तक कोई वृहत् कल्पना नहीं होती तव तक ब्रह्मचर्य का सच्चा लाभ नहीं मिलता। जो लोग केवल इन्द्रिय-निग्रह को ब्रह्मचर्य मानते हैं वे थोड़े ही दिनों के वाद हिसाव लगाने लगते हैं कि इतने दिन होगये अभी तक कोई लाभ नहीं मिला। कोई फल न देखकर वे निराश हो जाते हैं। लेकिन जिनके सामने कोई वृहत् कल्पना होती है उनके सामने निराशा के लिए कोई स्थान ही नहीं रहता।

भीष्म पितामह एक आदर्श ब्रह्मचारी थे। उन्होंने केवल इन्द्रिय-

निग्रह पर ही अपनी दृष्टि नहीं रखी थी। पिताजी के सन्तोष की एक बृहत्कल्पना उनके सामने थी अतः वे अपने निश्चय को अच्छी तरह पूरा कर सके। विनोबाजी कहते हैं कि ब्रह्मचर्य के लिए देह के बाहर जाकर कोई कल्पना ढूंढनी चाहिए। जब ऐसी कल्पना सामने होती है तो मनुष्य अपने को भूल जाता है। जिसको ब्रह्म समझता है उसी की सेवा में तल्लीन हो जाता है। इस तल्लीनता में ही इन्द्रिय-निग्रह अपने आप सध जाता है। लेकिन यदि ऐसी बृहत् कल्पना नहीं होती है तो इन्द्रिय-निग्रह बड़ा कठिन ही नहीं असंभव हो जाता है और साधक को अपनी साधना में असफल होना पड़ता है। इस तरह ब्रह्मचर्य भंग होने के एक नहीं, हजारों उदाहरण मिल सकते हैं।

विनोबाजी के सामने हमेशा बृहत् कल्पना रही। विद्यार्थी जीवन में यह बृहत् कल्पना ज्ञान प्राप्ति के रूप में थी। पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि अध्ययन में उनकी कितनी दिलचस्पी थी और किस तरह उन्होंने वाचनालयों की एक एक पुस्तक छान डाली थी। इसके बाद देशसेवा की बृहत् कल्पना उनके सामने आई। इस क्षेत्र में भी बहुतसा काम था और उसे करते हुए अपने व्यक्तिगत सुखों का ख्याल ही नहीं आ सकता था। भारत की ग़रीब और शोषित जनता की सेवा में उन्होंने अपना तन मन लगा दिया। उन्होंने मान लिया कि यह देह मेरा है ही नहीं, यह तो गरीब जनता का ही है। जनता की सेवा उनका ब्रह्म बन गई। इस कार्य के लिए उन्हें कड़ी तपस्या करनी पड़ी। उन्होंने कठोर शरीरश्रम किया, लम्बी २ यात्रायें कीं और अधिक से अधिक काम करके कम से कम भोजन किया लेकिन उन्हें यह कभी भी भार स्वरूप प्रतीत नहीं हुआ। खाते पीते, सोते बैठते उनके सामने दरिद्र-नारायण का ही ध्यान रहा और आज तो वे उसी को ईश्वरपूजा या आत्मोपलब्धि मानकर उस में तल्लीन होगये हैं।

ब्रह्मचर्य की साधना के लिए विरक्त भावना की बड़ी आवश्यकता रहती है। जब तक शारीरिक सुखों की इच्छा है, उनमें थोड़ी सी भी

रुचि है, ब्रह्मचर्य की साधना सफल नहीं हो सकती है। इन्द्रियों पर काबू करने के लिए सबसे पहले जबान पर काबू करना होता है, अस्वाद व्रत का पालन करना पड़ता है। विनोबाजी ने इस बात को प्रारंभ में ही अनुभव कर लिया था और उसके अनुसार आचरण भी प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने बहुत प्रारम्भिक स्थिति में ही मिर्च मसालों का त्याग कर दिया था। वे केवल सात्विक भोजन पसन्द करते थे। स्वाद के लिए खाने का विचार ही छोड़ दिया था। आश्रम में तो अस्वाद व्रत एकादश वृतों में ही शामिल कर लिया गया था और उसका पालन वे पूरी तरह करते रहे। वे घर पर और घर से जाने के बाद हमेशा कम्बल या चटाई पर सोते रहे, उन्होंने अपने लिए कम से कम कपड़ों का प्रयोग किया, वर्षों नंगे पैर रहे, यहाँ तक कि उन्होंने दाढ़ी और सिर के बाल भी बारबार बनाने का नियम नहीं रखा। साल-दो साल में जब जी में आता, कटवा देते, अन्यथा उन्हें स्वच्छन्दता पूर्वक बढ़ने देते थे।

विनोबाजी कहते हैं कि ब्रह्मचारी को किसी एक विषय का संयम करके सन्तोष नहीं मान लेना चाहिए। एक विषय का संयम और बाकी सब विषयों का भोग ब्रह्मचर्य नहीं है इसीलिए तो उनके जीवन में हमें सभी विषयों का पूरा २ संयम दिखाई देता है। आज तो मानो वे संयम की प्रतिमा ही बन गये हैं। उनकी बोलचाल और रहन-सहन सब में संयम दिखाई देगा। वे कहते हैं—"मट्टी के बरतन में छोटासा छिद्र हो तो क्या उसमें पानी भरेंगे ? एक भी छिद्र हो तो वह पानी भरने के लिए बेकार है।" उन्होंने सतर्क रहकर एक भी छिद्र नहीं रहने दिया है। यही कारण है कि वे अग्नि जैसे प्रखर हैं, उनमें अपार तेज है !

विनोबाजी को हिन्दू धर्म की, ब्रह्मचर्य की यह कल्पना बड़ी पसन्द है। वे कहते है—"हर धर्म में मनुष्य-समाज के कल्याण की बातें पाई जाती हैं। इस्लाम धर्म में ईश्वर भजन है। इस्लाम शब्द का अर्थ ही भगवान भजन है। अहिंसा भी ईसाई धर्म में पाई जाती है। हिन्दू

ऋषि मुनियों ने परीक्षा करके जो तत्व निकाले हैं, वे भी दूसरे धर्मों में पाये जाते हैं लेकिन हिन्दू धर्म ने विशिष्ट आचार के लिए 'ब्रह्मचर्य' एक ऐसा शब्द बनाया है जो दूसरे धर्मों में नहीं मिलता।" विनोबाजी ब्रह्मचर्य की इस कल्पना पर मुग्ध हैं। आश्रम-धर्म की स्थापना करके हमारे पूर्वजों ने जीवन के पहले वर्ष जो ब्रह्मचर्य की साधना करने की बात कही उसका यही मतलब है कि जीवन के मूल को प्रारम्भ में ही अच्छे पोषक तत्व मिल जायं। २५ वर्ष की आयु तक पालन किया हुआ ब्रह्मचर्य मृत्यु पर्यन्त सारा जीवन सुखमय बनाये रखता है। लेकिन यदि सारे जीवन ब्रह्मचर्य का पालन किया जाय तो उससे अच्छा और क्या हो सकता है फिर तो जीवन में से वह तेजस्विता फूटती हुई दिखाई देती है जो जीवन के प्रत्येक कोने को जगमगा देती है। दूध तो केवल शरीर को पोषण देता है लेकिन ब्रह्मचर्य शरीर और आत्मा दोनों को पोषण देता है। इसीलिए हमें विनोबा के शरीर में इस आयु में भी युवकों जैसी शक्ति दिखाई देती है और उनकी तेजस्विता का मुक़ाबला करनेवाला तो कोई इस समय दिखाई ही नहीं देता।

विनोबाजी ब्रह्म की प्राप्ति को ही ब्रह्मचर्य का लक्ष मानते हैं। यदि उससे किसी छोटे उद्देश्य के लिए इन्द्रिय-संयम किया जारहा हो तो वह सच्चा ब्रह्मचर्य नहीं है। इस कसौटी पर कसकर वे कहते हैं कि भीष्म भी आदर्श ब्रह्मचारी नहीं कहे जा सकते। उनके अनुसार तो शुकदेवजी आदर्श ब्रह्मचारी थे। उन्होंने एक बार कहा था—"ब्रह्मचर्य का ठीक मतलब भी हमें समझ लेना चाहिए। भीष्म को हम आदर्श ब्रह्मचारी मानते हैं, परन्तु भीष्म ने अपने पिता के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन किया था। ब्रह्म की उपासना की प्रेरणा उनको उसके पहले नहीं हुई थी। वे तो शादी करने वाले थे फिर भी उन्होंने ब्रह्मचर्य-व्रत अच्छी तरह निभा लिया परन्तु उनको हम आदर्श ब्रह्मचारी नहीं कह सकते। साक्षात् ब्रह्म के लिए जो ब्रह्मचारी रहेगा उसी को ब्रह्मचारी कहा जा सकता है। जो लोग देश के लिए ब्रह्मचारी रहते हैं उनके व्रत को ब्रह्मचर्य

नहीं देशचर्य कहना चाहिए। साक्षात् ब्रह्म की प्राप्ति के लिए देह से मुक्त होने की साधना ही ब्रह्मचर्य है। भीष्म आखिर में ऐसे ब्रह्मचारी बने थे। पर शुक के समान वे आरम्भ से आदर्श ब्रह्मचारी नहीं थे।

विनोबा की कठोर साधना, तेजस्विता, अपार शक्ति और सर्वभूत हित में मग्न रहने की वृत्ति के पीछे ब्रह्मचर्य की ही साधना है। वही उनके प्रत्येक कार्य के मूल को अपने गङ्गाजल से सींचती रही है। महादेव भाई ने लिखा है कि विनोबा का एक सबसे बड़ा गुण है सतत विकासशीलता। उनकी यह सतत विकासशीलता, बिना ब्रह्मचर्य की साधना के संभव ही नहीं है। जिस घड़े में थोड़ा भी छेद हो उसमें पानी घटेगा ही। वह निरन्तर बढ़ता हुआ नहीं दिखाई देगा। अभी सन् १९५२ के सितम्बर मास में अपनी जन्मतिथि पर उन्होंने हनुमानजी के शब्दों में कहा था—

"रामकाज साधे बिना मोंहि कहाँ विश्राम" और प्रतिज्ञा की थी कि जब तक भूदान का कार्य सफल नहीं होगा तब तक मैं आश्रम में नहीं जाऊंगा।" भूदान के कार्य से पैदल यात्रा करनेवाले विनोबा ५ लाख एकड़ भूमि प्राप्त करने के बाद २५ लाख एकड़ का निश्चय करते हैं फिर ५ करोड़ एकड़ का और उसके बाद उसे हल किये बिना आश्रम न जाने का। भूमिदान के बाद सम्पत्तिदान और बुद्धिदान का नारा लगाकर तो मानो उन्होंने वामन का दूसरा पैर ही बढ़ा दिया है। अब तीसरा पैर रखकर वे सबको ग़रीबों की सेवा में लगा देना चाहते हैं। यह सब सतत विकासशीलता नहीं तो क्या है! उनका प्रत्येक अगला क़दम कितना विशाल, कितना व्यापक और कितना महान होता है! ऐसी स्थिति में जब वे हनुमान की तरह कहते हैं "रामकाज साधे बिना मोंहि कहाँ विश्राम" तो आदर्श ब्रह्मचारी हनुमान की भक्तिभावना और राम का कार्य करने की लगन उनमें साकार दिखाई देने लगती है। भूमिदान और सम्पत्तिदान हिमालय पहाड़ को उठाने जैसे ही तो हैं और उनको हनुमानजी के बाद उनके जैसे आदर्श ब्रह्मचारी विनोबा के अलावा और कौन उठा सकता है!

नई तालीम के आचार्य—विनोबा

"मैं मानता हूं कि जैसे राज्य बदलने पर झण्डा बदलता है वैसे ही तालीम भी बदलनी चाहिए। पुरानी तालीम एक क्षण के लिए भी सहन नहीं होनी चाहिए।" —विनोबा

"स्वभाव से ही शिक्षक होने के कारण विनोबा ने श्रीमती आशा-देवी को दस्तकारी के द्वारा बुनियादी तालीम की योजना का विकास करने में बहुत योग दिया है। उन्होंने कताई को बुनियादी दस्तकारी मानकर एक पुस्तक भी लिखी है। वह पुस्तक मौलिक चीज़ है। उन्होंने हंसी उड़ाने वालों को यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि कताई एक ऐसी अच्छी दस्तकारी है कि जिसका उपयोग बुनियादी तालीम में बखूबी किया जा सकता है। तकली कातने में तो उन्होंने क्रान्ति ही लादी है और उसके अन्दर छिपी हुई तमाम शक्तियों को खोज निकाला है। हिन्दुस्तान में हाथ कताई में इतनी सम्पूर्णता किसी ने प्राप्त नहीं की जितनी उन्होंने की है।" —गांधीजी

पाश्चात्य शिक्षाप्रणाली के दोषों के कारण ही बुनियादी तालीम का जन्म हुआ है। लार्ड मेकाले ने जिस शिक्षाप्रणाली का श्रीगणेश किया था उसका उद्देश्य था क्लर्क पैदा करना। परिणाम स्वरूप क्लर्क पैदा होने लगे और देश में निकम्मे विद्यार्थियों और अध्यापकों का मेलासा लग गया। आज की शिक्षा इतनी निकम्मी है कि विद्यार्थी के सामने अपने भविष्य का कोई चित्र ही नहीं होता। आप उससे पूछिये कि भाई मेट्रिक पास करने के बाद क्या करोगे तो कोई स्पष्ट उत्तर नहीं मिलेगा। वह कहेगा मैंने कुछ सोचा नहीं है। ज्यादा हुआ तो कहेगा इन्टर या बी० ए० पास करूंगा। विद्यार्थी परीक्षा पास करने के आगे की बात

नहीं सोच सकता। 'साविद्या या विमुक्तये' मुक्त करने वाली जिस शिक्षा का हमारे प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख किया गया है वह तो ढूंढ़ने से भी नहीं मिलती। सच्ची शिक्षा जीने की कला सिखाती है, जीवन को आनंद मय बनाती है और इससे भी आगे बढ़कर मृत्यु को भी आनन्द की वस्तु बना देती है।

यह तो हुआ विद्यार्थियों का हाल। अध्यापक की स्थिति भी ऐसी ही विकट है। वे बालक को केवल साक्षर करना जानते हैं। आप किसी अध्यापक से पूछिये, कताई बुनाई जानते हो? बढ़इगिरी जानते हो? खेती जानते हो? लोहारी जानते हो? रसोई बनाना जानते हो? तो सभी प्रश्नों का उत्तर मिलेगा 'नहीं'। वह हर प्रकार की जीवनोपयोगी क्रियाशीलता से शून्य है। यदि उससे कहा जाय—भाई इनमें से कुछ धन्धे सीखलो तो कहता है मुझ से तो ये नहीं सीखे जा सकते। वह बिलकुल निष्क्रिय और आलसी प्राणी बन गया है। उसकी ज़बान चलती है, हाथ नहीं चलते हैं और विद्यार्थियों को भी वह यही बात सिखा देता है। परिणाम यह होता है कि स्वयं जीवन से जितना दूर है उतनी ही दूर वह विद्यार्थियों को भी रखता है।

इन्हीं कमियों को देखकर विनोबाजी कहते हैं—'आज की शिक्षण का मतलब है जीवन से तोड़कर बिलगाया हुआ मुरदार शिक्षण और शिक्षक के मानी हैं 'मृत जीवी मनुष्य'।"

लेकिन हमारा दुर्भाग्य है कि ये मृतजीवी मनुष्य ही हमारे समाज में बुद्धिजीवी कहे जाते हैं। बुद्धिजीवी तो युग के प्रकाशस्तंभ होते हैं। बुद्धिजीवियों में हम सुकरात, बुद्ध, महावीर ईसा, शंकराचार्य, ज्ञानेश्वर आदि व्यक्तियों की गणना कर सकते हैं। बुद्धिजीवी शब्द को स्पष्ट करते हुए विनोबा ने अपने गीता प्रवचन में कहा है—"गीता में बुद्धिग्राह्य जीवन का अर्थ अतीन्द्रिय जीवन बताया गया है। जो इन्द्रियों का गुलाम है, देहासक्ति का मारा हुआ है वह बुद्धिजीवी नहीं है। बुद्धि का पति आत्मा है। उसे छोड़कर जो बुद्धि देह के द्वार की दासी

होगई है वह बुद्धि व्यभिचारिणी है। ऐसी व्यभिचारिणी बुद्धि का जीवन ही मरण है और और उसे जीनेवाला मृतजीवी।"

आज शिक्षा का स्तर काफ़ी नीचे गिर गया है। यदि इसका उत्तर दायित्व शिक्षक पर नहीं तो किस पर है ? कभी हम उसे आचार्य कहते थे और श्रद्धा से उसके चरणों में झुक जाते थे। बात यह थी कि वह उस समय सच्चे अर्थ में आचार्य था। आचार्य का अर्थ है—आचार वान। उसका अपना आचरण तो आदर्श होता ही था वह अपने शिष्यों से—नई पीढ़ी से—भी उसका आचरण करवा लेता था। आज देश स्वतन्त्र है और हमारे मार्ग की बाधाएँ मिट गई हैं अत: हमें अपने अध्यापकों से ऐसी अपेक्षा क्यों नहीं करनी चाहिए ?

हमें आज अपने देश को जीने की कला सिखानी है। वह कला जीवन से ही मिलेगी। विनोबा कहते हैं—"भगवत् गीता जिस प्रकार कुरुक्षेत्र के अन्दर कही गई उसी प्रकार शिक्षा भी जीवन के क्षेत्र में ही देनी चाहिए। बच्चों को खेत में काम करने दो। वहाँ कोई सवाल पैदा हो तो उसका जवाब देने के लिए सृष्टिशास्त्र या पदार्थ विज्ञान या दूसरी जिस चीज़ की ज़रूरत हो, उसका ज्ञान दो पर असली बात यह है कि उन्हें जीवन जीने दो। व्यवहार में काम करने वाले आदमी को जिस तरह शिक्षा मिलती रहती है उसी तरह बालक को भी मिलने दो। भेद इतना ही हो कि बच्चों के आस-पास ज़रूरत के अनुसार मार्ग दर्शन करने वाले उपस्थित हों। ये आदमी भी सिखानेवाले बनकर नियुक्त नहीं होंगे। वे भी जीवन जीने वाले हों, जैसे व्यवहार में आदमी जीवन जीते हैं। अन्तर इतना ही है कि इन शिक्षक कहलाने वालों का जीवन विचारमय होगा। उसमें के विचार मौक़े पर बच्चों को समझा कर बताने की योग्यता उनमें होगी।

कुछ लोग यह शंका कर सकते हैं कि बच्चों पर यदि इतना बोझ डाला जायगा तो वे कुंभला जायंगे। लेकिन यह ख्याल बिलकुल ग़लत है। जीवन का उत्तरदायित्व डरावनी चीज़ नहीं है, वह तो

आनन्द से ओतप्रोत है। अपने आलस्य और उपेक्षा वृत्ति से हो हम उसे दुःखमय बना लेते हैं। यदि ईश्वर की रची हुई योजना को ध्यान में रखकर अपनी अयुक्त वासनाओं को दबाया जाय तो जीवन में इतना आनन्द है कि उसका कोई ठिकाना नहीं। रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी ने इसी प्रकार शिक्षा प्राप्त की थी। विश्वामित्रजी उन्हें यज्ञ की रक्षा करने के लिए ले गये। यज्ञ की रक्षा का उत्तरदायित्व छोटी ही उमर में उन पर पड़ा। उन्होंने उस उत्तरदायित्व को पूरी तरह निभाया और शिक्षा भी ग्रहण की।

प्रश्न यह उठ सकता है कि फिर पेट भरने की समस्या का क्या हल होगा ? विनोबाजी इस प्रश्न की उपेक्षा नहीं करते। बुनियादी तालीम में उद्योग को केन्द्र मानकर उसके आसपास सारी शिक्षा की जो योजना की है वह पेट को ही लक्ष करके है। वे इतना ही चाहते हैं कि आज पेट भरने का जो संकुचित अर्थ किया जारहा है वह न किया जाय। आज एक मनुष्य के पेट भरने का अर्थ है दूसरे को भूखा रखना। हमें इस संकुचिता से ऊपर उठना चाहिए। हमारा जीना 'सर्वेपाम विरोधेन' होना चाहिए। यदि हम ऐसा जीना सीख गये तो पेट भरना केवल पेट भरना नहीं रहेगा, वह यज्ञ बन जायगा।

वर्तमान शिक्षाप्रणाली के सम्बन्ध में उनके विचार एकदम स्पष्ट हैं। इसीलिए वे ज़ोर देकर कहते हैं कि "अब एक क्षण के लिए भी पुरानी तालीम सहन नहीं की जानी चाहिए। अगर स्वराज्य मिलने के बाद नई तालीम की रचना करने में चार छै महीने भी लग जायं और उस समय के लिए सब स्कूल कालेज बन्द करने पड़ें तो कोई हर्ज नहीं है।"

:: २८ ::

बापू और विनोबा

"अपने दुर्बल पांवों से लेकिन बापू के ही मार्ग पर चलने की मेरी कोशिश है।" —विनोबा

विनोबाजी समर्थ रामदास, ज्ञानदेव, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, तुलसी, कबीर, नानक आदि की कोटि के सन्त हैं। उनमें गीता के कर्म योगी, ज्ञानी और भक्त के एक साथ दर्शन होंगे। यदि वे गांधीजी सम्पर्क में भी नहीं आये होते तो भी वे पूरी तरह इसी रंग में रंगे हुए दिखाई देते। गांधीजी ने उन पर थोड़ा दूसरा रंग चढ़ाया। उन्होंने विनोबा का मुंह हिमालय की ओर से शहरों और ग्रामों की ओर मोड़ दिया, उन्हें एकान्त साधना से जनसेवा की ओर उन्मुख कर दिया। जबतक गांधीजी रहे वे इन्हीं कामों में लगे रहे। बीच बीच में कभी उनके मन में बाहर जाने की तरंग उठी भी, लेकिन वे गये नहीं। उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखकर एक बार कहा था—"विगत १२ वर्षों से मैं वर्धा में नहीं, आपकी आज्ञा में रहा हूँ। लेकिन अब सब कुछ छोड़कर फकीर की भांति इधर उधर घूमने की इच्छा होती है।" लेकिन विनोबा गये नहीं। ग्रामोद्योग, खादी, नई तालीम, सर्वधर्म समभाव आदि एक के बाद एक काम उनके सामने आते गये और वे उनमें मग्न होते गये। उन्होने कहा—"गांधीजी की प्रतिभा का अन्त नहीं है। वे नई नई बातें खोजते ही रहते हैं। ईसा ने एक बार कहा था—'मछुआ मछली पकड़ता है लेकिन मैं मनुष्य पकड़ता हूँ।' गांधीजी का भी यही हाल है। वे मनुष्य पकड़ते है और उन्हें किसी न किसी काम में लगा देते हैं। वे कहते हैं—"खादी का काम करो, यह अच्छा न लगे तो हरिजन सेवा लेलो। साक्षरता प्रचार का काम प्रारम्भ करो, राष्ट्रभाषा प्रचार का

काम लेलो, नई तालीम के स्कूल खोलो, कागज बनाना सीखो, शराब बन्दी में लग जाओ, सफ़ाई का काम शुरू करदो, मतलब यह कि कुछ न कुछ करो अवश्य। यह है गाँधीजी की महानता!" एक बार गांधीजी के निकट आकर विनोबा दूर नहीं जासके। दिन प्रतिदिन स्नेह के बन्धन मजबूत होते गये और विनोबा बापू के आत्मीय बन गये। आश्रम छोड़ कर जाने का विचार एकआध बार उठा लेकिन बुदबुद की भांति उसी समय विलीन होगया।

जब तक गांधीजी रहे विनोबा इन्हीं कामों में लगे रहे। लेकिन जब गांधीजी उठ गये तो युग की मांग उन्हें एकान्त साधना के क्षेत्र से लोगों के बीच में खींच लाई। अपनी इसी वृत्ति को उन्होंने अत्यन्त नम्र शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है—"मैं तो एक जंगली जानवर हूँ। अब तक समाज से दूर एकान्त में रहा हूँ। मैं क्या जानूं आपकी सभ्यताओं के नये नये नियम और शिष्टताएं। दूर देहात में छोटे छोटे कार्यकर्ताओं और युवकों के बीच रहा। दिन रात कुछ प्रयोगों में लगा रहा और जो जो सूझा, करता रहा। बड़े लोगों तक से मिलने में मुझे झेंप आती है और अगर बापू हमारे बीच से इतनी जल्दी नहीं उठ जाते तो आप आज भी मुझे इसी प्रकार देश के एक कोने में बैठा हुआ पाते। परन्तु आज वे नहीं हैं इसीलिए घूमने के लिए निकलना पड़ा।"

विनोबा एकान्त प्रिय हैं लेकिन एकान्त में रहकर उन्होंने कभी जीवन और जगत की ओर से आंख नहीं मूंदी। उन्होंने जीवन और जगत को सूक्ष्म दृष्टि से देखा है और उनके पास अपना स्वयं का जीवन का संपूर्ण दर्शन है। उन्होंने गीता की अपने अलग ढंग से व्याख्या की है। इस व्याख्या में ही आपको उनका जीवन दर्शन दिखाई देगा। विनोबा का यह जीवन दर्शन यदि पूरा नहीं तो अधिकांश में गांधीजी के जीवन दर्शन से मिलता जुलता है। गांधीजी के उपकार को उन्होंने बड़ी विनम्रता से स्वीकार किया है। आज वे जिस रूप में हैं उसका श्रेय गांधीजी को ही देते हुए कहते हैं—"मुझ में इतना आश्चर्यजनक

परिवर्तन वापू के आशीर्वाद का परिणाम है। मुझे विश्वास है कि वापू की आत्मा वह जहां कहीं भी होगी, मेरे काम से प्रसन्न होगी।" गांधीजी उनके लिए मार्ग दर्शक ही नहीं, एक महान सन्त और तारक थे। उनके हृदय में ईश्वर के बाद गांधीजी का ही स्थान है।

इस जबरदस्त श्रद्धा का कारण यह है कि वापू और विनोवा के आदर्शों में, साधन और साध्य में वहुत वड़ा साम्य है। मीरांबाई का 'म्हांने चाकर राखो जी' वाला पद सुनकर गांधीजी तन्मय होजाते थे। वे ईश्वर से यही प्रार्थना करते थे कि हे ईश्वर मुझे अपना दास बनाले। ईश्वर का दास बन जाना ही उनकी उत्कट इच्छा थी। विनोबाजी भी तो ईश्वर से प्रार्थना करते हुए यही बात कहते हैं:—"जमीन तो लोग मुझे दें न दें जैसी तेरी इच्छा हो वैसा होने दे। लेकिन मेरी तुझ से इतनी ही मांग है कि मैं तो तेरा सदा दास बना रहूं। मेरी हस्ती मिटा, मेरा नाम मिटा। तेरा ही नाम दुनिया में चले, तेरा ही नाम रहे। जो भी राग द्वेष आदि विकार मेरे मन में रहे हों, उन सब से तूं इस बालक को मुक्त कर।" राग, द्वेप अहंकार आदि से मुक्त होकर शून्यवत् होजाना ही तो विनोवा की साधना है।

गांधीजी की ही भांति दरिद्रनारायण की उपासना विनोवा का प्रिय और प्रमुख कार्य है। देश के करोड़ों बेज़बानों को वाणी प्रदान करने, उनके तमसावृत हृदय में ज्योति जगाने तथा उनके कण्टकाकीर्ण मार्ग को सुधा सिंचित करने के लिए ही तो देश के एक कोने से दूसरे कोने तक पैदल यात्रा करते हुए वे घूम रहे हैं। गांधीजी को जब यह कहा जाता कि अब उनको हिमालय में जाना चाहिये तो वे कहते —"अगर मेरे देशवासी हिमालय में रहने जायं तो उनके पीछे पीछे उनकी सेवा करने के लिए मैं भी वहां चला जाऊंगा।" इसी तरह विनोवा भी कहते हैं— "जहां आप सब लोग रहते हैं वही स्थान मेरे लिए पवित्र है। मेरे लिए आपके शरीर केवल पञ्च तत्वों के पुतले नहीं हैं। मैं तो आपको ईश्वर मानकर आपकी सेवा करने आया हूं। इन लम्बी यात्राओं से मेरा

शरीर प्रायः थक जाता है लेकिन जब आपकी सेवा करने का अवसर मिलता है तो वह थकावट न जाने कहां चली जाता है।"

इस तरह विनोबा और बापू में बहुत साम्य है। वे बहुत बड़े श्रद्धालु हैं। लेकिन किसी वाद या सम्प्रदाय के संकुचित घेरे में बंधना उन्हें बिल्कुल पसन्द नहीं है। गांधीजी की ही तरह राम, कृष्ण, ईसा, मुहम्मद, महावीर, बुद्ध, शंकराचार्य आदि महापुरुषों में भी उनकी ज़बरदस्त श्रद्धा है। इनके स्मरण से व गद्‌गद् होजाते हैं। इन्हीं महा पुरुषों के विचारों और अनुभवों से उन्होंने अपने जीवन को गढ़ा है। लेकिन सब में श्रद्धा रखकर भी वे किसी एक के साथ बंधे नहीं हैं। गांधीजी के भक्त होकर भी अंधश्रद्धा या अन्धानुकरण उन्हें छू तक नहीं गया है। उनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व है। बुद्धि की कसौटी पर कसे बिना, गणित की सूक्ष्म तराजू पर तोले बिना वे किसी बात को स्वीकार नहीं करते और जिस क्षण उन्हें सत्य की अनुभूति होजाती है, उसी क्षण उस पर अमल करने में भी वे नहीं चूकते हैं। सब से सब कुछ लेकर भी वे किसी संकुचितता के शिकार नहीं हुए हैं उन्होंने जो कुछ लिया उसे अपना स्वयं का बना लिया। वे कहते हैं—"गांधीजी से तो मैंने भर भर कर पाया है लेकिन उनके अलावा दूसरों से भी पाया है। जहां ज़हां से जो मिला वह मैंने मेरा कर लिया। अब वह सारी पूंजी मेरी होगई है।"

विनोबा न कोरे बुद्धिवादी हैं, न कोरे श्रद्धालु। बुद्धि और श्रद्धा के समन्वय से ही जीवन बनता है लेकिन दोनों का समन्वय साधना बड़ा कठिन है। विनोबाजी में हमें इन दोनों का बड़ा सुन्दर समन्वय दिखाई देता है। यह सौभाग्य की बात है कि विनोबा किसी के अन्ध भक्त नहीं हैं। जो लोग किसी का अन्धानुकरण करते हैं किसी शास्त्र या व्यक्ति को ही प्रमाण मानकर चलते हैं वे उसकी प्रतिध्वनिमात्र रह जाते हैं। उनसे न नवीनता की आशा की जासकती है. न मौलिकता की। वे न तो समयानुसार नया मार्ग ढूंढ सकते हैं न वस्तुओं को नया

रूप रंग ही दे पाते हैं। इसीलिए विनोबा का स्वतन्त्र व्यक्तित्व हमारे सौभाग्य का विषय है। उन्हें आज इतिहास की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति करना है। एक सच्चे क्रान्तिकारी की तरह वे इस काम में लग गये हैं। गांधीजी के बाद देश को उनके जैसे व्यक्ति की ही जरूरत थी। गांधीजी ने राजनैतिक स्वाधीनता दिलाई लेकिन वह तो स्वाधीनता का एक अंग मात्र थी। अभी सामाजिक और आर्थिक क्रान्ति बाकी है। यदि हमें पूर्ण स्वतन्त्रता की आवश्यकता है और हम वही स्वाधीनता चाहते हैं जिसका स्वप्न गांधीजी देखा करते थे तो वह बिना क्रान्ति के नहीं आसकती। क्रान्ति दृष्टा विनोबा हमें उसी दिशा में तो लेजा रहे हैं! उनका भूदान यज्ञ आर्थिक, सामाजिक और क्रान्ति का ही तो श्रीगणेश है।

देश को आजाद कराने के लिए गांधीजी ने आत्मबल के साथ संगठन के बल को जोड़ा था। इसी बल से उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्यवाद का मुक़ाबला किया था। यद्यपि यह तरीक़ा अहिंसक ही था तथापि संगठन तो बहुमत का ही बल होता है और इस बल का दबाव या असर भी पड़ता ही है। अतः इस अहिंसक प्रणाली में सूक्ष्म हिंसा के लिए स्थान था। विनोबा इस दिशा में और आगे गये हैं। इस पद्धति में जितनी भी हिंसा या दबाव है वह उन्हें पसन्द नहीं है और वे उसे भी हटा देना चाहते हैं। उन्होंने जिस भूदान यज्ञ का श्रीगणेश किया है उसमें इस प्रकार के दबाव का लेश भी नहीं है। वे न तो क़ानून का आश्रय लेते हैं, न संगठन का। वे केवल हृदय को स्पर्श करते हैं, अपील करते हैं। इसीलिए उन्होंने अपनी इस नवीन प्रक्रिया को 'यज्ञ' का नाम दिया है। गांधीजी ने कांग्रेस का सहारा लिया, उसमें नवजीवन डाला और उसके द्वारा ब्रिटिश साम्राज्य के बन्धन से देश को मुक्त किया। उन्होंने रचनात्मक कार्य भी प्रारम्भ किया और उसके लिए कई संस्थाएं बनाईं। लेकिन विनोबा तो अकेले ही आत्मबल के सहारे चल पड़े हैं। यह गांधीजी के आगे की भूमिका है। यह नवीन भूमिका ही उनके

क्रान्तिकारित्व की परिचायक है। यही उनके स्वतन्त्र व्यक्तित्व और मौलिकता का प्रमाण है।

विनोबा की एक और विशेषता है। उनकी वाणी में बापू की वाणी की ही तरह बल है। बापू सीधे सादे शब्दों में जो कुछ कहते थे उसका लोगों के मन पर बड़ा असर होता था, वह उनके हृदयों को छू लेता था। लेकिन इस शक्ति के साथ उनके शब्दों में शास्त्रों का आधार नहीं होता था अतः विद्वानों के गले उनकी बात एकदम नहीं उतरती थी। विद्वानों के हृदय पर तो बड़े बड़े ग्रन्थों के ताले पड़े रहते हैं। उनको समझाने के लिए शास्त्रों का आधार चाहिए। लेकिन विनोबाजी की यह विशेषता है कि उनकी वाणी में बल तो है ही, शास्त्रों का आधार भी है। उनके शब्द जनमानस को स्पर्श करने के साथ ही साथ विद्वानों को भी निरुत्तर कर देते हैं। चाहे राजनीति हो, धर्म हो, अर्थशास्त्र हो, समाज शास्त्र हो, उनकी गति कुण्ठित नहीं होती। उनके तर्क इतने पैने होते हैं कि किसी का मुक़ाबले में टिकना कठिन हो जाता है। बुद्धि की इस प्रखरता और विद्वत्ता के साथ कठोर साधना, त्याग, तपस्या और सर्वभूत हित की भावना ने उन्हें अजेय अजात शत्रु बना दिया है।

गुरु और शिष्य की, पिता और पुत्र की यह जोड़ी बड़ी ही अपूर्व है। गांधीजी तो अहिंसा के देवदूत थे। उनके लिए मृत्यु का भय शेष ही नहीं रहा था। फिर विनोबा रोनेवाले शिष्य कैसे हो सकते थे? गांधीजी की मृत्यु का समाचार भी उन्हें विचलित नहीं कर सका। इतना बड़ा आघात सहकर भी वे उसी तरह शान्त और गम्भीर बने रहे। दूसरे दिन प्रार्थना सभा में उन्होंने कहा—"हम सब देह छोड़कर जाने वाले हैं इसलिए मृत्यु के विषय में तनिक भी दुख मानने का कोई कारण नहीं है। एकनाथजी महाराज ने भागवत में कहा है—'मरनेवाले गुरु का और रोनेवाले शिष्य का—दोनों का ज्ञान व्यर्थ गया।' एक था मृत्यु से डरनेवाला गुरु। मृत्यु के समय कहने लगा—'अरे मैं मरता हूं।' तब उसके शिष्य भी रोने लगे। इस तरह गुरु मरने वाला और

पैला रोने वाला दोनों ने ही जो ज्ञान प्राप्त किया वह व्यर्थ गया।"

गांधीजी की विशेषताओं का स्मरण करके आज भी विनोबा गद्-गद् हो जाते हैं। उनकी आँखों से आसुओं की धारा वह निकलती है लेकिन उनके ये आँसू शोक के आँसू नहीं होते हैं। उनमें श्रद्धा और भक्ति भरी हुई होती है। उत्तरप्रदेश में यात्रा करते समय जब वे इटावा में थे तब गांधीजी का निर्वाण दिवस आया। प्रार्थना में लगभग १० हजार व्यक्ति आये। विनोबा ने कहा—"आज का दिन उपदेश देने का नहीं, आत्म-निरीक्षण का है।" फिर शाम की प्रार्थना सभा में कई बार उनका कण्ठ भर आया और आँखों से आंसुओं की धारा वह निकली। प्रवचन के बाद एक भाई ने उनके निवासस्थान पर पूछा—"आप तो कहते हैं शोक नहीं करना चाहिए। फिर आप आज इतने व्याकुल क्यों हैं?" विनोबाजी ने कहा—"शोक करना एक बात है और गुणों के स्मरण से हृदय भर आना दूसरी बात है।"

गांधीजी के गुण ही विनोबा के लिए अमूल्य निधि हैं। अपने भाषणों में उन्होंने गांधीजी के इन अनेक गुणों का उल्लेख किया है। एक स्थान पर उन्होंने कहा था—"बापूजी में एक विशेषता यह थी कि दया, क्षमा, शान्ति, सत्यनिष्ठा, प्रेम, निर्वैर बुद्धि, आदि सद्गुणों को न केवल व्यक्तिगत जीवन में, बल्कि सारे सामाजिक जीवन में और सामाजिक समस्याओं में यहाँ तक कि राष्ट्रीय समस्याएँ भी हल करने में उनका उपयोग करना चाहिए और उपयोग हो सकता है, यह उन्होंने हमें सिखाया। अहिंसा, सत्य और कष्ट सहन करके दूसरों के हृदयों को जीतने का रास्ता उन्होंने सारे हिन्दुस्तान के लोगों के सामने हिन्दुस्तान की एक बड़ी समस्या हल करने के ख्याल से रखा और हम ने देखा कि उनकी नसीहत पर हमने जो अमल किया वह यद्यपि अत्यन्त लूला सा अमल था, टूटा फूटा था फिर भी उसका परिणाम आया और सारी दुनिया की कुछ ऐसी परिस्थिति होगई कि जिस मसले के लिए सारा राष्ट्र ५०–६० साल तक लड़ता रहा, जूझता रहा, वह मसला आखिर

हल होकर रहा । उसका चमत्कार हमने अपनी आंखों के सामने देखा । गांधीजी की यही विशेषता मानी जायगी कि सामाजिक और राजकीय आदि समस्याओं के हल के लिए उन्होंने आत्मिक शक्ति का उपयोग किया।"

"दुनिया में आज हिन्दू धर्म का नाम यदि किसी ने उज्ज्वल रखा है तो वह गांधीजी ने ही । बड़े लोग अपनी रक्षा के लिए देहरक्षक रखते हैं । पर गांधीजीने ऐसे देहरक्षक कभी नहीं रखे । देह को वे तुच्छ समझते थे । मृत्यु के पहले ही वे मरकर रहे थे । निर्भयता उनका व्रत था । जहां किसी फ़ौज को भी जाने की हिम्मत न हो, वहां अकेले जाने की उनकी तैयारी थी ।"

"जो सत्य है, लोगों के हित का है, वही कहना चाहिए फिर भले ही किसी को अच्छा लगे, बुरा लगे या उसका परिणाम कुछ भी निकले ऐसी उनकी वृत्ति थी । वे कहते थे—'मृत्यु से डरने का कोई कारण ही नहीं है क्योंकि हम सब ईश्वर के ही हाथ में हैं । हमसे जब तक वह सेवा लेना चाहता है तब तक लेगा और जिस क्षण वह उठा लेना चाहेगा उस क्षण वह उठा लेगा । इसलिए जो सत्य लगता है, वही कहना हमारा धर्म है । ऐसे समय यदि मैं अकेला भी पड़जाऊं और सारी दुनिया मेरे खिलाफ़ होजाय तो भी मुझे जो सत्य दिखाई देता है वही कहना चाहिए ।' उनकी इस तरह की निर्भीकतापूर्ण वृत्ति रही ।"

बापू के ये सब गुण विनोबा ने आत्मसात कर लिये हैं । ऐसा लगता है बापू अपनी तपस्यां और साधना का सारा वैभव विनोबा को सौंप गये हैं और विनोबा उसे अपनी प्रतिभा से जगमगा रहे हैं। साधारण व्यक्ति के लिए तो गांधीजी और विनोबा में कोई अन्तर है ही नहीं । इसीलिए तो जैसा कि 'नवीनजी' ने लिखा था बुलन्दशहर का एक जाट विनोबा के दर्शन करने के बाद अपने साथी से बोल उठा था—'अरे बावले यो तूं क्या कहे । अरे क़हीं गांधी महात्मा मरा करे है । थारी अक्ल मारी गई है । देख ले यो गांधी महात्मा ही है ।'

———

सर्वोदय साहित्य

पुस्तक	मूल्य
गांधीजी की देन(राजेन्द्रप्रसाद)	१॥)
बापू के क़दमों में ,,	५)
आत्मा कथा ,,	१२)
महाभारत कथा (राजाजी)	५)
संतबाणी (वियोगी हरि)	१॥)
संतसुधासार (,,)	११)
बुद्धवाणी १) प्रार्थना (,,)	॥)
सर्वोदय भजनमाला	।=)
राष्ट्रीय गीत ।) क्रान्ति के गीत	।)
कताई शास्त्र	३)
बापू के आश्रम में (हरिभाऊ)	१)

विविध

पुस्तक	मूल्य
भारत के स्त्रीरत्न (तीनभाग)	७॥)
महाभारत के पात्र	५)
बुद्ध और बौद्ध साधक	१॥)
लोक जीवन(काका कालेलकर)	३॥)
जीवन साहित्य ,,	२)
उत्तरीभारत की संत परंपरा	१२)
बापू के पत्र सरदार के नाम	३॥)
बापू के पत्र मीरां के नाम	४)
ग्रामसेवा के दस कार्यक्रम	१।)
जीवन का सद्व्यय	१)
गांधी और साम्यवाद	१।)

नवयुवकोपयोगी

पुस्तक	मूल्य
दिव्यजीवन १॥) आगे बढ़ो	१।)
व्यवहार और सभ्यता	१)
भारतीय संस्कृति(साने गुरुजी)	३॥)
विश्व की विभूतियाँ	१॥)
स्वतन्त्रता की ओर	४)
श्रेयार्थी जमनालालजी	६॥)
भागवत् धर्म ५॥) सजिल्द	६॥)
नवयुवकों से दो बातें	।=)
जातक कथा २।)तामिलवेद	२॥)
उपनिषदों की कथाएँ	१)
उठो १।) जीने की कला	१।)
महादेव भाई की डायरी (तीन भाग)	१६)

आरोग्य, गोपालन

पुस्तक	मूल्य
रोगों की सरल चिकित्सा	३)
प्राकृतिक जीवन की ओर	३)
उपवास से लाभ	१॥)
आदर्श आहार	१)
कब्ज १॥) आरोग्य की कुंजी	॥=)
भारत में गाय	१३)
पशुओं का इलाज	॥)
स्वास्थ्य कैसे पाया	१॥)
सरदी, जुखाम, खांसी	॥।)

विशेष सुविधा—जो भाई ऊपर लिखी पुस्तकों में से कम से कम १०) की पुस्तकें एक साथ मंगावेंगे और दस रुपया मनीआर्डर से पेशगी भेज देंगे उनसे पोस्ट खर्च नहीं लिया जावेगा।